तुलसी शब्द भण्डार

मानसेतर रचनाओं के शब्दों का संकलन वर्गीकरण एवं विश्लेषण

(विनय पत्रिका, गीतावली एवं कृष्ण गीतावली के सन्दर्भ में)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

शोध पर्यवेक्षक

डॉ० कौशलेन्द्र सिंह भदौरिया

प्रवक्ता हिन्दी विभाग

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर

शोध छात्रा

राधा श्रीवास्तव

एम० ए० (हिन्दी, संगीत)
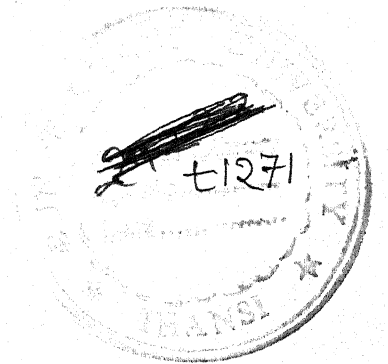
१९९३

Dr. B. B. Lal
M. A. Ph. D. D. litt
Ex- Principal D. V. (P. G.) College. Orai
Ex— V.C. Bundelkhand University

109/A Ram Nagar
ORAI
285001

Rf............

Date 20.5.93

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती राधा श्रीवास्तव ने मेरे निर्देशन में शोध-केन्द्र पर २०० दिन उपस्थित रहकर " तुलसी शब्द भण्डार — मानसेतर रचनाओं के शब्दों का संकलन वर्गीकरण एवम् विश्लेषण " विषय पर शोध-कार्य किया है।

[signature]

(प्रमाण पत्र)

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती राधा श्रीवास्तव ने मेरे निर्देशन में ' तुलसी शब्द भण्डार-मानसेतर रचनाओं के शब्दों का संकलन वर्गीकरण एवं विश्लेषण ' शीर्षक पर बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी0एच0डी0 (हिन्दी), उपलब्धि हेतु शोध कार्य सम्पन्न किया है । इनका शोध कार्य मौलिक है । अतः मैं प्रबंध को प्रस्तुत करने के लिये अग्रसारित करता हूँ ।

[signature]

(डा0 कौशलेन्द्र सिंह भदौरिया)
प्रवक्ता (हिन्दी विभाग)
राजकीय स्नाकोत्तर महाविद्यालय
हमीरपुर उ0 प्र0)

भूमिका

:-------:

शब्दानुशीलन वास्तव में काव्यानुशीलन का ही एक पक्ष है । यों तो शब्द विज्ञान भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत आता है किन्तु साहित्यिक रचनाओं के संदर्भ में भाषा-विज्ञान के सूत्रों की प्रयोम क्षमता मूलतः साहित्य की विशेषताओं का उद्घाटन है । शब्द साहित्य की सज्ना के मूल उपादान है । भाषा विज्ञान के अन्तर्गत शब्दों का जो अध्ययन कियसा जाता है उनका श्रोत मौखिक सूत्रों के अतिरिकत साहित्यिक कृतियाँ भी हैं। भाषा विज्ञान में साहित्य कके इन सूत्रों के प्रयोग से शब्द की व्याप्ति का पता भी चलता है क्यों कि लोक में शब्द मूलतः अमिधा में प्रयुक्त होताहै पर साहित्य में वह पूरी अर्थ क्षमता के साथ प्रयुक्त होता है। अतः शब्द की असीम ऊर्जा का श्रोत साहित्य ही होता है,लोक नही/यही कारण है कि किसी भी भाषा के शब्द - वैभव को, उसके शब्दों की दीप्ति, शक्ति और व्याप्ति को समझने के लिये भाषा विद्वान को भी साहित्यिक कृतियों का आश्रय लेना पड़ता है ।

हिन्दी साहित्य में शब्द भण्डार और शब्दार्थ व्याप्ति की द्रृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास सर्वोपरि है । 'स्वयं को 'भदेस भनिति ' का रचनाकार मानने वाले गोस्वामी जी स्वीकृति में जितने विनम्र है, शब्द प्रयोग में उतने ही जटिल शास्त्र। शब्द को अपने संकेत से नचाने वाले तुलसी संस्कृत से लेकर अपने युग तक प्रचलित समसा लोकभाषाओं तथा अन्य विदेशी भाषाओं के शब्दों को अपनी रचना प्रक्रियसा के अनुरूप मोड़ने में निपुण हैं । यह तुलसी का ही लाघव है कि उन्होंने संस्कृत की तत्सम शब्दावली के मध्य ठेठ देशज शब्दों को इस प्रकार सँजाते हैं कि ये अपनी गँवई विरुपता को समाप्त कर साहित्यिक सौन्दर्य के विधायक हो जाते हैं, और कहीं से भी संस्कृत के तत्सम शब्दों के अनुगत प्रतीत

नहीं होते ।

प्रयोगधार्मिता ही नहीं वरन् अर्थक्षमता की दृष्टि से भी तुलसी की शब्द योजना श्लाघनीय है । उसके शब्दों में पूरी अर्थवत्ता और प्राणवत्ता विद्यमान है । तुलसी की शब्द योजना की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता उनकी पर्याप्त योजना है । पर्याय-योजना से अभिव्यंजन क्षमता का बोध होता है। शब्द-सौन्दय्र विधायक तत्वों में पर्यायों का विशेष महत्व है। गोस्वामी जी ने पर्याय प्रस्तुति के लिए संस्कृत परम्परा के शब्दों को अधिक लिया है किन्तु उनका तद्भवी रूप नए पर्यायों को भी जन्म देताहै । मदन-मयन,अमृत-अभी-अभिय जैसे शब्द रूप पर्याय विस्तार और शब्द सन्निधि दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

भाषागत वैविध्य की दृष्टि से तुलसी के मानस के पश्चात गीतावली का ही स्थान है। विनयपत्रिका में तुलसी ने संस्कृत के स्तुतिक्रम एवं दार्शनिक बिन्दुओं को प्रस्तुत किया हे । यह एक दार्शनिक और भक्ति परक रचना है । भाषागत औदात्य की दृष्टि से विनयपत्रिका का अपना महत्व है,जब कि गीतावली और कृष्ण गीतावली में तुलसी की ब्रजभाषा की विशेषताएँ उद्घाटित हुयी है। रामचरित मानस की भाषा और उसके शब्द भण्डार काअनुशीलन अनेकशः हो गया है ।

इस सन्दर्भ में विवेच्य रचनाओं के शब्दों को केन्द्र में रखकर तुलसी का अध्ययन बहुत कम या न के बराबर हुआहै। यद्यपि तुलसी की भाषा के सन्दर्भ में इन रचनाओं का आलोड़न किया गया है तथा तुलसी शब्द सागर में इन रचनाओं के शब्द भी संकलित हुएहैं ,फिर भी शब्दों के आधार पर रचनाओं का स्वतन्त्र अध्ययन नहीं हुआ है। इस क्रम में प्रस्तुत प्रबन्ध को प्रस्तुत किया जा रहा है ।

अध्ययन क्रम में प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है । प्रथम अध्याय में विषय-प्रवेश के अन्तर्गत विवेच्य रचनाओं का संक्षिपत परिचय दिया गया है। इसके साथ ही प्रस्तुत शोध की सीमाओं और प्रविधि का संक्षिप्त विवेचन किया गया है।

प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में मानसेतर विवेच्य रचनाओं की शब्दावली का अध्ययन किया गया । इस क्रम में तीनों रचनाओं में शब्दावली के श्रोतों के आधार परउनका संक्षिप्त परिचय और वर्गीकरण किया गया है तथा उस विशिष्ट शब्दावली का परिचय दिया गया है जिसके लिए तुलसीदास जी प्रसिद्ध हैं । ऐसे शब्दों में अर्थ-सौन्दर्य का उद्घाटन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में विवेच्य ग्रन्थों में प्रयुक्त शब्दों के स्वरूप का उद्घाटन हुआ है । शब्द अपने मूलरूप में भी प्रयुक्त होते हैं और उपसर्ग प्रत्यय और समास की दृष्टि से भी शब्दों का निर्माण होता है । इस दृष्टि से तुलसी की शब्दावली का अध्ययन प्रस्तुत अध्यायस में हुआ है । इसके साथ ही ऐतिहासिक दृष्टि से शब्दों के श्रोत का अध्ययन भी इसी अध्याय में हुआ है ।

चतुर्थ अध्याय में प्रयुक्त शब्दों की व्याकरणिक कोटियों का निर्धारण किया गया है । इससे तुलसी की रचनाओं में प्रयुक्त अवधी और ब्रजभाषा की तुलनात्मक स्थिति और शब्द निर्माण क्षमता का परिचय मिलता है।

प्रबन्ध के पंचम अध्याय में ध्वनिगत विवेचन अपेक्षित रहा है । विवेच्य कृतियसों की रचना ब्रजभाषा में हुई है । अतः प्रारम्भ में ब्रजभाषा का स्वरूप और उसके साहित्यिक वैशिष्ट्य का प्रस्तवन हुआ है । इसके पश्चात ब्रजभाषा के आधार पर तुलसी की विवेच्य शब्दावली का ध्वनिपरक अध्ययन प्रस्तुत अध्याय में हुआ है ।

षष्ठ अध्याय में शब्द सौन्दर्य के अन्तर्गत द्विरुक्तियों, शब्दावृत्ति ,विदाधता और लोकोक्तियों और मुहावरों का अध्ययन किया गया है ।

सप्तम अध्याय में तुलसी की विवेच्य रचनाओं में प्रयुक्त सांस्कृतिक शब्दावली का अध्ययन किया गया है । लोक जीवन एवं संस्कृति के व्याख्याता गोस्वामी जी के काव्य में उपर्युक्त सन्दर्भो से सम्पृक्त शब्दावली बहुलता से प्रयुक्त हुयी है,जिसका विवेचन प्रस्तुत अध्याय का अभीष्ट है ।

अष्टम अध्याय में व्यक्तिवाचक शब्दावली के अध्ययन के द्वारा उन सामाजिक, वैयक्तिक सम्बन्धों के अध्ययन हुआ है जो तुलसी के युग में मान्य थे ।

प्रस्तुत प्रबन्ध आदरणीय गुरुवार डॉ० कौशलेन्द्र सिंह भदौरिया के निर्देशन में सम्पन्न हुआ है । इसके लिये मुझे उनका सहयोग सदैव सुलभ रहा है । अतः मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता अपित करती हूँ।

प्रबन्ध की प्रेरणा प्रख्यात भाषाविद् एवं तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ डॉ० ब्रजवासी लाल (पूर्व प्राचार्य, डी० बी० कालेज, उरई) से मिली है और उनके स्नेहाशीष से ही प्रबन्ध पूर्णता को प्राप्त हुआ है । अतः मैं उनके प्रति हार्दिक आभारी हूँ ।

प्रबन्ध के लेखन एवं प्रस्तुति क्रम में मेरे पति प्रो० के० के० श्रीवास्तव प्रवक्ता राजकीय महाविद्यालय महोबा का अनवरत सहयोग रहा है पर उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन आत्मीयता का उल्लंघन होगा । अन्त में मैं उन समस्त शुभैषियों के प्रति आभारी हूँ, जिनकी शुभकामनायें मेरे साथ हैं ।

राधा श्रीवास्तव

राधा श्रीवास्तव

विषय- सूची

() विषय प्रवेश ()

गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी के अन्यतम कवि हैं। उनकी रचनाओं में समग्र भारतीय जीवन-दर्शन ही नहीं रूपायित हुआ है वरन् युगीन भाषा सन्दर्भो का अभिनिवेश भी तुलसी साहित्य में मिलता है । गोस्वामी तुलसीदास अपने युग की समस्त भारतीय हिन्दी बोलियों के ज्ञाता थे। अवधी, ब्रज, और बुन्देली भाषा का प्रयोग उनके वाक्यस में अधिक मिलता है । जहाँ एक ओर उन्होंने रामकथा के केन्द्र अवध की भाषा को साहित्य में परिनिष्ठित रूप में प्रयुक्त किया है, वहीं उस युग की काव्य भाषा ब्रजभाषा का प्रयोग अधिकांश रचनाओं में किया है। बुन्देली उनकी मूल भाषा है। वाराणसी में रहने के कारण तुलसी की भाषा पर पूर्वी प्रभाव भी स्पष्टतः परिलक्षित होता है । तद्युगीन शासकीय भाषा फारसी का प्रभाव भी तुलसी साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक है। इसके साथ नानापुराण निगमागम सम्मत रचना के रचनाकार गोस्वामी जी संस्कृत के वरेण्य विद्वान थे। अतः उनकी रचनाओं पर संस्कृत का व्यापक प्रभाव है संस्कृत का तुलसी पर इतना प्रभाव है कि वे मूलतः लोकभाषाओं के तत्समीकरण के कवि माने जा सकते हैं। गोस्वामी जी ने संस्कृत को लोक भाषाओं में रूपान्तरित मात्र किया है। मूलरूप से वे संस्कृत के ही कवि प्रतीत होते हैं । गोस्वामी जी का यह अद्‌भुत भाषाधिकार उनको प्रशस्त भाषिक चेतना को द्योतित करता है। भाषा की दृष्टि से वे समन्वयवादी भी थे । परिष्कारक भी। अतः काव्य भाषा के क्षेत्र में तुलसी जैसे कवि विरल है ।

भाषिक प्रयोग के साथ ही तुलसी का शब्द भण्डर भी व्यापक था । विभिन्न भाषाओं और बोलियों के प्रयोग के कारण उनकी शब्दावली विस्तृत है। पर्याय शब्दों के क्षेत्र में तो वे अद्वितीय हैं ही काव्य भाषा में नए शब्दों के निर्माता भी हैं। काव्य-लालित्यस के निर्वाह के साथ इस निपुण शब्दावली का संयोजन तुलसी की भाषिक

भाषिक क्षमता का प्रतिष्ठापक है । भाषाधिकारी की दृष्टि से तुलसी की जो रचनाएं संदर्भित है उनमें मानस सर्वश्रेष्ठ है। राचरित मानस अवधी भाषा का नामक ग्रन्थ है। इसमें भाषा इतनी उत्कृष्ट है कि उसके आगे विकास संभव नहीं। इसलिये कालान्तर में अवधी का साहित्यिक विकास अवरूद्ध हो गया क्यों कि काव्य भाषा जब अपने चरमउत्कर्ष पर पहुंच जाती है, तो उसमें नए प्रयोग की सम्भावना नही रहती । मनस अवधी की उत्कृष्टता का प्रतीक है। मानसेतर रचनाओं में कृष्ण गीतावली,गीतावली और विनय पत्रिका ब्रजभाषा रचनाएं हैं। इस रचनाओं में ब्रजभाषा शीर्ष पर है। विनय पत्रिका इस दृष्टि से विशिष्ट है क्योंकि तुलसी की प्रौढ़तम कृति होने के कारण ब्रजभाषा का इस रचना में महत्वपूर्ण योग है । यह रचना भाषित संरना में संस्कृत के निकट है केवल बुनावट में हिन्दीकरण हुआ है ।

रामचरित मानस का भाषिक अध्यन अनेक संदर्भो में हुआ है। मानस शब्द सागर, तुलसी शब्द सागर जैसे ग्रन्थ गोस्वामी जी के शब्द भण्डार का विवेचन करने में समर्थ है। मानस शब्द सागर तो गोस्वामी जी की मानस-शब्दाली का भाषावैज्ञानिक अध्ययन ही है। इस रचना में मास की शब्दावली का समग्र अध्ययन हुआ है। मानस की अध्ययन गोस्वामी जी की भाषा के एक पक्ष अवधी का अध्ययन है,जबकि गोस्वामी जी ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवियां में है और इस भाषा के प्रयोग संदर्भ विवेच्य रचनाओं में मिलते हैं। अतः इस प्रबन्ध में मानसेतर रचनाओं के द्वारा गोस्वामी तुलसीदास की ब्रजभाषा संदर्भित तीन रचनाओं को लियागया है । विनय पत्रिका गीतावली और कृष्णगीतावली-तुलसी की मानक ब्रजभाषा रचनाएं हैं।

परिचय एवं विवरण :

गोस्वामी तुलसीदास उच्चकोटि के भक्त ही नहीं, प्रकाण्ड पाण्डित्य सम्पन्न, पतिभाशाली एवं भावुक कवि थे। उनका जीवन जिस प्रकार राममय था, उसी प्रकार उनकी कतिवा भी राममय थी। उन्होंने अपने आराध्य के चरित्र तथा गुणों का गायन तत्कालीन प्रचलित सभी शैलियों एवं काव्य भाषाओं में किया है। अपनी इसी प्रतिभा के कारण उन्होंने अभूतपूर्व लोकप्रियता अर्जित की । परिणामतः रामचरित सम्बन्धी अनेक रचनाएं और लोकगीत उनके नाम से जुड़ गई। अनेक लोकगीत तुलसी के नाम से नारीकण्ठों में गूंजते हैं। "तुलसीदास आस रघुवर की हरि चरननि चित लायी" गीत तुलसी रचित ख्यात है। ये गीत परम्परा से गाये जा रहे हैं। यद्यपि कथानक एवं भावसौन्दर्य से हीन ये गीत तुलसीरचित नहीं हैं तथापि ये गीत तुलसी की प्रसिद्धि के आधार हैं। जब उनके नाम से रचित लोकगीतों तक की कल्पना कर ली गई है तब यदि उनके नाम से रचित अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हो गये हो तो आश्चर्य की क्या बात है ? सर्वश्री शिवसिंह सेंगर, शिवनन्दन सहाय, पं0 रामनरेश त्रिपाठी, शिवबिहारीलाल बाजपेयी, मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, सर जार्ज ग्रियर्सन, डा0 रामकुमार वर्मा, डॉ0 माताप्रसाद गुप्त, प्रभृति विद्धानों ने विभिन्न स्त्रोतों के आधार पर तुलसी-विरचित कहे जाने वाले ग्रन्थों की जो सूचियाँ प्रस्तुत की हे, उन पर द्रष्टिपात करने से ज्ञात होताहै कि अधोलिखित ग्रन्थ तुलसी प्रणीत कहे जाते हैं -

(1) अंकावली, (2) आरती, (3) उपदेश दोहा, (4) कलिधर्माधर्म निरूपण, (5) कवित्त रामायण, (6) करखा छन्द, (7) कतिववली, (8) कृष्ण गीतावली, (9) कुंडलिया रामायण, (10) कृष्णचरित्र, (11) गीतावली, (12) गीताभाष्य, (13) छप्पय रामायण, (14) छन्दावली रामायण, (15) जानकी मंगल, (16) झूलना रामायण, (17) तुलसी

सतसई, (18) तुलसी जी की बानी, (19) दोहावली, (20) धर्मराय की गीता, (21) ध्रुवप्रश्नावली, (22) पार्वती मंगल, (23) पदावली रामायण, (24) बरवै रामायण, (25) बाहु सर्वांग, (26) बृहस्पति काण्ड, (27) बजरंग बाण, (28) बजरंग साठिका, (29) बारहमासी, (30) भगवद्गीता भाष्य, (31) भरतमिलाप, (32) मंगल रामायण, (33) रस कल्लोल, (34) रसभूषण, (35) रामलला नहछू, (36) रामचरित मानस, (37) रामाज्ञा प्रश्न, (38) रामशलाका, (39) राम सतसई, (40) राममुक्तावली, (41) रामनाम कलामणि कोष मंजूषा, (42) रामलला, (43) रोला रामायण, (44) विजय दोहावली, (45) विनय पत्रिका, (46) वैराग्य संदीपनी, (47) संकट मोचन, (48) संत भक्त उपदेश, (49) साखी तुलसीदास जी की, (50) सूर्यपुराण, (51) हनुमान बाहुक, (52) हनुमान चालीसा, (53) हनुमान पंचक, (54) हनुमान स्त्रोत, (55) ज्ञान की प्रकरण, (56) ज्ञानदीपिका, (57) जानकी विजय, (58) स्वर्गारोहण ।

ऊपर तुलसी रचित ग्रन्थों की जो सूची दी गई, उनमें से अनेक ग्रन्थों की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध नही है । इन ग्रन्थों की काव्यपवृत्ति एवं शैली तुलसी की प्रामाणिक रचनाओं के अनुरूप नही है। इनकी कथानक एवं विवेचना शिथिल है। तुलसी के समय से प्रचलित रामलीला परम्परा के व्यासों में भी इनकी मान्यता नहीं है। विद्धानें ने साहित्यिक कसौटी पर परखने के बाद निम्नलिखित ग्रन्थों को ही तुलसीकृत माना है- (1) रामलला नहछू, (2) रामाज्ञा प्रश्न, (3) वैराग्य संदीपनी, (4) रामचरित मानस, (5) पार्वती मंगल, (6) जानकी मंगल, (7) बरवै रामायण, (8) गीतावली, (9) कृष्णगीतावली, (10) विनय पत्रिका, (11) दोहावली और (12) कवितावली । डॉ उदयभानु सिंह ने " तुलसी सतसई " को अर्द्ध प्रामाणिक रचना स्वीकार किया है। इसमें

दोहावली के लगभग सवा सौ दोहे पाये जाते हैं, जो प्रामाणिक है, शेष संदिग्ध हैं क्यों कि तुलसी की शैली के अनुरूप नही है। अतः इस कृति पर विचार करना अपेक्षित नही है। हम इस अध्याय में केवल तुलसी की 12 सर्वमान्य रचनाओं पर ही विचार करेंगें ।

विनय पत्रिका

रचनाकाल :

" विनयपत्रिका" के रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। बाबा वेणीमाधवदास ने अपने " भूलगोसाईंचरित " में, " विनयपत्रिका" का नाम "विनयावली" दिय है तथा उसका रचनाकाल " रामचरिमानस" के बाद माना है। उसी आधार पर डॉ0 श्यामसुन्दरदास ने "विनयपत्रिका" का रचनाकाल संवत् 1636 से 1639 के मध्य निर्धारित किया है। उक्त तिथियाँ उपयुक्त नहीं प्रतीत होती है, क्यों कि " मूलगोसाईं चरित" प्रामाणिक रचना नही है । विनयपत्रिका में कुछ ऐसे पद प्राप्त होते हैं जिसमें तुलसी की वृद्ध ावस्था का आभास मिलता है। विनयपत्रिका एक संग्रह ग्रन्थ है । कवि ने स्वतः इस संग्रह का निर्माणकाल नहीं दिया है ।

डॉ0 माताप्रसाद गुप्त ने " विनयपत्रिका" के रचनाकाल के सम्बन्ध में एक सुने-सुनाये पद का उल्लेख कर इस प्रकार किया है-

भजि मन रामचरन दिनराती ।

रसाना कस न भजै तू हरि को क्यो बैठी अलसाती ।

जिनके कहत दहति दुख दारुन सुनि त्रय ताप नसाती ।

लिखा जो सुजस सिया रघुवर को सुनि जुड़ाय हिय छाती ।

संवत सोरह सै एकतीसा जेठ मास छठि स्वाती ।

तुलसीदास इक अरज करत है प्रथम विनय की पाती ।।[1]

इसके अनुसार 'विनयपत्रिका' का रचनाकाल ज्येष्ठ षष्ठी सं0 ।63। होता है, किन्तु इस पद में शुक्लापक्ष या कृष्णपक्ष का उल्लेख नहीं है। यहाँ पर किसी भी प्रति में प्राप्त नहीं होता है । यह तिथि प्रामाणिक नहीं प्रतीत होती ।क्योंकि गणना करने पर विगत संवत् वर्ष एवं वर्तमान संवत् में संवत् ।63। में ज्येष्ठ की षष्ठी को स्वाती का योग नहीं पड़ता । डॉ0 माताप्रसाद गुप्त की मान्यता है कि ' विनयपत्रिका ' का पूर्व रूप 'राम गीतावली ' के नाम से था जिसकी संवत् ।666 की लिखी हुई एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है। उसमें एक ऐसा पद मिलता है, जिसमें परशुराम एवं राम का मिलन विवाहानन्तर अयोध्या के लिए बारात प्रस्थान के बाद मार्ग में होता है। यह पद इस समय ' गीतावली' के अन्त में संग्रहीत है। पद की विचारणीय पंक्तियाँ इस प्रकार है-

सब भूपन को गरब हर्यौ हरि, भज्यो संभुचाप भारी ।
जनकसुता समेत आवत गृह, परसुराम अति मद हारी ।।[2]

यह पद ' रामचरितमानस' के पूर्व रचा गया होगा। संभव है ' रामाज्ञाप्रश्न' (सं0 ।62।) अथवा'जानकीमंगल (सं0 ।626 ?) की रचना के लगभग किसी की ओर स्पष्टतः संकेत करते हैं। निम्नलिखित पद द्रष्टव्य हैं-

तुम तजि हौं कासों कहौं और को हितु मेरे ?

दीनबंधं ! सेवकसखा, आरत अनाथ पर सहज छोह केहि केरे ।।

।- माताप्रसाद गुप्त-तुलसीदास, पृष्ठ 255

2- गीतावली -(उत्तरकाण्ड पद 38.

बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरि,बिनु बेरे ।

कृपा कोप सतिभायहू, धोखेहु-तिरछेहु राम! तिहारेहि हेरे ।।

जो चिवनि सौधी लगे, चितइये सबेरे ।

तुलसिदास अपनाइये,कीजै न ढील अब जिवन अवधि अति नेरे ।।[1]

उपर्युक्त पद में 'जिवन-अवधि अति नेरे' के संकेत से यह परिणाम निकलता है कि उक्त कथन ने कम से कम साठ वर्ष की अवस्था के पूर्व न किया होगा। 'रामगीतावली' का सम्पादन उसके बाद किसी समय 69-70 वर्ष की अवस्था में अर्थात सं0 1658 में लगभग किया गया होगा, जो उचित प्रतीत होता है।

पं0 रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार- "इसकी रचना कवि की एक बैठक की नही जान पड़ती। सम्भव है, सं 1640 में इसके कुछ पद बने हों और फिर सबको मिलकार सं0 1666 के बाद पत्रिका पूर्ण कर दी गयी हो। इसमें काशी की महामारी का संकेत नही है। इससे निश्चय ही यह संवत् 1669 के पहले बन चुकी थी। 'विनयपत्रिका' को तुलसीदास के हाथ से सं0 1668 के आसपास वर्तमान रूप प्राप्त हुआ है ।'[2]

'रामगीतावली को ' विनयपत्रिका' का रूप कब दिया गया, यह कहना असम्भव है । रामनरेश त्रिपाठी ने उसकी अंतिम सीमा सं0 1668 निर्धारित किया है, क्योंकि उसमें काशी की महामारी का उल्लेख नहीं है। 'विनयपत्रिका' एक आत्मपरक काव्य है, अतः विनय के पदों में महामारी का उल्लेख होना आवश्यक नहीं है। उसमें तो आत्मवेदना की अभिव्यक्ति ही अधिक सम्भव है। इसीलिये गोस्वामी जी ने कई पदों में अपनी वृद्धावस्था

1- विनयपत्रिका- पद 273.

2- तुलसीदास और उनका कविता, पृष्ठ 229.

और दैन्य का उल्लेख किया है। 'विनयपत्रिका' में सं0 1668 के बाद रचित पद भी संग्रहीत हो सकते हैं । 'विनयपत्रिका' का शिल्पनैपुण्य इस बात का निश्चित प्रमाण है कि वह 'रामचरितमानस' के पूर्व की कृति नही है । इसकी पूर्व सीमा सं 1631 एवं उत्तरवर्ती सीमा सं 1680 (कवि की मृत्यु) क कुछ समय पूर्व तक मानी जा सकती है । 'विनयपत्रिका' का सम्पादन सं0 1679 तक अवश्य पूर्ण हो गया होगा ।

वर्ण्य विषय :

'विनयपत्रिका' एक स्वतन्त्र काव्य है। इसके पदों में पूर्वापर सम्बन्ध तथा श्रृंखला का अभाव है। भावावेश में जो भाव उमड़ पड़े उन्हें कवि ने पद्यबद्ध कर दिया । इसमें कवि ने पुनरावृत्ति पर कोई ध्यान नहीं दिया है । कतिपय पद कवि के व्यक्तित्व से सम्बन्धित नहीं है और न ही उनका कोई परस्पर सम्बन्ध है। 'विनयपत्रिका' में कुछ विद्वान खण्डकाव्य की झलक पाते हैं। खण्डकाव्य प्रबन्धकाव्य का लघु रूप है जिसमें कथानक की धारावाहिक श्रृंखला आवश्यक होती है । 'विनयपत्रिका' में कोई कथानक नहीं है। इसके भावों और विचारों में भी तारतम्य नहीं है। एक ही भव अनेक पदों में व्यक्त किये गये हैं। अतः 'विनयपत्रिका' प्रबन्ध काव्य के किसी भेद के अन्तर्गत नहीं आ सकती।

तुलसी ने अपने जीवन में रचित अनेक पदों को संग्रहीत करके 'विनयपत्रिका' को वर्तमान रूप प्रदन किया है। इसका पूर्वरूप 'रामगीतावली' था, जिसके कतिपय पद असम्बद्ध होने के कारण 'गीतावली' में समाहित कर दिये गये तथा अनेक नवीन पदों की रचना करके इसे वर्तमान रूप प्रदान किया है। यह एक गीतिकाव्य है, जिसके सभी पद स्वतन्त्र हैं । इसकी रचना नवीन काव्य रूप में हुई है, जिसे आत्माभिव्यंजक पत्र काव्य कहना अधिक समीचीन है ।

'विनयपत्रिका' कलियुग की भयंकरता से त्रस्त तुलसी का आत्मनिवेदन है। इसमें कवि द्वारा अपनी दीनता-हीनता का प्रदर्शन करते हुए राम की शरणागतवत्सलता, उदारता एवं पतितपावनता की अत्यन्त कातर भाव से प्रार्थना की गई है । इसमें कहीं भगवान राम से निकटता स्थापित करते हुए अपने को अपनाने का निवेदन किया गया है । कहीं धृष्टतावश उनके नाम की नौका डुबाने तथा उनके नाम का पुतला निकालने की धमकी है। कहीं उनके उदार स्वभाव का वर्णन करके उद्धार की विनती है। कहीं अपने पापों की अधिकता दिखाते हुए स्पर्द्धात्मक भाव से भगवान को अपने उद्धार के लिए उत्तेजित किया गया है। भगवान राम की शरण प्राप्त करने के लिये कहीं लक्ष्मणादि भाइयों,हनुमान एवं अम्बा जानकी से सिफारिश करने की प्रार्थना है । विभिन्न उपायों से कवि ने राम को द्रवीभूत करके अपनी 'विनयपत्रिका' पर उनका हस्ताक्षर कराने में सफलता प्राप्त की । यही कवि का अंतिम संतोष है ।

यद्यपि 'विनयपत्रिका' तुलसी की आत्माभिव्यक्ति है । इसके द्वारा उन्होंने अपने उद्धार की प्रार्थना की है, तथापि कवि का हृदय विशाल था। उनकी व्यक्तिगत कामना में प्राणिमात्र का कल्याण निहित है। उन्होंने विनयपत्रिका के एक पद (सं0 139) में कलियुग की कुत्सित करनी के बहाने तत्कालीन समाज की दुरवस्था का जीवन्त चित्रण करके भगवान राम को लोक के प्रति करूणाप्लुत करने का प्रयत्न किया गया है। उन्होंने जनम से मृत्युपर्यन्त जीवन यात्रा का करूण चित्रण करके समस्त जीवों को ईश्वर की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया है ।

विनय के संदर्भ में तुलसी ने रामभक्ति की ओर उन्मुख होने के लिये अपने मन की भर्त्सना की है । संसार की असारता और क्षणभंगुरता की भी अनुमति कराने का

प्रयत्न किया है। मायाजाल में ग्रस्त होने तथा संसार के प्रति अनुरक्ति दिखाने पर होने वाले संकटों की चेतावनी दी है। राम नाम के माहात्म्य का वर्णन करके राम की उदारता का भी विस्तृत वर्णन है । रामभक्ति के प्रति समर्पण तथा अपनी भक्ति की सत्यता प्रमाणित करने के लिये अनेक पदों में घोर आत्मग्लानि की अभिव्यक्ति करके स्वयं को अत्यन्त दीन,हीन एवं पतित निरूपति किया है। दास्यभक्ति की प्रत्येक स्थिति का सम्यक् निरूपण 'विनयपत्रिका' में हुआ है ।

तुलसी ने 'विनयपत्रिका' के आरम्भ में गणेश, सूर्य, शिव, देवी, यमुना, गंगा, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन, एवं सीताजी की स्तुति की है तथा सभी से उन्होंने रामभक्ति की याचना की है । गणेश, सूर्य, विष्णु की उपसनाविषयक पदों की रचना करके उन्होंने अपने को स्मार्त वैष्णव सिद्ध किया । वहीं शिव की स्तुति करके शैव और वैष्णवों में एकत्व का संदेश दिया। उन्होंने काशी और चित्रकूट की महत्ता प्रतिपादित की। रामभक्त होते हुए भी दशावतार की वन्दना करके अपने विशाल हृदय का परिचय दिया। सगुणभक्ति के समर्थक होते हुए भी मानसी पूजा एवं मानसी षोडशोपचार का वर्णन किया है। इसप्रकार उन्होंने सगुण-निर्गुण की उभय उपासना पद्धतियों को स्वीकार किया ।

'विनयपत्रिका' गोस्वामी तुलसीदास की प्रौढ़तम कृति है । वैचारिक ,अनुभूति एवं अभिव्यंजना की द्रृष्टि से यह एक सशक्त रचना है। यह एक भक्तिपरक ग्रन्थ है। प्रपत्तिभक्ति इसका मुख्य प्रतिपाद्य है। स्त्रोत एवं भक्ति सम्बन्धी पदों में उनहोंने अपने दार्शनिक विचारों को व्यक्त किया है। उनके राम एक ओर सच्चिदानन्द सर्वव्यापक परब्रह्म है, तो दूसरी ओर भक्तों को भूभार उतारने के लिये नररूप में अवतरित दाशरथि भी है। माया राम की शक्ति है और संसार को वश में किये हैं । जगत की संरचना सांख्य और

वेदान्त दर्शन के अनुरूप है। जीव राम का अंश होने के कारण सच्चिदानन्द रूप है किन्तु वह माया के अधीन है । जीवन के अनेक रूप है, राम मायापति और एक हैं। हरकृपा से भ्रमभंजन होने पर ही जीवन की मुक्ति सम्भव है ।

कला सौन्दर्य :

'विनयपत्रिका' की रसव्यंजना के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नही है । वैसे काव्यस का नामकरण ही रस का व्यंजक है। विनय भक्ति का साधन है। इसके द्वारा इष्ट के प्रति अनुरक्ति व्यक्त की जाती है । अतः भक्तिरस 'विनयपत्रिका' का मुख्य रस है, तथापि अनेक विद्वानों ने इसे शान्तरसपरक काव्य स्वीकार किया है। चन्द्रबली पाण्डेय का मत है कि ' विनयपत्रिका' 'वास्तव में शान्तरस का ही ग्रन्थ है। उसमें सभी रस जहाँ-तहाँ दिखाई दे जाते हैं, किन्तु जो भाव आदि से अन्त तक बना रहता है, वह निर्वेद ही है। विनय में निर्वेद का राज्य है।[1] डॉ० रामदत्त भारद्वाज भी इसी मत के पोषक है। उनके अनुसार, 'विनयपत्रिका' शान्त रस से परिपूर्ण है। इसका स्थायीभाव निर्वेद है, जिसकी अनुभूति संसार की अनित्यता और मिथ्यात्व से होती है ।[2]

इसके विपरीत अनेक विद्वान इसे भक्तिरसपरक काव्य स्वीकार करते हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार 'भक्तिरस का पूर्ण परिपाक जैसा 'विनयपत्रिका' में देना जाता है, वैसा अन्यत्र नहीं । भक्ति में प्रेम के अतिरिक्त आलम्बन के महत्व और अपने दैन्य का अनुभव परम आवश्यक अंग है । तुलसी के हृदय से इन दोनों अनुभावों के ऐसे निर्मल

1- तुलसीदास, पृष्ठ 249.

2- तुलसीदास और उनका काव्य ,पृष्ठ 234.

शब्दस्त्रोत निकले हैं, जिनके अवगाहन करने से मन की मैल कटती है और अतयन्त पवित्र प्रफुल्लता आती है।'[1] वियोगी हरि ने भी ' विनयपत्रिका' में भक्तिरस स्वीकार किया है। उनकी मान्यता है - 'विनयपत्रिका' भक्ति काण्ड का परमोत्कृष्ट ग्रन्थ है, अनुराग महोदधि का एक दिव्यरत्न है। भक्तों के सरस हृदय का तो यह ग्रन्थ जीवन सर्वस्व है ।[2]

'विनयपत्रिका' की शान्तरस का काव्य स्वीकार करने वाले विद्धानों ने अपने मत की पुष्टि में ऐसे पदों को उद्धृत कियाहै, जो मानव शरीर का माहात्म्य प्रतिपादित करके सांसारिक विकारों और वासनाओं को त्याग देने की प्रेरणा देते हैं। जैसे -

लाभकहा मानुष तनु पाये ।
काय-बचन-मन सपनेहुँ घटत न काज पराये ।
जो सुख सुरपुर नरक,गेह बन आवत विनहिं बुलाये ।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन,समुझत नहिं समुझाये ।।
परदारा, परद्रोह, मोहबरा किये मूढ़ मन भाये ।
गरभबास दुखरासि जातना तीव्र विपत्ति बिसराये
ाय-निद्रा,मैथुन-अहार, सबके समान जग जाये ।
सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरि मद अभिमान गवाँये ।।
गई न निज पर बुद्धि सुद्ध है रहे न राम लय लाये ।
तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछताये ।।[3]

1- विनयपत्रिका सं0 वियोगी हरि, परिचय पृ0-1.

2- वही, वक्तव्य,पृ0-32.

3- विनयपत्रिका, 201.

यद्यपि कवि ने इस पद में ऐन्द्रिक सुख के प्रति विरक्ति प्रकट की है, किन्तु मूल भावना ' न भजे हरि' तथा ' रहे न राम लय लाये' में व्यक्त हुई है। राम के प्रति अनुरक्ति की व्यंजना भक्ति रस की है । राम विषयक रति स्थायी भाव है । राम आलम्बन है,मानव शरीर की उक्तकृष्टता और उसकी ऐन्द्रिय सुख की ओर प्रवृत्ति उद्दीपन है। निर्वेद संचारी होकर आया है। जिन पदों में चिन्तन की गम्भीरता है, हृदय में ब्रह्म ज्योति का साक्षात्कार करने का संदेश है, उनमें भी भक्ति का ही स्वर मुखरित है-

जो निज मन परिहरै बिकारा ।

तो कत द्वैत-जनित संसृति-दुख,संसय,सो,अपारा ।।

शत्रु,मित्र,मध्यस्थ,तीनि ये मन कीन्हें बरिआई ।

त्यागन,गहन,उपेच्छनीय,अहि,हाटक तृन की नाई ।।

असन,वसन,पसु,वस्तु,विविधविधि,सब मनि मँह रह जैसे ।

सरग,नरक,चर-अचर लोक बहु बसत मध्य मन तैसे ।।

बिटप-मध्य पुतरिका,सूत मँह कंचुकि विनहिं बनाये ।

मन मँह तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाये ।।

रघुपति -भगति-बारि-छालित चित,बिनु प्रयास ही सूझै ।

तुलसि कह चिदविलास जब बूझत बूझत बूझै ।।[1]

इस सम्पूर्ण पद में अद्वैतवाद का निरूपण है । आत्मा ही ब्रह्म है, भेदजनित दुःख का कारण विकार है। पद के सम्पूर्ण विचार निर्गुण सम्प्रदाय से संम्बन्धित है तथापि उन विकारों को दूर करने तथा चित्त को प्रक्षालित करने के लिये भगवद्भक्ति रूपी जल की आवश्यता पर बल दिया गया है। 'विनयपत्रिका' में कवि ने कलियुग के कष्टो, अपनी

दीनता-हीनता तथा राम की उदारता, भक्तवत्सलता का वर्णन करके कलि से परित्राण प्राप्त करने की प्रार्थना की है। इसीलिये भक्ति ही इसका मूल प्रतिपाद्य है। भगवान राम की उदारता ो देखाकर भक्ति का संचार हृदय में होने लगता है । अतः सीताराम जिन्हें प्रिय नहीं है, वे अत्यन्त सुहृद होते हुए भी शत्रु के समान त्याजेय हैं-

जाके प्रिय न राम-बैदेही ।

तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही

तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषन, बंधु भरत सहतारी ।

बलि गुरू तज्यो कंत ब्रज बनितन्हि,भये मुद मंगलकारी ।

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौ ।

अंजन कहा आँखि जेहि फूटै,बहुतक कहौं कहाँ लौ ।।

तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रानते प्यारो ।

जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो ।[1]

वस्तुतः 'विनयपत्रिका' का मुख्य रस भक्ति ही है । गोस्वामी जी ने इस रचना में रामचरण रति पर विशेष बल दिया है । लेकिन इसके साथ ही साथ शान्त,हास्य एवं वीभत्स रसों की झलक भी यत्र-तत्र मिलती है। विनयपत्रिका' में भक्तिरस के बाद दूसरा स्थान शान्तरस का है । ऐसे पद जिनमें विचारों की प्रधानता है, भक्ति की अपेक्षा आत्मचिन्तन पर बल दिया गया है,उनमें शान्तरस की व्यंजना हुई है -

रघुपति भगति करत कठिनाई।

कहत सुगम करनी अपार जानै सोई जेहि बनि आई ।

1- विनयपत्रिका, 174.

सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी ।

सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत वियोगी ।।

सोक मोह भय हरष दिवस-निसि देस-काल तहँ नाहीं ।

तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निरमूल न जाहीं ।।[1]

भक्ति की अपेक्षा यहाँ शमभव अधिक है । निर्वेद के आधिक्य के कारण इसमें शान्तरस की व्यंजना हुई है । शान्तरस के अनेक पद 'विनयपत्रिका' में है किन्तु उनकी संख्या न्यून है । भाववैविध्य के साथ 'विनयपत्रिका' में अन्य रसों का पूर्ण परिपाक कम मिलता है । सभी भाव रस दशा तक नहीं पहुँचे है। सभी भाव भक्ति के ही अंग बनकर आये हैं । शिव के सम्बन्ध में पार्वती के प्रति ब्रह्माजी द्वारा कही हुई उक्ति में 'हास' भाव ही हैं । जैसे -

बावरो रावरो नाह भवानी ।

दनि बड़ी दिन देत दये बिनु, बिन बड़ाई भानी ।।

निज घर की बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी ।

सिव की दई संपदा देखत श्री सारदा सिहानी ।।[2]

इस स्मित हास में व्याजस्तुति द्वारा शिवजी की उदारता की प्रशंसा की गई है। इसमें स्तुति की प्रधानता है जो भक्ति का ही साधन है। संसार की आसारता सिद्ध करते समय निम्नलिखित पंक्तियों में 'जुगुप्सा' की व्यंजना हुई है-

---

1- विनयपत्रिका, 167.

2- वही, 5.

आगे अनेक समूह संसृति उदरगत जान्यो सोऊ ।

सिर हेठ, ऊपर चरन, संकट बात नहि पूछै कोऊ ।।

सोनित -पुरीष जो मूत्र-मल कृमि कर्दमावृत सोवई ।

कोमल सरीर गँभीर वेदन, सीस धुनि धुनि रोवई ।।[1]

गर्भवास की वीभत्स एवं घृणित दशा का वर्णन करते हुए यहाँ उससे मुक्ति हेतु भक्ति के लिये प्रेरित किया गया है।

'विनयपत्रिका' का अंगीरस भक्ति है। राम भक्ति के आलम्बन है। राम शील,शक्ति और सौकुमार्य आदि गुणों से युक्त है। उनमें दयार्द्रता, करुणा, भक्तवल्सलता, शरणागतपालकता आदि गुण भक्ति के आधार है। राम उद्वारक और कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। वे परमशीलवान् हैं । अगणित काम के समान सुन्दर होते हुए भी राम संसार का कलयाण करते हैं। राम भक्ति के आलम्बन है । तुलसी स्वयं आश्रय हैं । भक्त भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिये अपने दैन्य का प्रदर्शन करता है। तुलसी में दैन्यस चरमसीमा पर है-

तुमसम दीनबन्धु न दीन कोउ मो सम,सुनहु नृपति रघुराई ।

मो सम कुटिल मौलिमनि नहीं जग,तुम सम हरि। न हरन कुटिलाई ।।

हौं मन बचन-करम पातक रत, तुम कृपालु पतितन-गतिदाई ।

हौं अनाथ, प्रभु । तुम अनाथ हित,चित यहि सुरति कबहुँ नहि जाई ।।

हौं आरत,आरति नासक तुम, कीरति निगम पुराननि गाई ।

हौं सभीत तुम हरन सकल भय, कारन कवन कृपा बिसराई ।।

1- विनयपत्रिका , 136.

तुम सुखधाम राम श्रम-भंजन, हौं अति दुखित विविध श्रम पाई ।

यह जिय जानि दास तुलसी कहँ राखहु सरन समुझि प्रभुताई ।।[1]

भक्त और भगवान परस्पर दोष एवं गुणों के आकर हैं । भक्त द्वारा दोषों की अनुमति और तज्जन्य दैन्य एवं कार्पण्य से ही भगवान द्रवित होकर भक्त को दोषमुक्त करते हैं। भगवान की सस्मित करुणा से भक्त हर्षित होता है । 'विनयपत्रिका' में भव-शूल का त्रास प्रदर्शित करके भगवान की भक्ति का उन्मेष किया गया है । भक्ति की धारावाहिकता ही इसका मूल है ।

उक्ति - वैचित्र्य :

तुलसी के उक्ति वैचित्र्य का अभिप्राय अभिव्यक्ति का अनूठापन है । रचनाकार ने अपनी बात सामान्य एंग से न कहकर इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि उसकी मार्मिकता बढ़ गई है और कथन का अभिप्राय अधिक प्रभावूर्ण हो गया है। उक्ति वैचित्र्य के लिये कवि वक्रोक्ति, लाक्षणिकता एवं व्यंजना का आश्रम ग्रहण करता है। 'विनयपत्रिका' में गोस्वामीजी ने मुख्यतः आत्मनिवेदन प्रस्तुत किया है । यह निवेदन अपने आराध्य राम से किया गया है। राम के दरबार तक अपना आत्मनिवेदन पहुँचाने में कवि ने 'विनयपत्रिका' के प्रारम्भ में ही दरबारी चातुर्य का प्रदर्शन किया है । अपनी पत्रिका राम तक पहुँचाने में कवि ने सभी चातुरी को काव्सय में प्रमुखता दी है । तुलसी का उक्ति वैचित्र्य ही अपना निवेदन दरबार तक पहुँचाने में सफल रहा है। गोस्वामीजी का उक्ति वैचित्र्य रीतिकवियों की भाँति चमत्कार प्रदर्शन के लिये नहीं है। उन्होंने अपनी

1- विनयपत्रिका, 242.

सहजानुभूति की प्रभावोत्पादकता के लिये ही उक्ति वैचित्र्य का प्रयोग किया है। उनके कथन का ढंग सामान्य है लेकिन उसकी प्रभाव क्षमता वचनवक्रता के कारण अचूक है। स्वयं अपनी दीनता प्रदर्शित करते हुए कवि ने राम को दीनानाथ,पतितपावन, उद्धारक,पालक आदि कहकर भक्त और भगवान का सम्बन्ध निर्वाह किया है । ऐ कथनों की अधिकता 'विनयपत्रिका' में लक्षित होती है। सेवक-सेव्य भाव को बनाये रखकर भी तुलसी राम को उपालम्भ देने में भी नहीं चूकते । राम के दरबार तक अपनी प्रार्थना पहुँचाने के लिये तुलसी अन्याय देवी-देवताओं से प्रार्थना करते हुए अन्त में सीताजी से निवेदन करते हैं-

> कबहुँक अम्ब अवसर पाइ ।
> मेरिऔ सुधि द्याइवी, कछु करुन-कथा चलाइ ।।
> दीन सब अँगहीन,छीन,मलीन,अघी अघाइ ।
> नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी दास कहाइ ।
> बूझिहैं 'सो है कौन ', कहिबी नाम दसा जनाई ।
> सूनत रामकृपालु के मेरी बिगरिऔ बन जाई ।।
> जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाई ।
> तरै तुलसीदास भाव तब नाथ गुन-गुन गाई ।।[1]

इस पद की वचनविग्घता अवलोकनीय है । अवसर पाने ,करुण कथा कहने में यद्यपि कहीं लाक्षणिकता नहीं है, तथापि इनमें विद्यमान अर्थ संकेत तुलसी की वचनचातुरी सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है।

तुलसी राम से याचना करते-करते हार गये लेकिन राम की कृपा नहीं प्राप्त हुई । इस पर खीझकर वे कहते हैं -

---

1- विनयपत्रिका, 41.

अजहुँ अधिक आदर येहि द्वारे, पतित पुनीत होत नहिं केते ।

मेरे पासंगहु न पूजि है है गये, हैं होने खल जेते ।।

हौं अबलौ करतूति तिहारिय चितवत हुतो न रावे चेते ।

अब तुलसी पूतरौ बाँधिहै,सहि न जात मोपै परहास एते ।।[1]

यहाँ पुतला बाँधना एक लोक प्रचलित सामान्य कथन है लेकिन तुलसी ने इसे व्यंजना द्वारा जो अर्थवत्ता प्रदान की है, वह विलक्षण है और कवि के अगाध ज्ञान का परिचायक है। उक्तिवैचित्र्य एवं अर्थगौरव का जीता-जागता वर्णन 'विनयपत्रिका' में प्राप्त होता है। शब्दचमत्कार और अलंकारों का अलंकरण अनेक कवियों की कृत्रिम रचनाओं में दिखाई पड़ता है किन्तु सच्चा, स्वाभाविक चित्रण, हृद्गतभावों की विलक्षण व्यंजना ,प्रसाद, ओज एवं यथेष्ठ रसाभिक्ति का नियोजन तुलसी में ही देखने को मिलता है ।

भाषा :

'विनयपत्रिका' की भाषा प्रौढ़,प्रांजल एवं परिमार्जित साहित्यिक ब्रजभाषा है वह अर्थगौरव सम्पन्न एवं शब्दभण्डार से समृद्ध है । 'विनयपत्रिका' में संस्कृतगर्भित, सामाजिक पदावली से युक्त यत्र-तत्र क्लिष्ट भाषा का प्रयोग भी मिलता है । आरम्भ के स्त्रोतों में संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग हुआ है। 'विनयपत्रिका' की भाषा भावानुरूपिणी है । स्त्रोतों में देवों का महिमागायन है अतः उसकी भाषा संस्कृतगर्भित है। विनय के पदों में भावों का प्रकृत उच्छलवेग है, अतः भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है । भाषा पर तुलसी का असाधारण अधिकार था। वे भाषा के अप्रतिम प्रयोक्ता एवं कुशल स्रष्टा थे। शब्दों को

1- विनयपत्रिका, 241.

नयी अर्थवत्ता प्रदान करने में तथा लोकप्रचलित शब्दों को सम्भार देने में उन्हें अपूर्व कौशल प्राप्त था । उनमें एक ओर संस्कृत के शब्दों का सुललित श्रृंगार है वहीं लोकप्रचलित शब्दों का अचूक अर्थभार भी है। तुलसी की रचनाओं में भाषा की यह प्रभावक्षमता सर्वत्र विद्यमान है। 'विनयपत्रिका' में एक ओर स्तुतिपरम्परा, दार्शनिक जटिलता, एवं एकान्तिक भक्ति क अभिव्यक्ति के लिये उत्तराधिकार से संस्कृत शब्दावली प्राप्त थी, वहीं दूसरी ओर लोकजीवन से जोड़ने के लिये कवि ने उपयुक्त भावों की अभिव्यक्ति के लिये लोकभाषा एवं लोककवन को माध्यम बनाया है । 'विनयपत्रिका' की भाषा उनके अगाध पाण्डित्य का परिचय देती है । स्त्रोतों में शब्दगत काठिन्य अवश्य हैं । जिस पाठक को शब्दज्ञान है, उसके लिये स्त्रोत गुणोपेत हैं । कुछ स्त्रोत अपनी ध्वनिमधुरता के कारण जन-जन में प्रचलित है -

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भवभयदारुणं ।
नवकंज-लोचन, कंज-मुख कर कंज, पद कंजारुणं ।।
कंदर्प अगणित अमित छबि,नवनील नीदर सुन्दरं ।
पटपीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावंर ।।[1]

कवि ने स्त्रोतों तथा चिवन्तनपरक पदों में संसकृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक किया है, किन्तु विनय के पदों में ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल तद्भव शब्दों का आधिक्य है । आखत, रिनियाँ, मीच, पखारन, निठुर,रमनीय, पुतरिका, छर, अगिन आदि शब्द तद्रव हैं। भाषा को व्यावहारिक एवं सामान्य बनाने के लिये कवि ने अनेक देशज शब्दों का प्रयोग किया है। गोड़, जोहाई, बानक, टोटक, हासत, खोहर इत्यादि देशज शब्द

1- विनयपत्रिका,45.

'विनयपत्रिका' में प्रयुक्त हुए हैं। अथाई, आइवि, खोरे, काउ,जानिबी, धाइबी, पनवारी आदि बुन्दलेखंडी, गरीब,कलई, खाक, जहान, खास, साहिब, दाग, खसम, गुलाम, लबार, पहम इत्यादि अरबी-फारसी के शब्द जो जनभाषा में प्रयुक्त होते हैं, तुलसी ने इन्हें ब्रजभाषा के स्वाभाविक प्रवाह में ढाल दिया है ।

भाषा की अभिव्यंजना शक्ति की वृद्धि के लिये 'विनयपत्रिका' में लोकोक्तियों और मुहावरों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। ' राखि कहौ हौं तो जौ पै है हौं साखी घीय की' ,'सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरो, ' दूध को जर्यो पियत फूंकि-फूंकि मह्मो हौं, 'गाड़ी के स्वान की नाहीं ', 'नहिं कुंजरों नरो' इत्यादि लोकोक्तियों तथा 'पछितैहैं मन मींजि हाथ', ' हिय को आँखिन हेरि ', ' लाज आपुही निज जाँघ उघारे', 'पढ़िबों पर्यो न छठी', ' पेट खलायो, लोचन जनि फेरो, इत्यादि मुहावरों के प्रयोग से भाषा में प्रेषणीयता आ गई है ।

'विनयपत्रिका' की भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न है । दार्शनिक चिन्तन के स्थलों में प्रसादगुण का अभाव है । विनय के पद माधुर्यगुण से युक्त है। शिव, हनुमान, देवी तथा लक्ष्मण की स्तुतियों में ओजगुण का प्राधान्य है । यथा-

तांडवित-नृत्य पर ,डमरू डिंडिंम प्रवर, अशुभ इव भाति कल्याणराशी ।
महाकल्पांत ब्रह्मांड-मंडल दवन,भवन केलाश आसीन काशी ।।[1]

एवं

जयति मरूदंजनामोद-मंदिर, नतग्रीव सुग्रीव दुःखैकबंधो ।
यातुधानोद्दत कुद्ध-कालाग्निहर, सिद्ध सुरसंजनानंद-सिन्धो ।[2]

1- विनयपत्रिका, 10
2- वही, 27.

अलंकार योजना :

काव्य में अलंकारों का प्रयोग चमत्कार के लिये होता है इसीलिये आचार्यो ने अलंकारों को शोभाकारक धर्म माना है। अतः श्रेष्ठ कवि काव्य को चारुत्व प्रदान करने के लिये अलंकारों का आश्रय ग्रहण करते हैं। तुलसी की 'विनयपत्रिका' में अलंकारों का विनियोज इतनी सहजता से हुआ है कि ऐसा प्रतीत ही नहीं होता कि वे अलंकारों के प्रयोग के प्रति सचेष्ट रहे हैं । 'विनयपत्रिका' में शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का प्रयोग किया गया है। स्त्रोतों में शब्दालंकारों में अनुप्रास की भरमार है । इससे कवि का शब्द चयन-कौशल प्रमाणित होता है। अनुप्रास का उदाहरण द्रष्टव्य है -

> विश्व-विख्यात,विश्वेस,विश्वायतन,विश्वमरजाद, ब्यालारिगामी ।
> ब्रह्म,बरदेश,वागीश,व्यापक,विमल,विपुल,बलवान,निर्वानस्वामी ।[1]

विनय के पदों में भी अनुप्रास का य-तत्र सुन्दर प्रयोग मिलता है । कहीं कहीं अनुप्रास के साथ पुनरुक्ति प्रकाश, रूपक और उपमा का प्रयोग भी मिलता है। जैसे-

> जागु-जागु जीवन जड़ ! जो है जग-जामिनी ।
> देह-गेह-नेह जानि जैसे घन- दामिनी ।[2]

'विनयपत्रिका' में अनुप्रास, रूपक और दृष्टान्त अलंकार प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं, अर्थालंकारों का प्रयोग कवि ने भावगाम्भीर्य के लिये किया है। साम्यमूलक अलंकारों में रूपक कवि का प्रिय अलंकार है । तुलसी रूपकों के सम्राट हैं। 'विनयपत्रिका' में सांगरूपकों की सुन्दर योजना की गई है । काशी-कामधेनु, (22) चित्रकूट कल्पवृक्ष

1- विनयपत्रिका, 54.
2- वही, 73.

(123) शिव-वन, (14) वपुष-ब्रह्माण्ड, (50) संसार-कान्तार, (59) शरीर खटोला, (189) आदि रूस्पक विलष्ट होते हुए भी दार्शनिक गूढ़ विषय को कलात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं । मत्स्यंस आखेट के रूस्पक द्वारा कवि भगवान से अपने उद्वार की प्रार्थना करता है -

> विषय-बारि, मन मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक ।
> ताते सहौ विपति प्रति दारून,जनमत जोनि अनेक ।।
> कृपा डोर बनसी पद अंकुस परम प्रेम मृदु चारो ।
> एहि विधि वेधि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तिहारो ।।[1]

इन अलंकारों के अतिरिक्त उपमा, उत्प्रेक्षा, परिकरांकुर, विभावना, व्याजस्तुति संकर, संसृष्टि, व्यतिरेक का प्रयोग 'विनयपत्रिका' में किया गया है । कवि द्वारा प्रयुक्त यसे अलंकार प्रयत्नसाध्य नहीं है, अपितु स्वतः स्फूर्त, भावगाम्भीर्य में सहायक और अर्थ को रमणीयता प्रदान करते वाले हैं ।

छन्द विधान :

आत्मानुभूति की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यसक्ति के कारण 'विनयपत्रिका' एक उच्चकोटि का गीति काव्य है। कवि के हृदय का तीव्र भायावेग गीति के रूप में प्रस्फुटित हुआ है । 'विनयपत्रिका' में तुलसी की आन्तरिक पीड़ा की प्रधनता है । तीव्र आवेग और भावान्विति 'विनयपत्रिका' को प्रगीतरचना सिद्ध करती है । प्रगीतकाव्य में गेयता आवश्यक है। 'विनयपत्रिका' में विभिन्न रागों का प्रयोग मिलता है। राग विलावल, घनाश्री, रामकली,

---

1- विनय पत्रिका, 102.

वसन्त, मारू, भैरव, मलार, सारंग, गौरी, दण्डक, केदारा, आसावरी, जयतश्री, विभास, ललित और कल्याण इत्यादि राग-रागिनियों का प्रयोग भाव और समयानुसार हुआ है। भाषा में लालित्य और मधुरता है ।

'विनयपत्रिका' तुलसी के भक्त हृदय की सफल अभिव्यसक्ति है । भाव, भाषा, अलंकार सौन्दर्य, गीति-माधुर्य सभी काव्य कलाओं का उत्कृष्ट निदर्शन इसमें हुआ है। 'विनयपत्रिका' में यदि भक्त विभोर होकर आत्मानन्द के सागर में निर्मजित हो जाता है तो साहित्यिक उसके कलात्मक सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है । 'मानस' में तुलसी की दृष्टि लोकोन्मुखी है तो 'विनयपत्रिका' में अन्तर्मुखी । 'विनयपत्रिका' की अन्तर्मुखता आत्मकेन्द्रित होते हुए भी लोक-कल्याणकारिणी है। ' मानस' और 'विनयपत्रिका' दोनों के सम्मिलन से ही तुलसी का व्यसक्तित्व निखारता है । कलापक्ष की दृष्टि से 'विनयपत्रिका' तुलसी की सर्वश्रेष्ठ रचना है ।

गीतावली

रचनाकाल :

'गीतावली' में कवि ने उसकी रचना तिथि का कहीं उल्लेख नहीं किया है, न ही किसी ऐसी घटना का उल्लेख है जिसके आधार पर कृति की रचनाकाल का निर्णय हो सके। डॉ० श्यामसुन्दर दास ने 'मूलगोसाईं चरित' के आधार पर इसका रचनाकाल सं० 1616 से 1628 माना है ।[1] मूल गोसाईं चरित के अनुसार तुलसी की यह प्रथम रचना है किन्तु

1- गोस्वामी तुलसीदास, पृ0- 771.

'गीतावली' के काव्यस सौष्ठव को देखते हुए यह प्रथम रचना नहीं हो सकती । पं0 रामनरेश त्रिपाठी 'गीतावली' को तुलसी की छात्रावस्था के समय से ही रचित पदों का संग्रह स्वीकार करते हुए इसका रचनाकाल सं0 1615 से 1620 तक मानते हैं । त्रिपाठी जी के अनुसार, (1) 'गीतावली' का आधार 'बाल्मीकि रामायण' है और 'मानस' में 'अध्यात्म-रामायण' की छाया है । इससे 'गीतावली' का संशोधन 'मानस' में किया हुआ सा लगता है । (2) 'गीतावली' में सीता बनवास की कथा अत्यन्त कारुणिक रूप में चित्रित है किन्तु 'रामचरितमानस ' में यह प्रसंग छोड़ दिया गया है क्यों कि इससे राम का चरित उदात्त न हो पाता । (3) 'गीतावली ' की रचना तुलसी ने गृहत्याग से पूर्व कर ली थी, जबकि वे कवि ही थे, भक्त नहं हो पाये थे ।[1] 'गीतावली' पर 'बाल्मीकि रामायण' का प्रभाव स्वीकार करते हुए डॉ0 रामकुमार वर्मा इसका रचनाकाल सं0 1643 के लगभग मानते हैं।[2]

कडॉ0 माता प्रसाद गुप्त ने श्री त्रिपाठी जी और डॉ0 वर्मा के विचारों से अपनी असहमति व्यक्त की है । त्रिपाठी जी के तीसरे तर्क के उत्तर में उन्होंने 'गीतावली' के विभीषण- शरणागति सम्बन्धी पदों को प्रस्तुत किया है जो दास्यभक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण हैं । दूसरे 'गीतावली' कवि की रचना है और 'रामचरितमानस' भक्त की। यदि ऐसा सम्भव हो तो काव्यकला की दृष्टि से 'गीतावली' को 'मानस' से श्रेष्ठ होना चाहिये किन्तु त्रिपाठी जी ऐसा नहीं मानते । अतः उनके कथन परस्पर विरोधी हैं। 'बाल्मीकि रामायण' से तो 'गीतावली' की तरह ही 'रामा ज्ञप्रशन' का भी साम्य है । अतः यह असम्भव है कि सं0 1631 तक मानस के रचनाकाल तक तुलसी ने ' बाल्मीकि रामायण ' का

1- तुलसीदास और उनकी कविता, पृ0- 380-399.

2- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ0- 419.

अध्ययन न किया होगा । नानापुराण निगमागम समस्त काव्य लिखने वाले कवि का मानस के रचनाकाल तक 'बाल्मीकि रामायण ' न पढ़ना असम्भव है ।[1]

डॉ0 रामदत्त भारद्वाज 'गीतावली' का रचनाकाल सं0 1643 से 1650 के अन्तर्गत मानते हैं। उनका तर्क है कि काशी में 'मानस' का विरोध इसलिये हुआ होगा क्योंकि यह रचना कहीं-कहीं बाल्मीकि रामायण से भिन्न है । अतः उन्होंने पारवर्ती काव्यों में ऐसी कोई बात न लिखी होगी जो बाल्मीकि अथवा अध्यात्मक से असम्मत हो । डॉ0 माता प्रसाद गुप्त 'गीतावली', 'रामाज्ञाप्रश्न' और 'रामचरितमानस ' में वर्णित राम कथा की तुलना करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'गीतावली' के पदों की रचना एक विस्तृत कालक्षेत्र में हुई । उन्होंने सं0 1666 में लिपिबद्ध 'रामगीतावली' जो कालान्तर में 'विनयपत्रिका' हो गयी तथा 'पदावली रामायण' जो उसी के साथ प्राप्त है, दोनों को परस्पर सापेक्ष्य मानाहै और 'पदावली रामायण' जो उसी के साथ प्राप्त है, दोनों को स्वीकार किया है। 'रामगीतावली' की प्रति सं0 1666 की है, इसलिये सम्भव है 'गीतावली' को वर्तमान रूप सं0 1666 के बाद दिया गया होगा ।

वर्ण्य विषय :

'गीतावली' में तुलसी ने रामकथा के कमनीय तथा मधुर भावों से पूर्ण स्थलों का वर्णन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी रचना कृष्णकाव्य से प्रभावित होकर की गई है । 'गीतावली' पर सूर का प्रभाव परिलक्षित होताहै क्योंकि इसमें राम के बालजीवन का विस्तार से वर्णन मिलता है। इसमें सूर के श्रृंगार से प्रभावित होकर तुलसी

1- रामदत्त भारद्वाज तुलसी और उनका काव्य, पृ0- 40.

2- वही, पृ0- 41.

अपनी मर्यादा से च्युत होकर राम तथा सीता की विलास क्रीड़ाओं का चित्रण भी कर बैठे हैं । झूला, वसन्त एवं फाग के वर्णन इसी प्रकार के है । 'गीतावली' के राम वनपथ पर ग्रामवधुओं को प्रेमपूर्वक देखकर उनके चित्त को चुरा लेते हैं । राम के स्वभाव का यह अन्तर सूर के प्रभाव को प्रकट करता है । इसके अतिरिक्त 'गीतावली' के अनेक पद 'सूरसागर' से मिलते हैं ।

'गीतावली' का आरम्भ रामजन्मोत्सव से होताहै । आरम्भ में 46 पदों में राम के बाल-जीवन का विस्तृत वर्णन है जिसमें माँ द्वारा दूध पिलाना, घुटनों के द्वारा चलना, रोना, खिलाना,पैरों से चलना, दृष्टि लगना, आखेट, क्रीड़ा इत्यादि का वर्णन किया गया है। तदन्तर विश्वामित्र जी का आगमन,उनके यज्ञ की रक्षा , अहल्योद्वार का वर्णन करते हुए जनकपुर में स्वयंवर का वर्णन किया है। राम-लक्ष्मण के सौन्दर्य से अभिभूत मिथिला के नर-नारियों की विभिन्न दशा, पुष्पवाटिका में राम एवं सीता के हृदय में परस्पर प्रेमोदय तथा घनुषयज्ञ का विस्तार से वर्णन है । इसके अनन्तर कौशल्या की राम-लक्ष्मण विषयक चिन्ता, शतानन्द द्वारा स्वयंवर सूचना, बारात-प्रस्थान तथा भाइयों के विवाह के वर्णन के साथ बालकाण्ड समाप्त हुआ है ।

अयोघ्याकाण्ड में एक पद में राम-राज्याभिषेक का उल्लेख है । तदन्तर वनगमन-प्रसंग है । रामसीता को समझाने के बाद उनके न मानने पर सीता और लखमण को साथ लेकर वन को प्रस्थान करते हैं । वनपथ पर चलते हुए राम सीता के सौन्दर्य तथा स्त्री-पुरुषों पर पड़े उसके प्रभाव का कवि ने विस्तृत वर्णन किया है। चित्रकूट की प्राकृतिक सुषमा तथा राम सीता के विहार के सरस वर्णन में कवि की वृत्ति खूब रमी है । अन्त में कौशल्या की विरह-वेदना,दशरथ-मरण, भरत की आत्मग्लानि, भरत का

चित्रकूट-गमन,भरत -राममिलन, भरत का नंदिग्राम निवास वर्णित है ।

अरण्यकाण्ड में राम का वन विहार, मारीच-वध, सीताहरण,जटायु-वध, राम की वियोग-व्यथा, शबरी-मिलन की घटनाओं का वर्णनहै । किष्किन्धाकाण्ड में केवल दो पदों में राम-सुग्रीव की मित्रता तथा सीताजी की खोज के आदेश का वर्णन है ।

सुन्दरकाण्ड में हनुमान का अशोकवाटिका गमन, सीता के सामने राम की मुद्रिका गिराना, मुद्रिका -सीता-संवाद,सीता-हनुमान भेंट,हनुमान-रावण भेंट, सीता का राम क प्रति सन्देश तथ विभीषण शरणागति का वर्णन है ।

लंकाकाण्ड में मन्दोदरी द्वारा रावण को प्रबोध, अंगन का दूतकर्म,लक्ष्मण-मूर्छा, हनुमान द्वारा संजीवनी लाना, राम विजय, अयोध्या में उत्सव के साथ राज्याभिषेक इत्यादि घटनाओं का वर्णन है ।

उत्तरकाण्ड में राम-सौन्दर्य,हिंडोला, दीपमालिका, वसन्त-विहार, सीता-वनवास,लव-कुश जन्म का वर्णन है । अंतिम पद में रामकथा का उल्लेख किया गया है। अंतिम पद में रामचरित के प्रसंग में परशुराममदभंजन, जयंत-प्रसंग, शूर्पणखा-प्रसंग, खर-दूषण-कबन्ध वध, बालिवध इत्यादि घटनाओं का संकेत है। ये घटनाएं 'गीतावली' में वर्णित नहीं हैं ।

'गीतावली' की कथा श्रृंखलाबद्ध नही है । राम के जीवन की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं को इसमें छोड़ दिया गया है तथा अनेक भावों की पुनरावृत्ति हुईहै । अत: 'गीतावली' में प्रबन्धात्मकता का अभाव है । इसमें गीति शैल में राम के शील , सौन्दर्य का उद्घटन करके कोमल भावों की व्यंजना है । गीति -काव्य की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट रचना है ।

'गीतावली' का कथानक अनेक स्थलों पर 'रामचरितमानस' से भिन्न है । यह वर्णन बाल्मीकिरामायण' से प्रभावित जान पड़ता है । 'मानस' का समापन तुलसी ने राम-राज्याभिषेक पर ही कर दिया है जबकि 'गीतावली' में हनुमान द्वारा लक्ष्मण के घायल होने का समाचवार सुनकर सुमित्रा के आदेश पर शत्रुघ्न की रणसज्जा का वर्णन है । हनुमान द्वारा गिराई गई मुद्रिका का सीता से वार्तालाप कराया गया है । ये घटनाएं मानस की अपेक्षा मौलिक हैं ।

भाव-सौन्दर्य :

'गीतावली' में कवि की सौन्दर्य साधना अपने चरम रूप में अभिव्यक्त हुई है । मनोरम कल्पनाओं, अदभुत अप्रस्तुतों तथा ललित पदावलियों में सौन्दर्य की विमोहक भावाच्छवियाँ प्रस्तुत की गई है । बालक राम, किशोर राम, युवक राम, दूलह राम, दुलहिन सीता, वनपथिक राम, लक्ष्मण सीता तथा राजाराम के अनेक विध सौन्दर्य वर्णन से समस्त काव्य परिपूर्ण है । अतएव इसे सौन्दर्यपरक ललित काव्य कहना अधिक समीचीन है।

'गीतावली' के बालकाण्ड का प्रारम्भ राम-जन्म महोत्सव के वर्णन से हुआ है। प्रारम्भ के 46 पदों में वात्सल्य रस की धारा प्रवाहित है । बालक राम के प्रति पिता एवं माता को हृद्‌गत भावों की मधुर व्यंजना हुई है । वृद्धावस्था में प्राप्त पुत्रों के प्रति माँ की लालसा है कि वे शीघ्र बड़े होकर आभूषण धारण कर लें । सभी पुत्रों की निरन्तर मंगल की कामना करती हुई कौसल्या कहती है -

> ह्वै हौ लाल कबहिं बड़े बलि मैया ।
>
> राम-लषन भावते भरत-रिपुदवन चारू चारय्यों, भैया ।।

बालविभूषन बसन मनोहर अंगनि विरचि बनैहों ।

सोभा निरखि निछावरि करि उर लाई बारने जैहों ।।

छगन मगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुक ठुमुक कब धैहों ।

कलबल बचन तोतरे मंजुल कहि माँ मोहि बुलैहों ।[1]

माताएं बालकों की मधुर चेष्टायें देखकर आनन्दमें विभोर हो जाती हैं । बालक आँगन में क्रीड़ा करते हैं । उनका उठना, चलना,गिरना, झुकना ,छाया को पकड़ना तोतरी बोली में बोलना आदि क्रीड़ाओं से परिवार के प्रत्येक व्यक्ति आनन्दित होते हैं । राजकुमारों को प्रसन्नता प्रजा की प्रसन्नता है । उनकी उदासीनता से सभी चिंतित होते हैं । इसके लिये देव पितरों एवं ग्रहादि की पूजा, मंत्र-तन्त्र एवं मनोतियाँ होने लगती है । गुरू वसिष्ठ द्वारा मस्तक पर हाथ रखने से संकट टल जाता है और सभी प्रसन्न हो जाते हैं । बालकों का सौन्दर्य चित्त को आह्लादित कर देता है । कवि ने ध्वन्यात्मक पदावली द्वारा बालसौन्दर्य का शब्दचित्र प्रस्तुत किया है -

छोटी छोटी गोड़ियाँ अंगुरियाँ छबीली छोटि ,

नख-जोति मोती मानो कमल दलनि पर ।

ललित आँगन खेलैं, ठुमुक ठुमुक चवलै,

झुँझुन-झुँझुन पाँच पैजनी मृदु मुखार ।

किंकिनी कलित कट हाटक जटित मनि,

मंजु करकंजनि पहुँचियाँ रूचिरतर ।

पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली,

बालक दामिनि ओढ़ी मानो बारे बारिधर ।[2]

1- गीतावली -1

वात्सल्य का यह वर्णन सूर से स्पर्द्धा करता है , किन्तु तुलसी आराध्य के प्रति अधिक अनुरक्त होने के कारण सूर की समता नहीं कर सके है। राम की बालक्रीड़ा वर्णन में तुलसी तादात्म्य नहीं स्थापित कर सके । राम की क्रीड़ाएं और उनका लालन-पालन राजकीय मर्यादा से नियन्त्रित है । उन्हें कृष्ण की तरह प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में सामान्य बालकों के साथ स्वच्छन्तापूर्वक क्रीड़ा करने का अवसर नही है । राम के वात्सल्य वर्णन में दास और स्वामी की मर्यादा और दूरी है । इसलिये तुलसी के वात्सल्य वर्णन में दास और स्वामी की मर्यादा और दूरी है । इसलिये तुलसी के वात्सल्य वर्णन में सूर के वात्सल्य वर्णन की भाँति हृदय को स्पर्श करने की शक्ति नहीं है ।

विश्वामित्र के साथ उनकी यज्ञरक्षा के लियसे राम-लक्ष्मण के चले जाने पर वियोग-वात्सल्य प्रारम्भ होता है । राजकीय वैभव-विलास में पालित कुसुम-सुकुमार बालकों के दुर्गम बन में चले जाने के कारण माता चिन्तातुर हो उठती है। वन की दुर्गमता के साथ निसिचरों की प्रखण्डता के अनुमान से माँ का हृदयस कम्पित हो उठता है । वे अपने पुत्रों के संकोच-शील स्वभाव पर सोचने लगती है -

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहहिंगे ?
भूखा ,पियास,सीत,श्रम,सकुचनि,क्यों कौसिकहिं कहहिंगे ।।
को भोर की उबटि अन्हवैहै, काढ़ि कले देहैं ?
को भूषन पहिराई निछावरि करि लोचन सुख लेहै ?

वियोग-वात्सल्य का दूसरा अवसर राम-वन-गमन के अनन्तर आता है वन-गमन का समाचार सुनते ही माता कौशल्या व्यथित हो जाती है और अपनी मार्मिकपीड़ा

1- गीतावली ,1-99.

को व्यक्त करती है -

राम ! हौं कौन जतन घर रहिहौ ?

बार बार भरि अंक गोद लै ललन कौनसों कहिहौ ।।[1]

राम माँ की दयनीय दशा देखकर आकुल हो जाते हैं और शीघ्र वापस आने का आश्वासन देकर पिता की आज्ञा का पालन करने के लिये वन को प्रस्थान करते हैं। राम के गमन से कौशल्या वेदना के सागर में डूब जाती है । राम की वस्तुओं को देखकर माता को उनका स्मरण हो आता है । वे चेतना-हीन-सी होकर जो चेष्टाएँ करती है, उनकी मार्मिक अभिव्यक्ति तुलसी ने इस प्रकार किया है -

जननी निरखति बान धनुहियाँ ।

बार बार उन नैननि लावति प्रभुजू की ललित पनहियाँ ।।

कबहुँ प्रथम ज्यों जाई जगावति कहि प्रिय वचन सवारे ।

उठहु तात ! बलिमातु बदनपर अनुज सखा सब द्वारे ।।

कबहुँ कहति यों, बड़ी बेर भई जाहु भूप पहै भैया ।

बंधु बोलि जेइय जो भावै गई निछावरि मैया ।।

कबहुँ समुझि वन गवन राम को रहि चकि चित्र लिखी सी ।

तुलसीदास वह समय कहेते लागति प्रीति सिखी सी ।।[2]

कौशल्या राम के धनुष तथा उपाहनों की हृदय से लगाती है । 'उन्माद' की दशा में उन्हें जगाने पहुँच जाती है । पुनः चेतना आने पर उन्हें 'जड़ता' घेर लेती है ।

1- गीतावली, 2-4.

2- वही, 1-106.

कवि मातृहृदय की व्यंजना में पूर्ण सफल हुआ है । संयोग वात्सल्य के चित्रण में कवि केवल रामसौन्दर्य और बालक्रीड़ाओं का द्रष्टामात्र रह गया था किन्तु वियोग-वात्सलय में उसने माताओं की अनुभूति के साथ तादात्म्य स्थापित करके उसका उद्घाटन किया है । अतः वियोग-वात्सल्य अधिक मार्मिक एवं प्रभावपूर्ण है ।

'गीतावली' में द्वितीय स्थान श्रृंगार रस का है । सौन्दर्य चित्रण एवं प्रेम की व्यंजना का आधार श्रृंगार है । राम एवं सीता के सौन्दर्य का चित्रण कवि ने बड़े मनोयोग से किया है। वर वधू के रूप में राम -सीता का सौन्दर्य चित्रित हुआ है -

दूलह राम, सीयस दुलही री ।

घन-दामिनि बर-बरन, हरन-मन सुन्दरता नखसिखनि बही, री ।।

xx xx xx xx xx

सुखमा सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही, री ।

मथि माखन सिय-राम संवारे, सकल भुवन छबि मनहु मही री ।।

तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा अतुल, न जाति कही, री ।

रूप-रासि बिरचवी बिरंचिव मनो, सिला लवनि, रति काम लही, री ।।[1]

राम-सीता दोनों विवाह के पूर्व ही परस्पर प्रेमपाश में आबद्ध हो जाते हैं। पुष्प-चयन के समय फुलवारी में राम की ओर दृष्टि डालकर सीता प्रेम-विभोर हो जाती है राम भी सीता के नेत्रों की ओर देखकर प्रेम में निमग्न हो जाते हैं । पुष्प वाटिका का यह अपूर्व सौन्दर्य विस्मयीकारी है । रामसीता के प्रेमोदय का वर्णन करने में कवि स्वतः को असमर्थ पाता है -

---

1- गीतावली, 1-106.

निरखि लषन-राम जाने ऋतुपति-काम,

मोहि मानो मदन मोहनी मूढ़ नाई है ।

राघौजू-श्रीजानकी-लोचवन मिलिबे को मोद,

कहिबे को जोगु न ,मैं बातें सी बनाई है ।।[1]

गिरिजापूजन में तल्लीन सीता के अनुभावों द्वारा तुलसी ने उनके आन्तरिक प्रेम की सफल व्यंजना की है -

सजल सुलोवचन, सिथिल तनु पुलकित,

आवै न बचन, मन रह्यों प्रेम भरि के ।

अंतरजामिनि भवभामिनि स्वामिनि सों हौं,

कही चवाहौं बात, मातु अंत तो हौ लरिके ।।[2]

कवि ने विवाह के अनन्तर संयोग श्रृंगार का अधिक वर्णन नहीं किया। सीता प्रेम के कारण ही वन-गमन का अनुरोध करती है । वन में सीता की श्रमित अवस्था देखकर राम के नेत्र प्रेमाश्रुओं से युक्त हो जाते हैं । उत्तरकाण्ड में हिंडोला तथा वसन्त बिहार के माध्यम से कवि ने सीता-राम की संयोगजनित आनन्दानुभूति की माधुर्यपूर्ण व्यंजना प्रस्तुत की है । वस्तुतः इस प्रकार के चित्रण की प्रकृति के अनुकूल नहीं है । तुलसी ने प्रातःकालीन राम के जागर एवं उनकी रतिक्रिया की साकिति अभिव्यक्ति की है । भक्त होने के कारण उन्होंने संयोग चित्रण का स्पष्ट वर्णन नहीं किया कवि की मर्यादानुकूल रतिविषयक व्यंजना निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त हुई है -

---

1- गीतावली , 1-71.

2- वही, 1-72.

स्यामल सलोने गात आलसवस जंभात प्रिया प्रेमरस पाये ।

उनीदे लोचवन चारू,मुख सुषमा सिंगार हेरिहारे मार भूरि भागे ।।

सहज सुहाई छबि,उपमा न लहै कवि,मुदित बिलोकन लागे ।

तुलसिदास निसिबारस अनूप रूप रहत प्रेम अनुरागे ।।[1]

'गीतावली' में संयोग श्रृंगार की अपेक्षा वियोग श्रृंगार की अधिक मार्मिक व्यंजना हुई है । सीताहरण के बाद अशोकवाटिका में कृशकाया सीता के विरह की व्यंजना है । इस अवसर पर कवि ने सीता की विवशता का चित्रण किया है । वे अत्यन्त आतुर होकर हनुमान से पूछती है -

कबहूँ, कपि । राघव आवहिंगे ।

मेरे नयन चकोर प्रीति बस राकाससि मुख दिखारावहिंगे ।।[2]

तुलसी ने सीता के वियोग में राम की भी व्याकुलता का वर्णन किया है। सीता के अपहृत होने पर राम वियोग में इतने अधिक व्याकुल हो जाते हैं कि उनकीक दशा देखकर देवगण भी विकल होते हैं । सीता के आभूषणों को देखकर उनकी वेदना उदीप्त हो उठती है । अनुभावों के माध्यम से तुलसी ने राम की विरहव्यथा की मार्मिकता व्यक्त की है -

भूषन-बसन विलोकत सिय के ।

प्रेम-बिबस मन,कंप पुलक तनु नीरजनयन नीर भरे पिय के ।।

सकुचत कहत सुमिरि उर उमगत सील सनेह सुगुनगन तिय के ।

स्वामि दसा लखि लखन सखा कपि,पिछले हैं आँचव माठ मानो घिय के ।[3]

1- गीतावली , 7-2.
2- वही, 5-10.
3- वही,4-1.

'करूणरस' की व्यंजना दशरथ-मरण, जटायु-मिलन, लक्ष्मण-शक्ति तथा सीतात्याग के प्रसंगों में हुई है । लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम का विलाप करूणा से ओत-प्रोत है। राम अपने जीवन की अनेक दुःखद घटनाओं में लक्ष्मण की भूमिका का स्मरण करके दुखी होते हैं । 'गीतावली' में राम का यह विलाप बड़ी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है -.

मोपै तो न कछू है आई।
ओर निबहि भली विधि भायप चल्यो लखन सो भाई ।।
पुर,पितु-मातु सकल सुख परिहरि जेहि बन विपति बँटाई ।
ता संग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यो न प्रान पठाई ।[1]

सीता निर्वासन के वर्णन में वन में छोड़कर वापस जाते हुए लक्ष्मण को संबोधित निर्वासिता सीता के दैन्यपूर्ण निवेदन को कवि ने करूणापूर्ण बना दिया है -

लषनलाल कृपाल । निपटहिं डारिबी न बिसारि ।
पाहबी सब तापसनि ज्यों राजधरम बिचारि ।।
सुनत सीता बचन मोवचत सकल लोचवन-बारि।
बालमीकि न सके तुलसी सी सनेह संभारि ।।[2]

गीतिकाव्यस में पुरुष भावों के चित्रण का प्रायः अवसर उपस्थित नहीं होता तथापि तुलसी ने 'गीतावली' में वीर, रौद्र एवं भयानक रसों की व्यंजना की है । लक्ष्मण के शक्ति लगने के समय हनुमान में शौर्य और आत्मविश्वास की ओजपूर्ण व्यंजना में वीररस का

1- गीतावली, 6-6.
वही, 7-29.

पूर्ण परिपाक मिलता है -

जौ हौं अब अनुसासन पावौं ।

तौ चन्द्रमहि निचोरि चैल-ज्यौ, आनि सुधा सिर नावौ ।

के पाताल दलौं व्यालावलि अमृत कुण्ड महि लावौ ।

भेद भुंवन करि भानु वाहिरो तुरत राहु दै तावौ ।।[1]

'गीतावली' में तुलसी का प्रकृति प्रेम उन्मुक्त रूप में चित्रित हुआ है। प्रकृति को मानवीय रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास कवि ने किया है। राम के चित्रकूट में पहुँचने पर वहाँ का सौन्दर्य बढ़ जाता है । वन में निरन्तर वसन्त का आवास हो जाता है । उत्तरकाण्ड के हिंडोला-वर्णन में प्रकृति का उन्मुक्त चित्र उपस्थित हुआ है । राम के निवास करने से चित्रकूट -सुषमा के वर्णन में कवि रम गया है । शीतल मंद, वायु, झरनों का प्रवाह भौरों का गुंजार एवं विविध वृक्षों की हरीतिमा से चित्रकूट की शोभा निखार पड़ती है । वर्षा के आरम्भ में तो शैल श्रृंगों की शोभा मन को आकृष्ट ही कर लेती है-

सब दिन चिकूट नीको लागत ।

बरषाऋतु प्रवेस बिसेष गिरि देखात मन अनुरागत ।

चहुदिसि वन सम्पन्न विहंग मृग बोलत सोभा-पावत ।

जनु सुनरेस देसपुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ।।

सोहत स्याम जलद मृदु धोरत धातु रंगमगे सृंगनि ।

मनहु आदि अंभोज विराजत सेवित सुर मुनि भृंगनि ।।

1- गीतावली , 6-8.

सिखर परस घन घटहि मिलति बग पाँति सो छबि कबि बरनी ।
आदि बराइ बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धनि धरनी ।।
जल जुत विमल सिलनि झलकत नभ बन प्रतिबिंब तरंग ।
मानहु जग रचना विचित्र विलसति विराट अँग-अंग ।
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि भरि जल आछे ।
तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानौ राम भगति के पाछे ।। [1]

कवि ने चित्रकूट के सौन्दर्य का संश्लिष्ट चित्र अंकित किया है। यद्यपि पौराणिक अप्रस्तुतों द्वारा प्रकृतिचित्रण का स्वतन्त्र दब सा गया है फिर भी कवि का प्रकृति प्रेम तो व्यंजित हो ही गया है ।

भाषा :

साहित्यिक ब्रजभाषा में प्रणीत 'गीतावली' गीतिकाव्य की मधुर एवं रसपेशल रचना है। इसमें गेयसता के साथ स्वाभाविक प्रवाह है । कोमलकान्त पदावली तथा भाषिक सौष्ठव की रक्षा के लिये कवि ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। चामीकर, कृकाटिका, कलिन्दनन्दिनी, उरसि, निर्व्यलोक, भ्राजत, चंयरीक, द्विज, पृथुल एवं हृदि आदि शबदों के प्रयोग करके भी कवि ने भाषा को जटिल होने से बचा लिया है 'बाल विनोद', 'मोद -मंजुल-मनि', 'रामचन्द्र-मुख-चन्द्र सुधाछबि', 'नयसन-कमल कल कलस', 'ब्रह्म-मंडली-मुनीन्द्र-वृन्द-मध्य', 'सरद-समय-सरसीरूहनिंदक', 'सियसु-वसन-विभूमन', 'अंग-अंग-अगनित-अनंग-छवि', 'सिरिस-सुमन-सुकुमार मनोहर', जैसे समासबहुत शब्दों में भाषा में स्वाभाविक प्रवाह आ गया है । ब्रजभाषा की मूल प्रकृति तद्भव शब्दों की ओर

1- गीतावली, 2-50.

अधिक है अतः कवि ने तदनुकूल आसिरबाद, कीरति, छन, उछाह,कोही,सरजाद,स्वेद,पन, सोग, अरघ, सुभाउ, प्रान, परसत, इत्यादि तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है। भावों की अनुकूल अभिव्यंजना के लिये कवि ने अनरसे, लेरूआ, ढोका, टिपारे, माठ, गोड़, गोइयाँ इत्यादि देशज शब्दों का भी प्रयोग किया है । पं0 रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार, 'गीतावली' में अरबी-फारसी के 48 शब्दों का प्रयोग हुआ है। निसान, दुनी, चैन, कसम, खुलिस, अकस, निहाल, बकसत, जरकसी, सिरताज, सीपर, साहेब, एवं गरीब इत्यादि अरबी-फारसी के शब्दों को ब्रजभाषा के साँचे में ढालकर तुलसी ने प्रयुक्त किया है । 'गीतावली' में मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग प्रायः कम हुआ है । भाव-व्यंजना के लिये जहाँ बहुत आवश्यक हुआ है वहीं कहावतों एवं मुहावरों का प्रयोग कवि ने किया हे । जैसे - ' हाथ मीजिबौ हाथ रह्यो, ' ठग के से लाडू खायसे ', ' पिपीलिकनि पंख लागो ', ' तज्यो -दूध माखी ज्यौ ', इत्यादि ।

'गीतावली' में भावानुकूल सरस और मधुर भाषा का प्रयोग किया गया है। कोमल भावों की व्यंजना के कारण इसकी भाषा माधुर्यगुणोपेत है । उत्साह एवं रोष की व्यंजना में एक -दो स्थलों पर ओजगुण मिलता है । प्रसाद गुण तो सर्वत्र व्याप्त है । भाषा में अनुरणनात्मक शब्दावली का प्रयोग करके भावों को मूर्तरूप प्रदान किया गया है । 'गीतावली' की भाषा में वाच्यार्थ ही प्रायः प्रधान है । यत्र-तत्र लाक्षणिक एवं व्यंजक भाषा का भी प्रयोग किया गया है किन्तु ऐसे स्थल अत्यन्त कम हैं । इस प्रकार तुलसी 'गीतावली' में एक समर्थ भाषा प्रयोक्ता के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। भाषा पर असाधारण अधिकार रखते हुए गोस्वामी जी भावानुकूल भाषा ढालने में समर्थ हैं ।

अलंकार योजना :

'गीतावली' तुलसी की सौन्दर्यप्रधान कृति है , अतः इसमें कवि ने अलंकारों के प्रयोग से अपनी भाषा का ललित श्रृंगार किया है । शब्दालंकारों में अनुप्रास का प्रयोग शब्दमैत्री तथा पदमैत्री की सरसता तथा मधुरता के लिये किया है-

जयमाल जानकी जलज कर लई है ।

सुमन सुमंगल सगुन की घनाई मंजु,मानहु मदन माली आपु निरमई है ।।[1]

अनुप्रास ,उत्प्रेक्षा एवं पुररुक्तिप्रकाश की ध्वन्यात्मक पदावली के माध्यम से कवि ने शब्दचित्र अंकित करने में अपनी कला का प्रदर्शन किया है । जैसे -

छोटी-छोटी गोड़ियाँ अंगुरियाँ छबीली छोटी ,

नख जोति मोती माबी कमल दर्लानपर ।

ललित आँगन खेलै ठुमुक ठुमुक चलै,

झुँझुनु-झुँझुनु पाँच पैजनी मृदु मुखर ।।[2]

अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलंकार अधिक प्रयुक्त हुए हैं । 'गीतावली' में उत्प्रेक्षा और रूपक का प्रयोग खूब हुआ है । रूस्पक गोस्वामी जी का प्रिय अलंकार है। अनेक स्थलों पर सांगरूपकों के माध्यम से सौन्दर्य को प्रस्तुत किया गया है । चित्रकूट तथा फाग के सांगरूस्पकों द्वारा वन के उल्लासमय सौन्दर्य को प्रस्तुत किया गया है। राम-सीता के सौन्दर्य की कोमल, सरस व्यंजना के लिये सांगरूपक से पुष्ट उत्प्रेक्षा दर्शनीय है -

---

1- गीतावली, 1-96.

2- वही, 1-33.

सुषमा सुरभि सिंगार छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही, री ।

मथि माखन सिय राम संवारे सकल भुवन दबि मनहु मही , री ।।[1]

सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा, प्रतीप, सन्देह, भ्रान्तिमान, उल्लेख, दृष्टान्त आदि अलंकार प्रयुक्त हुए हैं । विरोधमूलक अलंकारों में विभावना, विशेषोक्ति, असंगति, विरोधाभास इत्यादि अलंकारों का प्रयोग मिलता है । कहीं-कहीं कवि ने एक साथ अनेक अलंकारों की योजना की है । कवि ने अपनी भावराशि को विविध अलंकारों से सुसज्जित किया है । सीता की विरह वेदना को व्यंजित करने के लिये कवि ने अनुप्रास , श्लेष, रूपक, विशेषोक्ति तथा उत्प्रेक्षा का आश्रय एक साथ ग्रहण किया है। जैसे-

सर-सरीर सूखो प्रान-बारिचर जीवन आस तजि चवलनु चहे री ।

तै प्रभु सुजस सुधा सीतल करि राखे, तदपि न तृप्ति लहे री ।।

रिपु रिस घोर नदी विवेक बल धीर सहित हूते जात बहेरी ।

दै मुद्रिका टेक तेहि औसर, सुचि समीरसुत पैरि गहेरी ।।[2]

छन्द विधान :

'गीतावली' एक उत्कृष्ट कोटि का गीतिकाव्य है । तुलसी ने इसमें असावरी, जैतश्री, विलावल, केदारा, घनाश्री, कान्हारा, कल्याण, ललित, विभास, नट, तोड़ी, सारंग, कल्हार, गौरी, मारू, भैरव, चंचरी, वसन्त, सोरठ तथा रामकली इत्यादि रागों का प्रयोग किया है। ये सभी राम काव्य के विषय, भाव एवं समयानुकूल संयोजित है । कतिपय कथामूलक एवं वर्णनात्मक पदों को छोड़कर 'गीतावली' में गेयता सर्वत्र विद्यमान है। संगीतात्मकता,

---

1- गीतावली,1-106.

2- वही, 5-49.

अनुभूतिजन्य तीव्रता, प्रभावान्विति, आत्माभिव्यक्ति संक्षिप्तता एवं ललित पदावली इत्यादि प्रगीतकाव्य के समस्त वैशिष्ट्य 'गीतावली' में है । यह एक उच्चकोटि की संरचना है ।

कृष्ण गीतावली

रचनाकाल :

'कृष्ण-गीतावली ' भी एक संग्रह काव्सय है । कवि ने इस ग्रन्थ की भी तिथि नहीं दी है, और न ही इस कृति में किसी ऐसी घटना का उल्लेख है जिससे इसी तिथि निर्धारित की जा सके । डॉ0 श्यामसुन्दरदास ने 'मूल गोसाईं चरित ' के आधार पर 'कृष्ण-गीतावली' के पदों की रचना का समय 'गीतावली' के साथ-साथ सं0 1616 से सं0 1628 तक और उसक संग्रहकाल सं0 1628 स्वीकार किया है।[1] डॉ0 रामकुमार वर्मा 'गीतावली' और 'कृष्ण-गीतावली' को युग्म मानते हुए दोनों को साथ-साथ की ही रचना मानते हैं।[2] पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने इसका रचनाकाल सं0 1643 और 1650 के बीचव में निर्धारित किया है[3]। जबकि वे ब्रज की यात्रा सम्पन्न कर चुके थे । डॉ0 उदयभानु सिंह ने इसकी क्रमबद्धता, व्यवथित वर्णन, प्रौढ़शैली तथा विषय निर्वाह पर विचार करते हुए इसे सं0 1643 से 1660 के बीच की रचना माना है ।[4]

डॉ0 माताप्रसाद गुप्त ने 'कृष्ण-गीतावली' का रचनाकाल इसके कथानक की सुसम्बद्धता, कलापक्ष की उत्कृष्टता तथा शैली की एकरूपता के कारण 'गीतावली' के

1- गोस्वामी तुलसीदास,पृ077-78.

2- हिन्दी साहित्यस का आलोचनात्मक इतिहास,पृ0- 416.

3- तुलसीदास और उनकी कविता, पृ0- 227.

4- तुलसी काव्य मीमांसा ,पृ0- 115.

रचनाकाल के साथ-साथ स्वीकार करते हुए इसका संकलन काल सं0 1658 के आस-पास माना है।[1]

मेरे विचार से 'कृष्ण-गीतावली' एक निश्चित कालावधि में रचित सुव्यवस्थित रचना है । 'कृष्ण-गीतावली' की रचना के समय तुलसी काशी में अधिक रहते थे। वे बल्लभकुल के गोसाइयों के सम्पर्क में भी थे । सम्भव है उन्हीं को प्रसन्न रखने के लिए उनके अनुरोध पर इसकी रचना की होगी ।

वर्ण्य-विषय एवं काव्यरूप :

'श्रीकृष्ण-गीतावली' तुलसीदास का अत्यन्त ललित ब्रजभाषा में रचिवत बड़ा ही रसमय और अत्यन्त मधुर गीति-काव्यस है । इसमें कुल 61 पद हैं, जिनमें 20 बाललीला के, 3 रूपसौन्दर्य के, 9 विरह के, 27 उद्दव-गोपी संवाद और 2 द्रौपदी लज्जा रक्षण के है। सभी पद अत्यन्त सरस एवं मनोहर हैं । इसमें बालक कृष्ण को तोतली बोली से उत्पन्न मातृहृदय की आनन्दानुभूति से लेकर भ्रमरगीत तक की घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन किया गया है । बाललीलाओं में रोटी की याचना उसे साथियों को दिखाकर खाना, माखन-चोरी, ऊखल-बंधन, गोपी-उपालम्भ आदि का वर्णन हुआ है । इसके बाद कवि ने इन्द्रकोप,गोवर्धन-धारण, यमुना तट पर वंशी-वादन, गोचवरण, छाक-लीला, गोपी-विरहख उद्दव-गोपी-संवाद तथा विनयस का वर्णन किया है । इसके सभी पद घटनाक्रम के अनुसार संकलित किये गये हैं । इसकी कथा में श्रृंखला का अभाव पाया जाता है।

1- तुलसीदास, पृष्ठ- 259.

'कृष्ण-गीतावली' एक मुक्तक रचना है । इसमें कृष्ण की कथा के माध्यम से कृष्णचरित्र के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें कृष्णचरित्र को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है । 'कृष्ण-गीतावली' के कई पद 'सूरसागर' में भी मिलते हैं । इसमें विषयनिर्वाह बड़े कौशल से पस्तुत किया गया है। 'गीतावली' की तरह कथा का अनावश्यक विस्तार इसमें नहीं मिलता है । इनकी गीतात्मकता पाठक के हृदय पर तीव्र प्रभाव डालती है ।

'श्रीकृष्ण-गीतावली' में उत्कृष्ट गीतिकाव्य की समस्त विशेषताएं पाई जाती है । आन्तरिक प्रेरणा, आवेग एवं आत्माभिव्यंजना यथेष्ट मात्रा में इसमें विद्यमान है। इसमें 'विनयपत्रिका' एवं 'गीतावली' की अपेक्षा एकरूपता अधिक दिखाई पड़ती है ।

'कृष्णगीतावली' में तुलसी ने वात्सल्य एवं श्रृंगार रसों की व्यंजना की है। वात्सल वर्णन में वे सूर की समकक्षता प्रप्त करते हुए प्रतीत होते हैं । कृष्ण दूसरे के घर में जाकर माखन-चोरी करते हैं । यशोदा के पूछने पर वे एकदम इन्कार कर जाते हैं अपितु गोपियों पर झूठ-सूठ दोष लगाने का आरोप करते हुए कहते हैं-

मो कहँ झूठेहुँ दोष लगावहिं ।
मैया । इन्हहि वानि पर घर की, नाना जुगुति बनावहिं ।।
इन्ह क लिएँ खेलिबो छाँड़यों, तऊ न उबरन पावहिं ।
भाजन फोरि बोरि कर गोरस, देन उरहनो आवहिं ।[1]

1- कृष्ण-गीतावली, पद 4.

बार-बार गोपियों द्वारा शिकायत करने पर माता यशोदा कृष्ण को माखन चोरी न करने के लिये समझाते हुए मधुर प्रलोभन देती हैं -

छाँड़ों मेरे ललन ! ललित लरिकाई ।

ऐहैं सुत ! देखुवार कालि तेरे, बबै व्याह की बात चलाई ।।

डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि हसिहैं नई दुलहिया सुहाई ।

उबटौं न्हाहु,गुहौ चुटिया बलि, देखि भलो बर करिहिं बड़ाई ।।[1]

माता ने विवाह के लालच में चोरी न करने का उपदेश दिया । माता का उपदेश सुनकर कृष्ण ने स्नानादि कार्य सम्पन्न किया । माता यशोदा ने 'कल' सगाई करने का प्रबोधन दिया था किन्तु 'कल' नहीं आया । अतः व्याकुल होकर पूछने लगते हैं। शिशु के निश्छल हृदय को मधुर व्यंजना कवि ने की है-

मातु कह्यौ करि कहत बोलि दै,

'भई बड़ि बार कालि तौ न आई ।[2]

श्रीकृष्ण ने इन्द्र के स्थान पर गोवर्धन पूजा प्रारम्भ किया । फलतः इन्द्र का कुपित होना स्वाभाविक था। इन्द्रकोप के माध्यम से कवि ने वर्षा का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है, साथ-साथ वर्षा की भयंकरता भी प्रकट हुई है -

दमकति दुसह दसहुँ दिसि दामिनि, भयो तम गगन गंभीर ।

गरजत घोर बारिघर धावत प्रेरित प्रवबल समीर ।।

1- कृष्णगीतावली, 13.

2- वही, पृ0- 13.

बार-बार पबिपात, उपल धन बरसत बूँद बिसाल ।

सीत समीत पुकारत आरत गो सुत गोपी ग्वाल ।।[1]

मुरली माधुरी के मधुर प्रसंग में कृष्ण सौन्दर्य के प्रति गोपियों की आसक्ति में संयोग-श्रृंगार का परिपाक हुआ है, किन्तु उसकी अपेक्षा वियोग श्रृंगार का मार्मिक चित्रण विशदता से हुआ है । प्रियतम कृष्ण के मथुरा चले जाने पर उनके वियोग में अपने नेत्रों को दोष देती हुई कहती है -

बिछुरत श्री ब्रजराज आजु, इन नयनन की परतीति गई ।

उड़ि न लगे हरि संग सहज तजि,है न गए सखि स्याम मई ।।

रूप रसिक लालची कहावत सो करनी कछु तौ न भई ।

साचेहूँ कूर कुटिल सित मेचक, वृथा मीन छबि छीन लई ।।

अब काहें सोचवत मोचवत जल, समय गएँ चित सूल नई ।

तुलसिदास जड़ भए आपहि तें जब पलकनि कठि दगा दई ।।[2]

अक्रूर के साथ कृष्ण के चवले जाने पर गोपियों का विरह कभी शान्त नहीं हुआ। गोपियाँ विरह के लिये अक्रूर को ही दोषी मानती रहीं ।

'कृष्णगीतावली' की भाषा 'गीतावली' के समानही साहित्यिक ब्रज भाषा है जिसमें देशज, प्रान्तीय एवं अन्य भाषाओं के शब्दों का समाहार स्वाभाविक ढंग से हुआ है कहावतां एवं मुहावरों के प्रयोग से भाषा की अर्थव्यंजना बढ़ी है । भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुणों का लालित्य सर्वत्र विद्यमान है । अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, संसृष्टि आदि

1- कृष्णगीतावली, 18.

2- वही, पृ0- 24.

अलंकारों के प्रयोग से भावसौन्दर्य में वृद्धि हुई है । तुलसी ने सांगरूपक के द्वारा सौन्दर्य-वर्णन तथा विरह वेदना की अभिव्यक्ति की है । उद्धव के उपदेश से विरहिणी गोपी की दशा अत्यन्त दुखद हो जाती है -

पावक,विरह समीर ,स्वास,तनु,तूल मिले तुम जारनिहारे ।
तिन्हहि निदरि अपने हित कारन, राखत नयन निपुन रखवारे ।।[1]

'कृष्णगीतावली' में विलावल, ललित, आसावरी, केदारा, गौरी, मल्हार, नटकान्हरा, घनाश्री और सोरठ रागों का प्रयोग भावों के अनुरूप हुआ है । इस ग्रन्थ की अनेक पंक्तियाँ सूर से मिलती-जुलती हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि इसकी रचना 'सूरसागर' से प्रभावित होकर की गई है 2 तुलसी की यह कृति उनके व्यापक वैष्णव दृष्टिकोण को प्रकट करती है । जिसमें राम और श्याम में कोई अन्तर नही है ।

शोध प्रक्रिया एवं सीमन :

विवेच्य रचनाओं के शब्द संकलन एवं शब्दानुशीलन की दृष्टि से भाषा-विज्ञान के मान्य सिद्धान्तों का अनुसरण किया गया है । इस क्रम में सर्व प्रथम कार्ड पद्धति के द्वारा सभी शब्दों की सूची बनायी गयी । इसके पश्चात् उनको अकारादिक्रम से वर्गीकृत किया गया । कार्ड पद्धति से तीनों रचनाओं के संकलित शब्दों में दो या अधिक बार आने वाले शब्दों को अलग किया गया । इसके पश्चात शब्दार्थ एवं प्रयोग वैविध्य की दृष्टि से शब्दों की तालिका बनायी गयी । शब्द संकलन के पश्चात अध्ययन क्रम से उनके अलग5अलग वर्ग बनाये गये । चूँकि हमारा उद्देश्य कोशीय पद्धति से शब्द संकलन एवं अर्थ प्रस्तुतीकरण नहीं रहा है । अत3 प्रस्तुत प्रबन्ध में सम्पूर्ण शब्दों की तालिका न देकर

1- कृष्णगीतावली , पद-56.

केवल उनके प्रमुख रूपों का उल्लेख किया गया है। इस दृष्टि से उन शब्दों की तालिका दी गयी है जो विवेच्य रचनाओं में प्रमुख रूप से आए हैं । इसी क्रम में कुछ ऐसे शब्द जो तुलसी साहित्य में विशिष्ट महत्व रखते हैं, का अर्थ विस्तार दिया गया है । इसके साथ ही विवेच्य कृतियों के आधार पर तुलसी की भाषावैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विशेषताओं का प्रतिपादन हुआ है । इस प्रकार प्रबन्ध का उद्देश्य तुलसीदास की विवेच्य रचनाओं के आधार पर उनकी भाषा के उन तत्वों क ओर संवेतित करना है, जो उन्हें एक विशिष्ट रचनाकार और शब्दाशिल्पी के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं ।

इस प्रक्रिया से गोस्वामी जी के शब्दों के प्रयोग का संकेत मिलता है । इससे आगे चलकर काव्य भाषा के आधार पर तुलसी की रचनाओं को समझने का आधार मिलेगा आज विश्व के समस्त साहित्य का काव्य-भाषापरक अध्ययन शिखर पर है । शब्द संकलन के इस प्रयोग से विवेच्य कृतियों के काव्य भाषा परक अध्ययन को नई दिशा मिलेगी । यद्यपि प्रस्तुत प्रबन्ध में काव्य-भाषा के सिद्धान्तों का अनुगमन नहीं हुआ है । हमारा प्रतिपाद्य तुलसी की शब्दावली की बहुक्षेत्रीय विशेषताओं की ओर इंगित मात्र है पर आगे इस क्षेत्र में नए शोधों की सम्भावनाएँ विकसित होगीं ।

द्वितीय अध्याय

शब्दानुशीलन

भाषा गत वर्गीकरण :

भाषा विज्ञान की दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास की विवेच्य शब्दावली को निम्नलिखित पाँच वर्गो में विभाजित किया जा सकता है -

1) संस्कृत से सीधे प्रयुक्त तत्सम शब्द ।

2) अर्द्धतत्सम शब्द

3) विदेशी शब्द

4) देशज शब्द

5) तद्भव शब्द

(1) संस्कृत तत्सम शब्द :

इस वर्ग के अन्तर्गत संस्कृत श्लोकों की भाषा में व्यवहृत शब्द अधिक हैं। गोस्वामी जी काउद्देश्य संस्कृत भाषा में रचना करना नहीं था। अत: उन्होंने संस्कृत शब्दों का प्रयोग तो किया है पर विशिष्टता जन भाषा को ही दी है । इसीलिये तत्सम शब्दों का वहीं तक प्रयोग किया है,जहाँ तक जन भाषा द्वारा वे स्वीकार्य हों । कहीं-कहीं उन्होंने तत्सम शब्दों का जनभाषा के रूप में अनुकूलन भी कर दिया है । इसके बावजूद उनकी शब्दावली में तत्सम शब्द अधिक मिलते हैं । तत्सम शब्दावली की दृष्टि से विनयपत्रिका गोस्वामी जी की सर्वश्रेष्ठ कृति है । इसमें स्तुति सम्बन्धी पदों में तत्सम शंब्दावली का प्रयोग बहुलता से हुआहै । स्तुति क्रम में गोस्वामी जी ने देववाणी की

पवित्रता के लिये तत्सम शब्दावली का ही व्यवहार किया है । इसके साथ ही उनका उद्देश्य यह भी रहा है कि जो जनभाषा भक्ति के क्षेत्र में व्यवहृत हो वह भारतीय संस्कारों की रक्षा में समर्थ हों । इसलिये जनोपसयोगिता की दृष्टि से गोस्वामी जी ने अपनी भाषा रचनाओं में तत्सम शब्दावली को एक सीमा तक स्थान दिया है। इसके लिये वे केशव की तरह लज्जा का अनुभव नहीं करते थे । उन्होंने जानबूझ कर जनभाष्य के सनातन धर्म की मान के रूस्प में सुनियोजित ढंग से प्रयुक्त किया है । इसमें गोस्वामी जी की ' सब कर हित होई ' की भावना कार्य कर रही थी । तुलसी जेसे लोक संग्रही साहित्यकार ने जनभाषा को प्रधानता देते हुए विशुद्ध संसकृत शब्दावली का प्रयोग पंडितजनों की उस चुनौती के रूप में दिया है, जिसके आधार पर वे तुलसी को धर्म द्विपेषी सिद्ध कररहे है । देवता जी के प्रति भारतीय जनमानस की श्रद्वा को जागृत रखाने के लिये उनका यह कार्य श्लाघनीयस है । शीवल जी या अन्य रचनों में जहाँ वे कठि और भक्त के रूप में उभरे हैं,तत्सम शब्दों के प्रति तुलसीदास कावह रूझान नही है पर विनयपत्रिका में गोस्वामी जी का पाण्डित्य तब तक चवरम पर है जब वे स्तुति करते हैं । यहाँ उल्लेखानीय है कि ये स्तुतियाँ लोक भाषा और संस्कृति प्रभावित भाषा दोनों में है । इसप्रकार जनभाषाको देववाणी के समकक्ष स्थापित करना उनका प्रथम प्रयोजन है और जनभाषा को देव भाषा से हीन न सिद्ध होने के बावजूद स्वयं को देववाणी के अज्ञान के आरोप से बचाना दूसरा प्रयोजन है ।

गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में तत्सम शब्दावली की दृष्टि से विनयपत्रिका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ विनयपत्रिका में न केवल तत्सम शब्दों की अधिकता है वरन संस्कृति की प्रयोग विधि भी अपनायी गयी है । कुछ पद संसकृत के ही प्रतीत होते हैं ।

गोस्वामी जी ने स्तुति क्रम में तत्सम शब्दावली का प्रयोग अधिक किया है । तत्सम शब्दों की तालिका इस प्रकार है ।

(1) विनयपत्रिका :

कृपा सिंधु, हर, रुद्र, कम्बु, कुदेन्दु,कर्पूर विग्रह, रुचिर, सर्वांग, अर्द्धांग, शैलात्मजा, ब्याल नूकपाल, मौलि, संकुल, जटा, विद्युत , पूतं ,गरज, धूमधाम,वृषमषन, व्याघ्र, गज,कर्म परिधान, विज्ञान धन, सिद्ध सुर, मुनि, सेव्यमान, कलपात, ब्रह्माण्ड, मण्डल,भवन, तज्ञ, सर्वज्ञ, यज्ञेश, अच्युत भवदंसग्रीव, ब्रम्हेन्द्र, चन्द्रार्क, वरूण, अग्नि, वषु, मरूतपग, भवदंघ्रि,अकज,निरूस्पाधि, निर्गुण,निरंजन, ब्रह्म कर्मपथ, निर्विकार, आरिज विग्रह, उग्ररूस्प,सर्वगत सर्द , सर्वोपरि, ज्ञान-वैराग्य, धन, धर्म, कैवल्य,सुरत सुभग, सौभाग्य, अरूढ़, संसार पथ, द्वामारी , भक्ति । भैरव भयंकर भूत प्रेत प्रथम धिपति मोह मूषक माजीर तरणतरण अमेष कर्ता विग्रह और संकलि पिंगल जटा शंकर संप्रदं सज्जीनन्ददं शेलकन्यसावरं परमएवं काम मदमोचवने तामरस लोचवनं बागदेव भावमक्य प्रच्चिदानन्द कन्दं यसोगीन्द्र वृन्दारका बन्धा बल्लभ शूनिल घटसीा पाथे धि कान, कानन,सवर हेराम्ब कमर्भग असि अवि,भकित,मुक्ति सर्वरीश, वर्क बंध (वि0प0 ।2) गर्म अयसोधि, मसभूत विधु,चंडकर मण्डल, ग्रासकमार्त, केलि कौतुल पति गर्व, सर्वोकरण, शरण, भुवनकर्ता, वयु, भेन्तदिगी ,लूमलला इन ज्वालालालकुलित, होलिकाकारण गद्दा कपिकअक संघट,बहु वज्रतनु समर, तेलिकयंत्र, घटना सुघट । (वि0प0 पद25) ।

तद्भव:

जस (वि-2), मगति (वि-2), मारितत (वि-3), नकबानी(वि-5), आरवत (वि-8), गाँव (वि-8), गरब गहहले (वि-3),निरारी (35), लुगाई (35), जोग (66), इतरिद(68), साखि (68), पागुर(69), ऊसरो (69), चार(71), साबर (75), बेरखी (76),

संजय्स(81),ओउ (92), दाउ (100), सिला(100), ताउ (100), रिनिसया (100), छाड (100), काको (101), पियारे (101), बारि(102), नसारी(105), गरूअ(106), संसय (108), उचवार(108), चितेरे (111), औटत (117), परवारे (117), निठुर (118), इच्छत (119), बचवत (130), गालगूल(130), सुकुल (135), कलप (135), सेनित (136), लीला(139), जामत्ति (139), बई (139), कोहातो (151), रिगु (155), जजुर(155), दादि(156), महातम(156), सूर्घ (146), त्रिजग (157), जोनि(1/7), कनौड़ो (164), स्वान (165), जती (165), सुच्छम (167), निसोती (168), कुकुर (168), नासा (16), जम (171), इलाह (167), राजउत(176), मीचवु(178), उथ्पन(180), सराघु (180), सुआड(182), बागुरो (187), तिकोन (189), खाटोला (189), गाड (189), त्रिजग (199), घिनात (179), दूबरो (246), फरन (257), तिजरा (272), औचट (272)।

देशराज :

लीले (वि-23), चिया (33), खौची(33), इयारे (33), छिपा(33), चूड़ी (70), बागि (70), खागि (70), रड (71), खोटो (72) लबार(75) लूगा (76) पनवारो गोरो (94), जेवाहम (219), भैततुवा(229), डनयो (240), मोटेउ (246), मूड़ (249), बायो (276), टकटोरि (258), गहडोरिह (258), लटे (259), धक्का (267), टोटक (272), ।

विदेशी:

उसीले (वि-32), लाहेबहि(34), गरीब(69), दरबार(71),गुलाम (77), ख्याल(95), खलल (95), गरीब निवाज (99), पिरमानी (122), दादि (139), ख्याल (146), कबूलात (146), कुदाम (151), दाम (151), कूचव (151), कुकाम (156),

फोकट {176}, जहान {180}, निहाल {180}, निवाजे {180}, बेगार{189}, दिवान{191}
सिरताजु {219}, दुनी {246}, बाजी {246}, पील {248}, गरम {249}, कंगाल {249}, सहरू {250}, कहर {250}, मिसकीना{262}, दगाबाज {264}, सोदा {264}, मचल {267}, लायक {272}, खास {276} ।

अनुकरणात्मक :

रोट {वि-31}, चुचुकारी {100}, अठकठ {189}, दलकन{189}, गदमद {193}, हहरि{219}, रिरिहा {219}, लटपेटनि {259}, लट्यो {260}, रटत रटत {260}

गढ़े हुए :

दिबोई {वि-4}, कीबी{ वि'33}, भिया {33}, बावो {72}, बडेरो {87}, छमाड {100}, छड {100}, चरचाउ {100}, नैहो {104}, मियो {181}, हिहल {189}, लगाउ {189}, मामो {228}, महरो {260}, तीय {263}, भितैहो {270}, भलेरो {272 }।

कृष्णगीतावली :

तत्सम शब्दः

बालर{1}, ललित {2}, बिबुध{3}, ति{4} परुष {5}, पयसोधर {9}, लकुट {14}, सुधा {14}, विद्यमान {16}, यावि {18}, प्रेरित प्रबल समीर{18}, मध्वा{18}, तटिनी {20}, सुरतरु {18}, पीतपह {20}, त्रिभंग {20}, स्नेह {20}, घट {20}, इन्दु {71}, सुधाकर {21}, दुर्लभ {23}, मनोहर{23}, लोचवन {23}, मोचवन {23}, वृन्दाकानन{23}, कोकि {23},विराट {26} गिरि {27}, प्रलय{27} तुषार {58} कल्प {58} रिपु{59}, नीर {59}, ।

तद्भव:

जदुराई (वि-1), सपथ (3), जुगुति (4), परनि (4), लरन (8), बिबाद (12), दुलहियसार (13), सिगरूस्7(14), जाग(16), सरबस(16), मोरचन्दा (20), सिथिल (20), रीते (20), सेस (21), परतीति (24), वृथा (24), जरवि (29), रजधानी(48), सुवन (58), करषि (28), विहर (59), बुद्धि (59), पाँच (60), समरथ (60), भीष्म(60), सुजेधन (41), कीरति (61), भगति (61),सत (57), पाँति (55), कृपान (56), बिहारत (56), निपुन(26), मरन (56), छपद (57), सत (57), बारि(57), संवारे (57), किसारे(57) ।

देशज:

तोतारात (1), विरावत (2), टेपारो (2), तनियसा (2), तरेरे (3), सुसुकि(6) मूडहि (8), कोठिला(11), छैया (19), ष्ट (20), डगरी (26), डेल (34), ठठई (36), छूछो (43), गरूई (47), निनारे (56), हहरी (60), गहगह (61) ।

विदेशी:

क्षमा (24), मिलिक (32), बेराव (32) नकीब (32) दोहाई (32) मजा(35), साहिब हि (35), गाहक (41), सयानी (41), चलाकी(43), खाजी (61), गाजी (61), नेवाजी (61), गरीब (61)।

गढ़े हुए- जीजै (7), पतीजै (7), नंग फँग (11), ललाउ(12), छैया (19), सैसया(19), फूरति(28), सठई (36), चवरेरीयै (42), औरबेर (43), पतीजे (45) ।

गीतावली की शब्दावली:

तत्सम या संस्कृतनिष्ठ शब्द :

तुलसी दास जी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने 'नानापुराण निगमागम' सम्मत बात को ही अपनी भाषा में अभिव्यक्ति किया है, इसलिये संस्कृत शब्दावली का ही प्रयोग अधिक हुआ है । लोक-संग्रह या लोक-मंगल की कामना ने उनसे 'भाषा' में काव्य-रचना करायी है । किन्तु काव्य शास्त्र ज्ञान एवं संस्कृत भाषा के अध्ययन जन्य उपलब्धि की उपेक्षा वे नहीं कर सके । 'ण' के स्थान पर 'न' 'श' के स्थान पर 'स' वर्ण और 'व' के स्थान पर 'ब' वर्ण की आवृत्ति काव्याग्रह के कारण ही हुआ है । यही कारण है कि गीतावली में भी, जो कि क्रियाओं और संज्ञाओं में ब्रज भाषा के माधुर्य को लिये हुए हैं, संस्कृताभास शब्दों की बहुलता पाई जाती है । अनुप्रासादि अलंकार-विधान में संस्कृत शब्दों की संयोजना ने पद-प्रभाव को बहुत बढ़ाया है। कुछ प्रयोग उदाहरणीय है:-

तनरूह 1/1-2; सुखसिंधु-सकृत-सीकर 1/1-11 दस स्यंदन, 1/2-6 ; कुंकुंमअगर-अरगजा 1/2-16; अंबुद 1/7-3; दृष्टि दुष्ट 1/12-2; डिंभ 1/11-4; मतिमृगनयनि 1/18-2; अलकैं कुटिल ललित लटकन् भ्रू नील नलिन 1/23-2; कामधुक 1/22-9; हाटक-मनि-रत्न-खचित रचित इन्द्र मंदिराभ 1/25-2; षडंघ्रि-मंडली,रसभंग 1/25-5; जलज संपुट, अनुभवति 1/27-5; रूस्प करह 1/29-2; दसरथ-सुकृत विबुध-बिरवा विलसत 1/30-4; पूप 1/32-6; तमचुरमुखार, गत व्यलीक 1/36; इंदिरानंद-मंदिर 1/37-4; प्रीति- वापिका मराल 1/38-1; वपुष वारिद वरषि 1/40-2; कृतकृत्य 1/48-3; रूज 1/53-8; लसति ललित 1/55-5; विदेहता 1/64-2; नीलपीत-पाथेज 2/65-1; ब्रह्म-जीवन 1/65-2; मघा-जल 1/68-7; चवलदल 1/69-3; कोदंड-कला 1/74-2; हेतुवाद, जातुधानपति 1/86-3; तुलसीस 1/87-4;

अनुभवत, दीपक विहान 1/88; प्रलयस पयोद 1/90-8; हुलसति 1/96-6; केलिगृह 1/107-3; मुख मयंक छवि 2/6-2; अवनि द्रोही 2/18-3; मधुप मृग-विहंगक 2/17; सोभा सिंधं संभव 2/27-2; सींव 2/34-1; आलबाल 2/34-8; मल-निकंदिनी लोक-लोचवनाभिराम, जनक नंदिनी 2/43; मंदाकिनि-तटनि तीर; मधुकर पिक-वरहि मुखर धातुराग 2/44; मज्त 2/46; कदलि, कदंब, सुचंपक, पाटल पनस, रसाल, ललित-लता-द्रुम-सुंल, मनोज-निकेत 2/47; भ्राजत 2/48-4; स्याम तामरस-नैन 2/54; विषय बरूनी बंधु 2/61-8 सारस; (कमल) 3/2-4; हय हति 3/8; पल्लवसालन 3/10 प्रान-बल्लभा 3/10; पुण्यस प्रताप-अनल 3/16-2; भाजन 63/1-4 भवदधिनिधि 4/2-4; निधि 5/1-3; समीर सुत 5/2-1 क्रोध विंध्य, कलसभव 5/5-2; वचन पियूष 5/6-6; सरिस 5/7-8; मोहजनित भ्रम , भेदबुद्धि 5/10-5; रसराज पुटपाक 5/13-8; वरि वृंन विधवा वनितनि ('ब' वर्ण का प्रयोग है) 5/14-3; सौमित्रि बंधु करूनानिधि 5/17-1; सुर निमेष सुरनायक नयन भारत दिग्गज कमठ कोल 5/22-6; उपल-वट-गीघ-सबरी-संसृति-समन 5/43-1; जातुधानेस भ्राता 5/43-3; दीनता-प्रीति संकलित मृदुवचन 5/43-4; सिरसि जटा कलाप पानि सायक चाप उरसि रूचिर बनमाल 5/47-3; रिपुघातक, कंदुक 6/3-2; गिरि, कानन साखा मृग 6/7-3; चवैल ब्यालबलि, मूषक 6/8; अंब अनुजगति, पवनज, भरतादि 6/13-5; खद्योत निकर भ्राजत, कुसुमति किंसुक तरू समूह 6/16-3; अभिषेक, प्रभुप्रताप रवि अहित अमंगल अघ उलूक तम 6/22; करूनारस अयन, संत कंज कानन चंचरीक, निर्व्यलीक मानस गृह 7/3; कलिंद नंदिनि, चंपक चय, चंचलाब्रह्म मंडली मुनींद्र बृंद मध्यस इंदुबदन,चिबुक-अधर-द्विज रसाल हृद-पुंडरीक, चंचवला-कलाप, कनक-निकर अजि, सज्जन-चष-झष-निकेत, रूप,

जलधि-बपुष,मन-गयंद 7/4;उरसि राजत पदिक 7/5-6; उरसि गजमनि माल 7/6-4; राज राज मौलि, दिनमणि , कंबु कंठ, कलिंदजा 7/7-2; रुचिर चिबुक रद ज्योति 7/10; कच मेचक कुटिल, चारू चिबुक,सुक तुंड विनिंदक भव त्रासा 7/12; त्रपा 7/13-5; रोमराजि, चामीकर, रविसुत मदन सोम दुति 7/17; पाटीर मुंचत 7/18; लोहितपुर 7/20; असिधार व्रत, सहस द्वादस पंचसत 7/25; पुत्रि, तव, देवसरि, प्रबोधि 7/32; मख7/38-2

उपरोक्त उदाहरणों में संस्कृत पदावली के अतिरिक्त स्थान-स्थान पर संस्कृत समास पद्धति का भी प्रयोग हुआ है ।

प्राकृत अप्रभंश भाषा के शब्दों का प्रयोग गीतावली में प्रायः नहीं है। मयन (मदन) आदि एक दो प्रयोग खोजने पर अवश्य मिल जाते हैं - 'मयननि बहु छबि अंगनि पूरति ।' 5/47-1 । परन्तु प्राकृत-अपभ्रंश की द्वित्वप्रधान संयुक्ताक्षरों की शैली, (जैसी कि कतिवावली में है, वैसी) गीतावली में बिल्कुल नही है । कारण है कि गीतावली में ओज आदि गुणों का सन्निवेश नहीं है। यह तो सुकुमार भावों की रचना है । दूसरे पद शैली में लिखी होने के कारण शब्दों को अधिक तोड़ने मोड़ने की भी आवश्यकता नही पड़ी । वैसे भी ब्रज की मधुरता के लिये प्राकृत अपभ्रंश के शब्द अनुकूल नहीं पड़ते । इसलिये कर्ण-कटु वर्णो की योजना वाले शब्दों का विनियोग गीतावली में नहीं के बराबर है ।

अर्द्ध तत्सम या तद्भव शब्द :

गीतावली में जिस प्रकार संस्कृत शब्दावली की बहुलता है वैसे ही तद्भव शब्दों की । वास्तव में अनेक शब्द हैं तो संस्कृतनिष्ठ है, परन्तु 'स', 'ब', 'न' वर्णो की

योजना से उने प्रयोग में नयापन दिखाई देता है ।वैसे भी ब्रजी का निकास शौरसैनी प्राकृत से है, जिसका उद्गम संस्कृत से हुआ है । अतः ब्रज भाषा में संस्कृत के तद्भव शब्दों की बहुलता पाई जाती है। इसका एक कारण यह भी है कि अन्त्यानुप्रास के लिए शब्द विकृत करने की कवि की कुछ विवशता भी रहती है । इसलिये 'ओकार' ' उकार' 'इकार' के रूप में पदभंजन होता है । उदाहरण के लिये कुछ तद्भव शब्द देखे जा सकते है- अप्सरा (अप्सरि), जुवति (युवति) 1/1; हुलास पाख (पक्ष), गलानी (ग्लानि) जाचक (याचक), थिर (स्थिर), उछाह (उत्साह) 1/4; काज (कार्य), जंत्र (यंत्र), जागरन (जगारण), मूलिका मनि (मूलिका मणि), सिधि (सिद्धि) 1/5; अथरवणी (अर्थववाणी), रच्छा-ऋचा (रक्षा-ऋचा), निछावरि (न्यछावरि) 1/6; दियो (दीपक),लाहु (लाभ) 1/10; अनरसे (अन्यमनस्क), आसिरबाद (आशीर्वाद) ती (तिय) 1/12; पखारि (प्रक्षालित) 1/17; बेरिया (वेला), सुरगैयसा (सुरगायस= कामधेनु), 1/20; निधानु (निधान) 1/22-11; कनियाँ (कन्धार - स्कन्ध); ऐन (अयन); मैन (मदन), कैटभारे (कैटभारि) 1/38; दारे (विदारित) , भारे (भारिल (सत्रुसालु (शत्रुशालक) 1/42-1; भुवालु (भूपाल) 1/42-4; हियसरे (हियस) 1/43; पेखक (प्रेक्षक)1/45; कीरति (कीर्ति) 1/50; दिनमनि (दिनमणि) 1/51; जग्य (यज्ञ) 1/52; कंधा (स्कन्धा) 1/56; सिंचिव (सिंचित) 1/57; अवनी (अवनि) 1/58; सगाई (सम्बन्ध) 1/71-4; आरोहै (आरोहण 1/62-4; उपवती (यज्ञोपवीत) 1/71; भाग (भाग्य), खान (क्षण), सनेह (स्नेह), चित्रसार (चित्रशाला) 1/75-2; खायकारी (क्षयकारी) 1/109-4; जनम लाहु (जन्म-लाभ) 2/1-3; दुति (द्युति) 2/5-3; निठुर (निष्ठुर) 2/8-1; प्रान कृपान (प्राण-कृपण) 2/11-2; गोऊ (गुप्त) 2/16-3; सुठि (सुष्ठि) 2/16-2; सोही (शोभित) 2/18-2;

विछोही (वियोगी) 2/19-2, लोनी (लावण्य युक्त) 2/21, बित (वित्त) 2/4, उरगाय (उरगारि) 2/26, छर (छल) 2/32, अजीरन (अजीर्ण) 2/33, अहेरी (आखेटक) 2/42, थल (स्थल) 2/45, विददृयो (विदीर्ण हुआ) 2/57, बाबौ (वाम) 2/63-1, सारो (सारिका) 2/66, घाम (घर्म) 2/68, निवाह, निबेरो (निर्वाह) 2/73, ढीठो (धृष्ट) 2/781, मसान (श्मशान) 2/84, उपहासी (उपहास) 2/85, पोखि (पोषण) 2/87, परन (पर्ण) 2/88,भाय (भाव) 3/17-4, अंबक (अम्ब) 3/17-3, भीन (भवन) 5/20, बाँह (बाहु) 5/32-3, जामति (जन्मति) 5/38, छति लाहु (क्षति-लाभ) 6/15-2, जुत (युत) 7/4-4, गौने (गमन) 7/31-1,अहिवात (अविधावात्व), बाँण (बध्या), गाँठि (ग्रन्थि), अकनि (आकर्ण्य) 2/88 ।

गीतावली में देशज शब्दः

प्रदेश विशेष की भाषा में कुछ ऐसे शब्द व्यवहृत होते है जिनका उद्‌गम ढूँढ़ना कठिन होता है अथवा जिनका उद्‌गम स्थान जन जिह्वा हुआ करती है । द्रविण प्राणयाम से इनका उद्‌गम खोज निकालना संगत नहीं लगता । गीतावली में ऐसे अनेक शब्द है जिनका उद्‌गम लोक व्यवहार ही है। जैसे -

दोनी (पृ0 194), टीना (पृ0 195), सकेलि (पृ0 202), डाँड़ियत (पृ0230), निचवोरि, बोरि (पृ0 250), घानी (पृ0 28), गोड़ (पृ0 74), जोटा,ढोटा (पृ0 100), खोरि (पृ0 95), छोलत (पृ0 193), रोटिहा (पृ0 329), हाँक (पृ0362), हरडर (पृ0 391), घमोई (पृ0 206), सोड़ कनसुई (पृ0 118), लेरूआ (पृ0 53), लाडले-लड़ैते (पृ0 52), ओट (पृ0 39), गहगहे (पृ0 20), राढ़ (पृ0 153) आदि।

अन्य प्रदेशज शब्द :

तुलसी का जीवन भ्रमण शील रहा है । अतः स्थान-स्थान पर रहकर तथा तीर्थ स्थानों में आये हुए अन्य प्रान्तों के तीर्थ-यात्रियों का सम्पर्क प्राप्त करके बहुत से जन-जीवन में व्यवहृत होने वाले शब्दों को अपना कर तुलसी ने अपने शब्द-भाण्डार को समृद्ध किया है। ऐसे कुछ शब्द हैं । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :- मोंगी (गुजराती ,पृ0 246), अगहुंड़, गोड़ (पृ0 249), मीखो, माठ गुड़ी (पृ0 368) आदि । ये शब्द भी भाव व्यंजना में सहयागी सिद्ध हुएहैं । इसी प्रकार कीबी (पृ0 257,433), डारिवी (पृ0 433) आदि बुन्देल खण्डी के प्रयोगां का भी व्यवहार हुआ है। ऐसे ही सुमिरिवे, सेइबे,ध्याइबे,गाइबे आदि का प्रयोग भी पूर्वी प्रभाव के कारण है ।

विदेशी शब्द :

शब्द चयन में तुलसी का द्रृष्टिकोण संकीर्ण नही था। अपने युग के प्रचलित विदेशी अरबी-फारसी के शब्दों का उपयोग भी तुलसी ने अपने काव्यसों में किया है। गीतावली भी इसका अपवाद नहीं है । ये शब्द है -खसम (पृ0 113, 338), सीपर (पृ0 358), साहिब (पृ0 294), कसम गरीबनिबाज (पृ0 328,29), गरीब (पृ0 340), सिरताज, जहाज, बजार आदि । इन शब्दों का निस्संकोच व्यवहार हुआहै । इससे भाव-व्यंजना बढ़ी है ,काव्यार्थ संप्रेषण सहज हो गया है ।

ढाले या गढ़े गए शब्द :

गीतावली में अनुप्रास ,ध्वन्यात्मकता अथवा भाव सम्प्रेषण के लियसे कुछ शब्दों को आवश्यकतानुसर तुलसी ने ढाला भी है, तोड़-मोड़ भी की है, जैसे -

विलंविय (पृ0 185), दुख बहु (पृ0 226), मुकताबहिंगे (पृ0 303,) चरची (पृ0 431), सारों (पृ0 246-47), गारो (पृ0 246), वचपरि (पृ0 256), बिबाके (पृ0109), कुअँरोटा, जोटा (पृ0 107),ढोटा (पृ0100), टिपारो (पृ0 86), हिसयरे-दिसयरे (पृ0 86), दारे (पृ0-80), चवौतनियाँ (पृ0 75), दँतुरियाँ (पृ0 74),पहुँचियाँ (पृ0 71), वघनहा (पृ0 71) सँतति पैंत (पृ0 67), छैया (पृ0 53), मल्हाई (पृ0 52), अनरसे (पृ0 45), मेढ़ी चुचुकारि (पृ0 44), अन्हवाइके, अन्हवैया (पृ0 42), निकैया (पृ0 41), लदू (पृ0 40), थिरथानी (दिक्पाल) (पृ0 28), खालेल (पृ0 28), ठए,चए (पृ0 25), असही-दुसही (पृ0 2), गभुआरे, 'आगामी (आगम जानने वाला) (पृ0 50), लुभारे (पृ0 149), फँसौरि (फंदा, पृ0 413) आदि शब्द अपने विशेष प्रसंग में जन जीवन की भावना को वाणी देने में समर्थ सिद्ध हुए हैं ।

कुछ विशिष्ट शब्द

गीतावली में कुछ विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो विशेष परिचय की अपेक्षा रखते हैं । इन शब्दों की पूर्व पीठिका समझे बिना पदों का अर्थ ग्रहण और परिस्थिति की प्रभावपूर्णता अवरूद्ध बनी रहती है । इनमें से कुछ शब्द लोक-जीवन के व्यवहार पक्ष को उद्‌भासित करते हैं । और कुछ सांस्कृतिक कार्यक्रमों की विशेष परिस्थिति को व्यंजित करते हैं । ये शब्द वर्णानुक्रम से इस प्रकार है :-

अरघ :

संस्कृत के ' अर्घ्य' शब्द से हिन्दी में 'अर्घ' और 'अरघ' रूप प्रचलित हुए है। 'अरघ' क्रिया षोडशेपचार में से एक मानी गयी है । अतिथि-सत्कार में अरघ देने की परम्परा भरतवर्ष में प्राचीन षोडशोपचार के अन्तर्गत बहुत प्रचलित रही है। पूजन के वे सोलह अंग है - आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य ﴾ वह जल जिससे पूजनीय व्यक्ति या देवता के पैर धोये जाते हैं ।﴿, आचमन, मधुपर्क, सनन, वस्त्राभरण, यज्ञोपवीत,गंध, पुष्प, धूप,दीप, नैवेद्य, तांबूल, परिक्रमा और वंदना । ये उपचार देव-पूजन से ही अतिथि-सत्कार अथवा पूजनीय व्यक्ति के प्रति हार्दिक उल्लास अर्पित करने एवं मंगल कामनासे प्रेरित होकर शिष्टाचार के अन्तर्गत आ गए । गीतावली में अरघ देने ी परिपाटी को अतिथि-सत्कार के ीिये ही एकाधिक स्थान पर प्रयुक्त किया गयसा है । अरघ के साथ-ही-साथ 'पाँवड़े ' शब्द का भी प्रयोग हुआ है । यह भी अतिथि-सत्कार के प्रति भाव-भक्ति प्रकट करने के लिये ही दिया जाता है । वह वस्त्र जो अतिथि-स्वागत में उसके आगमन-मार्ग पर बिछाया जाता है। ' पाँवड़े ' कहलाता है । देखिये :

(1) नाई सीस पगनि, असीस पाई प्रमुदित,

पाँवड़े अरघ देत आदर सों आने हैं ।

असन, बसन, बासकै सुपास सब विधि,

पूजि प्रिय पाहुने,सुाय सनमाने हैं। ।/6।

(2) प्रेम-पट पाँवड़े देत, सुअरघ बिलोचवन-बारि ।

आश्रम लै दिए आसन पंकज पाँय पखारि । 3/17-5

असिधार व्रत :

अत्यन्त कठिन व्रत । एक व्रत विशेष जिसमें तलवार की धार पर खड़ा होना पड़ता था। परन्तु अब यह लाक्षणिक प्रयोग है । वह कठिन संकल्प जिसमें शारीरिक या मानसिक अथवा दोनों प्रकार के कष्ट सहन करने पड़ते हैं । तरूणी स्त्री के साथ सहवास करते हुए भी उसके साथ मैथुन करने की इच्छा को रोकना ' असिधार ब्रत ' कहा जाने लगा है । बाद में अत्यन्त असाध्य ओर असम्भव कार्य को करने की तत्परता असिधार व्रत कही जाने लगी । उत्तरकाण्ड में सीता-वनवास के प्रसंग में इसका प्रयोग हुआ है । महाराज दशरथ की शेष आयु का भाग और सीता का सहवास, इसी परिस्थिति में राम की विचारावस्था को उक्त प्रयोग के द्वारा अभिव्यंजित किया गया है । देखिए :

भोग पुनि पितु-आयु को, सोउ किए बनै बनाउ ।

परिहरे बिनु जानकी नहिं और अनघ उपाउ ।

पालिबे असिधार-व्रत प्रिय प्रेमपाल सुभाउ ।

होइ हित केहि भाँति ,नित सुविचारू, नहि चित चवाउ। 7/25

अहेरी :

कोल-जीवन के 'अहेर' और 'अहेरी ' शब्द क्षत्रिय - कर्म के साथ इतने जुड़ गये हैं कि जहाँ भी, आखेट या मृगया का प्रसंग आता है, इन शब्दों का प्रयोग होता है। जिस जन्तु का शिकार करनाहो उसे ' अहेर ' कहते हैं और आखेटक को 'अहेरी' कहते हैं । सम्भव है आभीर जाति को , जिसे 'अहीर' भी कहते हैं , के मृगयाशील स्वभाव के कारणअहेरी कहा गया हो । तुलसी ने आखेटक राम की नाटकीय भंगिमाओं से युक्त शब्द-चित्र अरण्यकाण्ड में बहुत सजीव रूप में प्रस्तुत किये हैं । 'अहेरी' शब्द का प्रयोग सुन्दरकाण्उ में बड़े ही व्यंजनात्मक ढंग से हुआ है :

तुलसिदास सब सोच पोचव मृग मन-कानन भरि पूरि रहे री ।

अब सखि सिय संदेह परिहरू हिय, आइ गए दोउ बीर अहेरी । 5/49

आरती उतारना :

'दीप' के माध्यम से षोडशोपचार के अन्तर्गत आरती उतारना भी आता है । पूजा में किसी देवमूर्ति के समक्ष कर्पूर या घी के दीप को मण्डलाकार या किसी विशेष क्रम से घुमाकर आरती उतारी जाती है । परन्तु गीतावली में इस प्रसंग के अन्तर्गत आरती-उतारने की बात नहीं कही गई । विवाह आदि में कोई मान्य या पुरोहित, वर या वधू की मंगल -कामनाके निमित्त आरती उतारते हैं । ग्राम क्षेत्र में इसे 'आरता कहना' या 'आरतो उतारनो ' भी कहा जाता है । उक्त शुभ अवसर पर आरती उतारते हुए कुछ लोकगीत भी होते है, जिनको स्त्रियाँ सामूहिक रूप में गाती है । विवाह सम्पन्न हो जाने के पश्चात्, वधू के ससुराल आने पर , वर-वधू की सम्मिलन मंगल-कामना के लिए वर

की माँ नवदम्पति की आरती उतारती है । इस लोक-रीति को गीतावली में भी उसी प्रसंग में निर्वाहित किया गया है :

उमगि उमगि आनंद बिलोकति वधुन सहित सुत चारी ।

तुलसिदासआरती उतारति प्रेम-मगन महतारी । 1/109-5

उकठना :

यह शब्द संस्कृत के अव + काष्ठ से विकसित हुआ है । वह वृक्ष या पादप जिसके पल्लावादि सूख जाँय, जड़ों में रस-ग्रहण की शक्ति न रहे,उकठा हुआ कहलता है । कभी-कभी ऐसा भी होताहै कि वृक्ष या पादप का कुछ भाग शुष्क होकर काष्ठवत् हो जाताहै और कुछ भाग में हरीतिमा का संचार बना रहता है । ऋतु के विशेष आग्रह से कभी-कभी उसका शुष्क भाग भी पल्लवित होने लगता है । ऐसे ही वृक्ष के लिये ' उकठना ' शब्द का प्रयोग गीतावली में हुआ है :

उकठेउ हरित भए जल थल रूह, नित नूतन राजीव सुहाई ।

फूलत फलत, पल्लवत, पलुहत बिटप बेलि अभिमत सुखदाई । 2/46

कन्सुई लेना :

'कनसुई' का संस्कृत रूप कर्ण-सूच्य है । इसका अर्थ है आहट लेना,टोह लेना, छिपकर किसी की बात सुनना या भेद जानना । 'कन्सुई लेना ' लोक-जीवन की एक विशेष रीति भी है । इस रीति के अनुसार स्त्रियाँ शकुन विचार करती हैं । इसमें गोबर की गौरी बनाकर और उसे छलनी में रखकर पृथ्वी पर गिराते हैं । यदि वह सीधी गिरे तो शुभ और उल्टी या आढ़ी गिरे तो अशुभ मानी जाती है । शकुन-विचार के प्रसंग में

ही गीतावली में इस शब्द का प्रयोग हुआ है :

लेत फिरत कनसुई सगुन, सुभ बूझत गगन बोलाइकै ।

सुनि अनुकूल, मुदित मन मानहु धरत धीरजहि धाइकै । ।/70

कलेऊ :

हिन्दी में इस शब्द के समान्तर कई अन्य शब्द भी प्रचलित है कलेवा, जलपान, नहारी ,बासी आदि । कलेवा करना, कलेवा कर लेना आदि मुहावरे भी प्रचलित हैं,जिनका अर्थ है मान डालना, निगल जाना, हड़प जाना, यह शब्द संस्कृत के 'कल्यवर्त' से विकसित हुआ है । कलेऊ का व्यवहारिक अर्थ है वह हल्का भोजन जो प्रातःकाल, कार्य पर जुटने से पहले, किया जाता है । वात्सल्य भावना के अन्तर्गत इसका अर्थ शिशु अथवा बालकों का प्रातःकालीन जलपान या भोजन लिया जाता है । सूरदास ने 'कलेवा' शब्द का बहुशः प्रयोग किया है । तुलसी ने भी शिशु जीवन के अल्पाहार से सम्बन्धित इस शब्द का प्रयोग किया है :

भोर भयो जागहु, रघुनंदन । गत व्यलीक भगतनि उर-चवंदन ।

\+ + + +

मनभावतो कलेऊ कीजै । तुलसिदास कहँ जूँठनि दीजै । ।/36

कीरै अरथ-चरचा :

शुक-पाठ, तोता रट्टनि, पटे पढ़ना आदि प्रयोग बिना अर्थ समझे हुए केवल रट लेने के लिये किये जाते हैं । जिस प्रकार तोता बिना अर्थ समझे हुए बोलने वाले या पढ़ाने वाले के समान शब्दों की पुनरावृत्ति कर देता है , तात्पर्य समझ कर नहीं बोल

पाता,उसी प्रसंग में इसका प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार भाव न समझकर केवल किसी के बताये हुए शब्दों को बोल देने वाला व्यक्ति ' तोता 'कहलाता है । गीतावली में लक्ष्मण-कथन में ' कीरै अरथ चरचा ' का प्रयोग हुआ है । सेवक भाव की तन्मयता, जिस में सेवक को अपने शरीर की सुधिबुधि ही नहीं रहती, स्वामि-धर्म ही उसका सर्वस्व हो जाता है, की व्यंजना उक्त प्रयोग में हो रही है । देखिए :

हृदय घाउ मेरे, पीर रघुबीरै ।

पाइ सजीवन, जागि कहत यों प्रेम पुलकि बिसराय सरीरै ।

मोहि कहा बूझत पुनि पुनि ,जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै । 6/15

कुश-साथरी :

'साथरी ' शब्द लोक-जीवन का है । किसी विशेष परिस्थिति में व्रत आदि की सिद्धि के लिये ' कुस-साथरी' पर शयन किया जाता है । भारतीय कर्म-काण्ड में कुशा तृण को अति पवित्र माना जाता है । जप-तप या यिज्ञादि में कुशासन का उपयोग किया जाता है । किसी विशेष व्रत की पूर्ति तक पर्यक-शयन-वर्जित माना जाताहै । भूमि शयन में साधक कुश-पट्टिका का प्रयोग करता है । साथरी या साथरा विशेष विस्तर या बिछौना हाता है, जो मृतक व्यक्ति के घर में ग्यारह या तेरह दिन, जब तक सूतक निवरण न हो जाय, बिछाया जाता है । वहाँ भी पलंग शयन वर्जित रहता है । यह शब्द ग्राम्य जीवन की विशेष रीति को व्यंजित करता है । वनवास में श्री राम-सीता और लक्ष्मण के भूमि शयन के सम्बन्ध में 'कुससाथरी' का प्रयोग हुआहै । गीतावली में भरत चित्रकूट-गमन के समय मार्ग में बनवासी राम की कुश-साथरी देखकर भाव-विहल हो उठते हैं। देखिए :

तादिन सृगंबेरपुर आए ।

कुस-साथरी देखि रघुपति की हेतु अपनपौ जानी ।

कहत कथा सिय-राम लषन की बैठेहि रैनि बिहारी । 2/68

कूबरकी लात :

यह मुहावरात्मक प्रयोग है, जिसका 'अर्थ अनुकूल होना ' या 'संयोग' है। लात लगना कष्टमय होता है, कूबर का होना भी कष्ट प्रद ही है। परन्तु उसी कूबर पर लात पड़ जाय तो उस पद-प्रहार से लात का कष्ट तो होगा ही, किन्तु कूबर ठीक हो जायेगा। विभीषण भाई रावण से अपमानित होकर राम की शरण जा रहे हैं । उस समय वे मार्ग में धुनाबुनी करते हुए मनन करते जा रहे हैं कि भाई ने भाईपन निभा ही दिया । यद्यपि उसने मेरे लात तो अहित के लिये मारी थी, किनतु इससे मेरा भला ही हुआ । कूबर में लात लगने से वह ठीक हो जाता है । यदि रावण मेरे लात न मारता तो मेरा राक्षर-सहवास जन्य दोष रूप कूबर ठीक नहीं हो पाता । अब में राम की शरण में जा रहा हूँ । विधाता ने मेरी बात बना दी। देखिए :

अंतहु भाव भलो भाई को, कियो अनभलो मनाइकै ।

भई कूबर की जात, विधाता राखी बात बनाइकै । 5/28

केलि गृह :

इस प्रयोग के ही पर्याय प्रयोग है । प्रमोद-भवन, क्रीड़ा-गृह, रति-गृह। ऐसा लगता है कि मध्यकाल में भी प्राचीन प्रमोद-भवनों की कल्पना विद्यमान थी । राजप्रासादों में सम्भव है कि केलि-गृह पृथक् से निर्मित और सज्जित रहते होंगे । इनमें सर्वत्र और सर्वकाल सुखद वातावरण बना रहता होगा । दम्पत्ति के अतिरिक्त अन्य

स्त्री-पुरुषों का प्रवेश इनमें वर्जित रहता होगा । अथवा रति-प्रसंग में अनुभवी निर्देशिकाओं की नियुक्ति रहती होगी । तुलसी ने गीतावली में राम-विवाह के पश्चात लक्ष्मण-उर्मिला के प्रसंग में उनके ' केलि5गृह-गमन' की बात कही है ।

सौाा-सील- सनेह-सोहावनों, समउ केलिगृह गौने ।

देखि तियनि के नयन सफल भये,तुलसीदासहू के होने। 1/107

खरि-खाना :
---------तेल निकाल लेने के पश्चात तिलहन की बची हुई सीठी खाली या खारि कहलाती है । प्रयोग में 'ल' का 'र' में वण् व्यत्य हुआ है । 'खारि-खाना' मुहावरात्मक प्रयोग है । अर्थात तुच्छ नीरस, निस्सार, साधारण भोजन करना । तुलसी ने यह प्रयोग आत्म कथन के सम्बन्धा में किया है । इससे उनके बाल्य या किशोर जीवन की निरीहवस्था की व्यंजना हो रही है । देखिए :

हुतो ललात कृसगात खात खरि, मोद पाइ कोदो-कनै ।

सा`तुलसी चातक भयो जाचवक राम स्याम सुंदर घनै । 5/40-4

खेत की धोखे :

कृषक वर्ग कृषि की रक्षा के लिये खेत के बीच में एक डारावने मनुष्य का सा आकार बनाकर,काला कपड़ा उठाकर खड़ा कर देते हैं । जिस से दिन के और विशेषकर रात्रि के समय पक्षी और मृग खेती को हानि न पहुँचायें । गांव में इस 'विजूकौ' यसा 'ओझपौ' भी कहते हैं । गीतावली में धनुष-भंग के प्रसंग में जब, आगन्तुक राजालोग धनुष-भंग होने पर चींचपड़ करने लगे , तब लक्ष्मण जी ने भृकुटि-भंग से उनकी ओर

दृष्टि पात किया । इस पर सबके सब निष्प्रभ हो गए। इस परिस्थिति को 'खोत के घोखे' को देखकर अचेत हो जाने की दशा से उपमित कियसा है । देखिए :

कुँवर चढ़ाई भौहै, अब को विलोकै सोहैं,

जहँ तहँ भे अचेत खेत के से घोखे हैं । 1/95

गगन से तारा टूटना :

आकाश से तारा टूटने को जन-जीवन में अशुभ लक्षण या अशकुन माना जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि आकाश से तारा टूटते ही पृथ्वी पर किसी विशिष्ट जीवात्मा का प्राणान्त हो जाताहै । मेरी माँग ने तो मुझे यहाँ तक सिखाया था कि जब कोई तारा टूटे तो राम-राम जपना चाहिए, जिससे अमंगल का निवारण हो सके । गीतावली में राम वियुक्त दशरथ की निराशाजन्य मानसिक एवं शारीरिक क्षीणता की प्रतीति इस प्रयोग द्वारा कराई गई है । इससे प्रयोक्ता के दो मन्तव्य प्रकट होते हैं एक तो उनका शरीर निरन्तर क्षीण और निष्प्रभ होता जा रहा था, दूसरे भविष्य में कोई विशेष अमंगल होने वाला था । और इससे अगले ही पद में दशरथ की मृत्यु की बात कही गई है। देखिए :

राम-सोक-सनेह संकुल, तनु विकल, मनु लीन ।

टूटि तारो गगन -मग ज्यों होत छिन-छिन छीन । 2/58-2

गुड़ी बिनु बाय :

पतंग उड़ाने का रिवाज सम्भव है तुलसी के समय में भी रहा हो और उन्होंने कटी हुई पतंग की निरूपायवस्था का अवलोकन स्वयं किया हो । किन्तु गीतावली में यह प्रयोग मुहावरात्मक है । बिना वायु के पतंग नीचे की ओर ही गिरती है । इस

स्थिति को ब्रज प्रदेश का पतंगबाज 'पत्ताय गई ' प्रयोग से सम्बोधित करता है, जिसका अर्थ है पेड़ से गिरते हुए पत्ते के समान गिरना । लक्ष्मण की मूर्च्छा की बात सुन कर अयोध्या में ही बन-वास की दशा व्यतीतत करने वाले भरत की उतावली बहुत बढ़ जाती है । वे सोचते हैं 'श्रीराम के संकट का मुख्यस हेतु मैं ही हूँ । मेरे सेवक -धर्म से क्या लाभ, जो स्वामि-संकट में भी उनका सहायक न बन पाया। इस परिस्थिति में वे 'सनेह-शिथिल' हो जाते हैं । उनकी ऐसी दशा देख कर माताओं की मनःस्थिति बिना वायु की पतंग के समान गिरती या डूबती हुई सी प्रतीत होती है :

कहत सिथिल सनेह भो, जनु धीर घायल घाय ।

भरत गति लखि मातु सब रहि ज्यों गुड़ी बिनु बाय। 6/14-3

घमोइ करना :

यह भी मुहावरात्मक प्रयोग है । 'घमोई' सत्यानाशी , फल कटेरी या भड़भाँड़ को कहते हैं । यह कटीले पत्ते का एक छोटा पौधा होता है । घमोइ को सत्यानाशी भी कहते हैं , इसलिये इसका लाक्षणिक अर्थ लिया जाता है । इसका शाब्दिक अर्थ है विनष्ट करना, बर्वाद, दुर्दशा पूर्ण, खण्डहर के रूप में । इसी अर्थ में जायसी ने भी इसका प्रयोग किया है :

देखोहुँ तेरे मंदिर घमोइ । मातु तोहि आँधरि भई रोइ ।

गीतावली में इसका प्रयोग हनुमान के स्वगत-कथन में कराया है, जिससे उनके प्रभु-कार्य पूर्ण करने में मानसिक उत्साह की व्यंजना होती है । जब वे असहाय सीता को देखकर हर्ष-शोक के कारण कुछ कर्तव्य निश्चित नहीं कर पाते तब सोचते हैं

कि मैं लंका को 'घमोइ' अर्थात् खण्डहर के रूप में परिणत कर दूँगा,उजाड़ दूँगा। देखिए:

करत कछू न बनत , हरि हिय हरष सोक समोई

कहत मन तुलसीस लंका करहुँ सघन घमोइ। 5/5-7

घुटी :

घुटी या घुट्टी वह क्वाथ या औषधि है , जो छोटे बच्चों के पाचन को ठीक रखने के लिये दी जाती है । इस शब्द का प्रयोग भी उसी प्रसंग में किया गया है, किन्तु अप्रस्तुत-विधान के रूस्पमें यह प्रयोग अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है । देखिए :

साँवरे गोरे पथिक बीचव सोहति अधिक ,

तिहुँ त्रिभुवन-सोभा मनहु लूटी ।

तुलसी निरखि सिय प्रेम बस कहैं तिय,

लोचवन-सिसुन्ह देहु अमिय घूटी । 2/21-2

चाँचरि :

इसका 'चाँचर ' रूप भी प्रचलित है । यह संस्कृत के 'चर्चरी' का विकसित रूप है । यह शब्द लोकगीत के एक प्रकार का द्योतक है जो उत्तर प्रदेश में वसन्त या होली के अवसर पर खूब गाया जाता है । यह गीत विशेष नृत्य करते हुए गाया जाता है। यह गीत श्रृंगार-विष्य प्रधान होता है । इस राग विशेष को जैन कवियों ने (विशेष कर जिनदत्त सूरि की 'चच्चरी' रचना) अपनी रचनाओं में प्रयुक्त किया है। कबीर के 'बीजक' में भी इसका प्रयोग हुआ है। चाँचर शब्द का प्रयोग सम्भवतः ऐसे पदों के लिए हुआ होगा जिनमें 'चर्चरिका' नामक ताल की लय का प्रयोग होताहो। वसन्तोत्सव के प्रसंग में

गायसे जाने के कारण इस राग का विषय होली आदि ही होता है । सन्तों और भक्त कवियों ने इस काव्य रूप को भक्ति अथवा आध्यात्मिक विषय प्रधान बना दिया है। फिर भी श्रृंगार की सुखद भावना के रूप उनमें भी देखे जाते हैं । तुलसी ने 'चाँचरि' का प्रयोग ठीक परम्परानुसार ही किया है । श्रीराम के निवास करने पर चित्रकूट की मनोहारी प्रकृति में ऋतुराज का आगमन बतायसा है और उसी अवसर पर होली का रूपक भी प्रस्तुत किया है । भक्ति भावना से प्रेरित कवि का स्वयं का साक्ष्य भी प्रस्तुत है :

तुलसिदास चाँचरि मिस कहे राम गुनग्राम ।

गावहिं, सुनहिं नारि नर, पावहिं सब अभिराम । 2/47-22

उत जुवति जूथ जानकी संग । पहिरे, पट भूषन सरस रंग ।

लिये छरी बेंत सोधैं विभाग । चाँचरि झूमक कहें सरस राग । 7/22

चित्रकूट - कथा :

चित्रकूट कथा का सम्बन्ध इन्द्र केपुत्र जयन्त की कथा से है । राम कथा के प्रसंग में यह प्रसंग अत्यन्त गोपनीय माना जाता है । एक बार चित्रकूट में भगवान् राम और सीता सुखासीन थे कि अभिमानी इन्द्र-पुत्र जयन्त ने काक रूप धारण करके, राम की शक्ति अजमाने का दर्प लेकर, सीता जी के चरण में चुचु-घात कर दिया था। तदुपरान्त उड़ कर भाग जाना चाहा। उसी समय श्रीराम ने एक तृण का शर बनाकर उसको लक्ष्य करके छोड़ दिया । जयन्त जहाँ -जहाँ जाता, अपने पीछे वह तीर आते दिखाई देता । वह अपने पिता इन्द्र, ब्रह्मा और शिव आदि सभी शक्तियों की शरण गया । परन्तु राम विरोधी होने के कारण कोई भी उसी रक्षा न कर सके । तत्पश्चात् नारदजी के आदेश से वह उन्हीं भक्त वत्सल श्रीराम की शरण में आया । उन्होंने उसे क्षमा तो

कर दिया, परन्तु उसके दुष्ट कृत्य के लियसे उसके वाम अक्षि गोलक को निकाल लिया। इस प्रसंग को एकान्त होने के कारण सीता और राम के अतिरिक्त कोई नहीं जानता था। राम-दूत पवन पुत्र हनुमान ने अशोक वाटिकास्थ सीता जी से 'चित्रकूट कथा' कह कर दो बातों को व्यंजित किया है । एक तो यह कि सीता का विरोध करने पर जिस प्रकार जयन्त की दुर्दशा हुई थी, वैसी ही रावण की भी होनी है । दूसरी बात यह कि वे स्वयं श्रीराम के प्रिय सेवक और निकटतम जनों में से हैं तभी तो उस प्रसंग को जान सके हैं । देखिए :

चित्रकूट-का ,कुसल कही सीस नायो कीस ।

सुहृद-सेवक नाथ को लखि दई अचल असीस। 5/6-5

छठी :

शिशु जन्म के छठे दिन की पूजा या संस्कार छठी कहलाता है । शिशु-जन्म पर 'नामकरण' से पूर्व छठी का उत्सव बड़े विधान के साथ किया जाताहै । इस अवसर पर रात्रि-जागरण करके स्त्रियाँ विशेष मांगल्य गीत गाती है । तथा शिशु की मंगल-कामना से प्रेरित होकर अनेक प्रकार का दान-पुण्य किया जाता है। गीतावली में राम-जन्म के अवसर पर तथा लव-कुश के प्रसंग में 'छठी' शब्द का प्रयोग एकाधिक बार हुआ है । देखिए :

छठी-बारहो लोक वेद विधि करि सुविधान बिधानी ।

राम लषन-रिपुदवन भरत धरे नाम ललित गुर ग्यानी। 1/4-12

तिन्ह की छठी मंजुलमठी, जग सरस जिन्ह की सरसई ।

किए नींद-भामिनि जागरन, अभिरामिनी जामिनि भई। 1/5-3

तुलसी तपत तिहु ताप जग, जनु प्रीु छठी-छाया लही। 1/5-6

मुनिवर करि छठी कीन्हीं बारहें की रीति। 7/35-1

जल-अजंलि देना :

दोनो हथेलियों को मिलाकर बनायसा हुआ संपुट अजलि कहलाता है । भक्ति भावना से प्रेरित होकर देवता या सूर्यादि को चढ़ाया हुआ अर्घ्य जलाललि कहलाताहै । परन्तु जलदान यसा तर्पण के रूप में जलांजलि देने का प्रयोग विशेष परिस्थिति को प्रकट करताहै। मृतक व्यक्ति के परिवार का वरिष्ठ सदस्य, मृतक आत्मा की शान्ति-कामनाकरते हुए तर्पण रूस्प में जलदान करता है । गीतावली में इसी प्रसंग में 'जल अंजलि दई' का प्रयोग हुआ है । श्बरी के श्रीर त्याग के पश्चात मातृ-भावना से प्रेरित होकर श्रीराम 'जलदान क्रिया' सम्पन्न करते हैं । देखिए :

अति प्रीति मानस राखि रामहिं, राम धामहि सो गई ।

तेहि तु ज्यो रघुनाथ अपने हाथ जल-अंजलि दई। 3/17-8

ज्योति-लिंग-कथा :

पुराणों में ज्यतिलिंग की कथा प्रसिद्ध है । शिव के बारह लिंगों में से एक प्रधान लिंग है । कहा जाता है कि ब्रह्मा और विष्णु ज्योतिलिंग का आदि-अन्त पाने के लिये तीनों लोकों में घूमें, स्वर्ग और पाताल लोक में अन्त और आदि को देखते फिरे, किन्तु उसका बार-पार नहीं पा सके । जनक जी शिवधनुष की अनन्तता हुए 'ज्योतिलिंग कथा' से उसकी समता करके उसकी गुरूता बताते हैं । देखिए :

बान जातु धानपति, भूप दीप सातहूके,

लोकप विलोकत पिनाक भूमि लईहै ।

जोतिलिंग कथा सुनि जाको अंत पाए बिनु ,

आए विधि हरि हारि सोई हाल भईहै । 1/86-2

टोना पढ़ना :

इसको 'टोटका करना' भी कहते हैं । जिसमें मंत्र-तंत्र का प्रयोग कर प्रतिपक्ष को अभिभूत या मुग्ध करने के लिये जादू या तांत्रिक विद्या का उपयोग किया जाता हे, उसे टोना पढ़ना कहते हैं । टोना पढ़ना एक मुहावरात्मक प्रयोग है, जिसकी व्यंजना है अपने विशेष गुण, रूप या वाणी से दूसरे को मंत्र-मुग्ध कर लेना । इसी अर्थ में गीतावली में इसका प्रयसोग है । श्रीराम अपने दिव्य स्वरूप से दर्शकों को मुग्ध कर लेते हैं :

हेरत हृदय हरत,नहि फेरत चारू विलोचन कोने ।

तुलसी प्रभु किधौं प्रभु को प्रेम पढ़े प्रगट कपट बिनु टोने। 2/23-3

दूध की माखी :

मुहावरात्मक प्रयोग है। किसी व्यक्ति को तुच्छ या अनावश्यक समझ कर अपने साथ से एक दम अलग कर देना अथवा पूर्णतः सम्बन्ध विच्छेद कर लेने के सम्बन्धमें इस मुहावरे का प्रयोग होता है। इसी अर्थ में गीतावली में इसका प्रयोग हुआ है। रावण ने विभीषण को अपमानित करके निकाल दिया है, इस लियसे विभीषण कहता है:

करुना कर की करुना भई ।

दसमुख तज्यो दूध माखी ज्यों आपु काढ़ि साढ़ी लई। 5/37-2

दुष्ट दृष्टि :

गीतावली में 'दुष्ट दृष्टि' प्रयोग -नजर लगने' के लिये प्रयुक्त हुआ है। लोक-जीवन में ही नहीं, नगर जीवन में भी 'शिशुओं की नजर न लगे' इसलिये माताएं उनके नजरौटा या मसि बिन्दु लगा देती है, जिससे दुष्ट दृष्टि का केन्द्र वह मसि बिन्दु बन जायस, शिशु का मुख नहीं । स्त्रियों की डाह या ईर्ष्या जन्य दृष्टि शिशुओं को विशेष रूप से लगाती है । जिससे वे उदास या ज्वराक्रान्त हो जाते हैं। उस दृष्टि के कुप्रभाव से वे पय पान नहीं करते और जनमने से बने रहते हैं । इस दृष्टि के कुप्रभाव से शिशुओं को मुक्त करने के लिये माताएँ शिशुओं का तुलादान कराती हैं, मनौती मनाती है, शिशु के ऊपर मिर्च भूसी आदि उतार कर अग्निमें जलाती हैं । सूरदास ने शिशु कृष्ण के प्रसंग में दृष्ट दृष्टि या नजर लगने की बात अनेक बार कही है । शिशु-जीवन का वर्णन करते हुए तुलसी भी गीतावली में इस लोक मान्यता की उपेक्षा नहीं कर सके । देखिए :

आज अनरसे हैं भारके, पय पियत न नीके ।

रहत न बैठे, ठायड़े पालने झुलावतहू,

रोवत राम मेरो सो सोच सब ही के ।

देव, पितर ग्रह पूजियसे तुला तौलिये घी के ।

तदपि कबहुँक सखी ऐसेहि अरत जब परत दृष्टि दुष्ट ती के । 1/12

कुदृष्टि लगने पर या कुपरछाई पड़ने पर ग्राम-जीवन में किसी ओझा यसा पुरोहित अथवा 'भगत ' या सियाने' से, कष्ट-मोचवन के लिये झाड़ा लगवाया जाता है, मंत्र फुंकवाया जाता है । इसका उल्लेख भी गीतावली में है । 'ताकि झरावति कौसिला, यह रीति प्रीति की हियस हुलसति तुलसी के ।' (1/12) । गीतावली में शिशु संकट-मोचन के लिये 'रक्षा-ऋचा' (1/6-16) और 'नृसिंह-मंत्र' (1/12-3) शब्दों का भी उललेख हुआ है। ' रक्षा-ऋचा ' है :

ॐ अंगाअंगादभिजातोऽसि हृदयादभिजायसे ।

आत्मा वै पुत्रनामासि त्वं जीव शरदां शतम् ।

नृसिंह -मंत्र है : -

ॐ नमो नृसिंहाय हिरण्यकशिपु वक्षस्थल विदारणायस त्रिभुवन व्यापकाय भूतप्रेतपिशाचव शाकिनी डाकिनी कीलनोन्मूलनायस स्तम्भोद्वव समस्त दोषान् हन-हन सर-सर चल-चल कम्प-कम्प मथ-मथ हुँफट्-हुँफट् ठंठः महारूद्रजापित स्वाहा ।

नामकरण :

हिन्दुओं के सोलह संस्कारों में से पाँचवे संस्कार की संज्ञा 'नामकरण' है । प्रायसः शिशु-जन्म के बारहवें दिन यह उत्सव सम्पन्न किया जाता है। इसलियसे इसे 'बाही' या 'बारही' भी कहते हैं । इस दिन सूतक निवारणार्थ यज्ञादि किया जाता है और शिशु का नामकरण होता है । स्त्रियाँ मांगल्य गीत गाती हैं । शिशुओं का तुलादान भी किया जाता है । तुलसी ने हिन्दू रीति-नीतियों को गीतावली में ही नहं अपनी समस्त रचनाओं में यथा स्थान स्वीकारा है । गीतावली में तो नामकरण-संस्कार से सम्बन्धित पूरा

एक पद है, जिसमें नामकरण उत्सव के विधि-विधान को व्यंजित किया है। देखिए:

छठी बारहौं लोक-वेद विधि करि सुविधान विधानी ।

राम लषन रिपुदवन भरत धरे नाम ललित गुर ग्यसानी। ।/4-12

लोक-रीति विधि वेद की करिकह यसा सुबानी ।

सिसु समेत बेगि बोलिए कौसल्या रानी ।

सुनत सुआसिनि लै चली गावत बड़ भागी ।

उमा-रमा सारद सचवी लखि मुनि अनुरागी ।

वचाल्स् चौक बैठत भई भूप भामिनी सोहैं ।

गोद मोद मूरति लियसे सुकृती जनजोहैं ।

भरत लषन रिपुदवनहूँ धरे नाम विचारी ।

फलदायसक चवलचवारिके दसरथ सुतचवारी। ।/6

नामकरन सु अन्नप्रासन वेद बांधी नीति ।

समय सब रिषिराज करत समाज साज समीति । 7/35-2

'अन्नप्राशन' का संस्कार भी हिन्दुओं में होता है । इस दिन शिशु को सर्व प्रथम अन्न खिलाने के उपलक्ष्य में उत्सव मनाया जाता है ।

निराना :

यह शब्द संस्कृत के 'निराकरण' शब्द से विकसित हुआ होगा। परन्तु हिन्दी में एक विशेष क्रिया के लिए इस शब्द का प्रयोग होता है। कृषक गण अपने खेतों में से खुरपी के द्वारा जंगली घास या झाड़ झंकार को उखाड़ कर फैंक देते हैं,

जिससे कृषि अथवा आरोपित पौधों का विकास न रुक सके । तुलसी ने लोक-जीवन के इस शब्द का उसी प्रसंग में प्रयोग किया है ।

जेहि जेहि मग सिय राम लषन गए,

तहँ-तहँ नर-नारि बिनु छर छरिगे ।

जोते बिनु बए बिनु निफन निराए बिनु,

सुकृत सुखेत सुख सालि फूलि फरिगे। 2/32

सपने कै सौतुक सुख सस सुर सींचत देत निराई कै । 5/28-6

पंथ-कथा :

मार्ग की वह दिनचर्या जो बटोही (बाट + वाह) के यात्रा काल में घटित होती है, वही कहने सुनने के लिये उसकी पंथ-कथा बन जाती है। राम के वनवासी जीवन की, जिसमें राम को अनेक स्थानों पर ठहरना पड़ा, मार्ग के नर-नारियों ने उनके दर्शन किये , अनेक आश्रमों और ऋषि-मुनियों का साक्षात हुआ यह समूचा प्रसंग पंथ-कथा कहलाता है । तुलसी का कहना है कि गुरू और पुराणादि से सुन-पढ़कर राम की पंथ-कथाका बखान किया है ।

पंथ-कथा रघुनाथपथिक की तुलसिदास सुनि गाई।

पालना :

पालना शिशुओं को झुलाने का विशेष प्रकार का झूला होता है, जिसमें उन्हें लिटाकर माताएं लोरी गाते हुए उनकी सुखाद नींद की कामना करती है। लोरी गाने

को पालना-गीत भी कहा जाता है । सूर के वात्सलय वर्णन में पालना सम्बन्धी अनेक पद हैं । गीतावली का वात्सलय वर्णन , कथा को प्रमुखाता न देने के कारण, मार्मिक बन पड़ा है । इसलिये पालना-सम्बन्धी मार्मिक झाँकी कई पदों में प्रस्तुत हुई है । मातृ हृदय की वत्सल भावना पालना सम्बन्धी गीतों में द्रवित होकर वह निकली है। देखिए :

पौढ़िये लालन, पालने हौं झुलावौ । ।/18-।

सोइयसे लाल लाडिले रघुराई ।

+ + + +

गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई ।

बछरू,छबीलो छगन मगन मेरे, कहति मल्हाई मल्हाई ।

साजुनज हिय हलसति तुलसी के प्रभु की ललित लटिकाई । ।/19

सुख सोइए नींद बेरिया भई, चारू चरित चार्‌यो भैया ।

कहति मल्हाइ, लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया । ।/20

कनक- रतन मय पालनो रच्यो मनहुँ मार-सुतहार ।

विधि खोलौना,किंकिनी, लागे मंजुल मुकुताहार । ।/22-।

पालने रघुपति झुलावै ।

लैलै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गौव । ।/23

झूलत राम पालने सोहैं । भूरिभाग जननीजन जोहैं ।

किलकत निरखि विलोल खोलौना । मनहु विनोद लरत छबि छौना । ।/24

पाँसे पड़ना :

'पाँसा ' संस्कृत के 'पाशक' शब्द का विकसित रूप है । हाथी दाँत या अस्थि निर्मित चार पाँच अंगुल लम्बी बत्ती के आकार का चौपहल टुकड़ा होता है जिससे चौसर का खेल खेला जाता है । इसके प्रत्येक पहल पर कुछ बिन्दु बने रहते हैं । खेल में यदिये बिन्दु अनुकूल पड़ गये तो उस कहेंगे 'पूरे पेंत पड़े हैं ', 'भली भाँति भले पेंत' (2/32) 'प्रमुदित पुलकि पेंत पूरे जनु विधिबस सुढर ढरे हैं'। (6/13) अथवा पांसा पड़ गया , जिसका अर्थ है दांव हाथ आना या दाँव हाथ लगना । और यदि बिन्दुओं की संख्या प्रतिकूल हुई तो कहेंगे पाँसा कउलट गया । यह मुहावरा चौपड़ खेल से ही व्यवहार में आया है । जिसका अर्थ कार्य-सिद्ध होने को पाँसा पड़ना और बिगड़ जाने को पाँसा उलटना के रूस्प में लिया जाता है। देखिए :

सो सनेह समउ सुमिरि तुलसीहू के-से
भली भाँति भले पेंत,भले पाँसे परिगे। 2/32-4

पिंड देना :

पके हुए चावल अथवा आटे आदि का गोल लोंदा जो मृतक के वक्ष पर रखा जाता है ,पिंड कहलाता है। हिन्दू आचार-पद्धति में श्राद्ध क्रिया के विधान में पितरों को पिंड देकर तृप्त किया जाता है । कोई पारिवारिक जन ही यह क्रिया सम्पन्न करता है । जिसके वंश में कोई नहीं होता उसके लिये कहा जाताहै कि अमुक व्यक्ति का तो पिंड देने वाला या पानी देने वाला तक भी कोई नहीं रहा । गीतावली में यह प्रयोग उसी प्रसंग में हुआ है । प्रस्तुत प्रयोग में राम की उदारता और शरणागत वत्सलता की

व्यंजना हो रही है :

कौने गीध अधम को पितु ज्यो निज कर पिंड दियो ? 5/46-2

पुटपाक :

वैद्यक में औषधि तैयार करने की एक विशेष रीति है, जिसके द्वारा पत्ते के दोने में रख कर विशेष विधान के द्वारा औषधि पकाई जाती है । कभी-कभी वर्तन का मुँह बन्द करके गड्ढ़े के भीतर रख कर या अग्नि में रखकर औषधि पकाई जाती है। यह पक्व क्वाथ पुटपाक कहलाता है ।

रसराज :

इसी प्रकार वैद्यक में 'रसराज' बनाने की विधि भी वर्णित है । पारे (पारद) में अन्य रसों का मिश्रणकरके, लोहे या पत्थर के विशेष आकार के पात्र (खारल) में कूट या घोंट कर रसायन या पुटपाक बनाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि इस रसायन का सेवन करके वार्धक्य नहीं होता । तुलसी ने इन बैद्यक सम्बन्धों शब्दों का प्रयोग गीतावली में किया है, जिनसे उनका वैद्यक ज्ञान व्यंजित होता है । रूपक तत्व के आधार पर इस प्रक्रिया का प्रयोग हनुमान के द्वारा कराया है। देखिए :

जो हौ प्रभु आयुसु लै चलतो ।
रावन सो रसराज सुीट रस सहित लंक खाल खलतो ।
करि पुटपाक नाक नायक हित घने घने घर घलतो। 5/13-2

' कवितावली में भी इसका प्रयोग है :

जातुधान बुट, पुटपाक लंक जातरूप,

रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो ।

फगुआ मनाना :

फाल्गुन के महीने में होलिकोत्सव के सम्बन्ध में फाग या फगुआ मनाने की प्रथा का उल्लेख अनेक कवियों ने किया है :

दीन्हें मारि असुर हरिने तब दीन्हों देवन राज ।

एकन को फगुआ इन्द्रासन एक पताल को साज। --- सूरदास

ज्यों ज्यों पट झटकति हटति हँसति नचावति नैन ।

त्यों त्यों निपट उदार है फगुआ देत बनै न ।---बिहारीलाल

फाग खेलने का उत्सव होलिकोत्सव से ही सम्बद्ध है होली के आस-पास ऋतु की प्रेरणा से लोक-जीवन इतना उल्लासमय हो उठता है कि फाग खेलने के रूप में जन-जीवन आमोद-प्रमोद और खुशियाँ मनाने लगता है । इस उत्सव में परस्पर लोग,कहीं-कहीं लुगाई भी, एक दूसरे पर रंग, पिचकारी, अबीर-गुलाल आदि डालते हैं और अपने मन की उमंग को एक विशेष तोष देते हैं । फगुआ होली के उपलक्ष्य में गाया जाने वाला विशेष लोगगीत भी होता है । जिसमें श्रृंगारिकता यसा अश्लीलता का अंश अधिक रहता है । फाग या फगुआ खाने के उपलक्ष्य में दिया जाने वाला विशेष उपहार भी 'फगुआ' ही होता है जिसे 'फगुआ' देना कहते हैं। गीतावली में फाग सम्बन्धी लोक-जीवन की बहुविधि

रीति -नीतियों को तुलसी ने अभिव्यक्ति प्रदान की है । देखिए :

चित्रकूट पर राउर जानि अधिक अनुरागु ।

सखा सहित जनु रति-पति आयउ खेलन फागु। 2/47-9

आजु बन्यो है विपिन देखो, रामधीर ।

मानो खेलत फागु मुद मदन बीर ।

बट,बकुल,कदंब, पनस रसाल । कुसुमित तरून्ह निकर कुरव तमाल।

मानो विविध वेष धरे छैल यूथ । विच बीच लमा ललना बरूथ ।

पनवानक निरझर अलि उपंग । बोलत पावत मानो डफ मृदंग । 2/48-3

ऋतु पति आए भलो बन्यसो बन समाज।

मानो भए हैं मदन महाराज आज ।

मनो प्रथम फागु मिस करि अनीति ।

होरी मिस अरिपुर जारि जीति। 2/49

नूपुर किंकिनि धुनि अति सोहाई । ललना गन जब जेहि धरहै धाइ ।

लोवचन औजहिं फगुआ मनाई । छाड़हिं नचाई, हाहा कराइ ।

चवढ़े खारनि विदूषक-स्वाँग साजि। करैं कूटि निपट गई लाज भाजि।

7/22-8

फल-साग के पाहुने :

पाहुन अतिथि,अभ्यागत, मेहमान । पाहुन {सं0 प्राघुणक, प्राघूर्ण} ऐसा मेहमान होता है जो पत्र-पुष्प से ही प्रसन्न हो जाए ,अनुकूल हो जाय । ऐसा देवता जो

भाव-मात्र से ही तुष्ट हो जायस, नाना भाँति के व्यंजनों की अपेक्षा जो पत्र-पुष्प से ही अनुकूल हो जाए 'फल साग का पाहुना ' कहलाता है । कृष्ण के सम्बन्ध में कहा जाता है :

बथुआ सागु अरौनी भाँजी, हितुकरि भोग लगइयो स्वामी ।

अन्तर घर की मेवा त्यागी, साग विदुर घर खायो,

संवलिया भाव कौ,भूखो ।

'राम भूखो भाय कै ' के रूप में तुलसी ने उक्त कथन का प्रयोग, शबरीआतिथ्यस के प्रसंग में, किया है :

बालक सुमित्रा कौसिला के पाहुने फल-साग के । 3/17-6

बधावा :

लोक जीवन का 'बधावा' आज नगर जीवन में बधाई के रूप में परिवर्तित हो गया है । किसी शुभ अवसर पर मंगल भावना से प्रेरित होकर मंगल बचन बधावा या बधाई कहलाता है । ग्राम-जीवन में पुत्र या शिशु जन्म पर बधावा या 'बधाऔं' गाने की प्रथा है । अतः शिशु जन्म से सम्बन्धित गाए जाने वाले लोक गीत 'बधाये' कहलाते हैं । 'आनन्द बधाये' के रूप में आनन्द सूचवक गीत भी बधाये कहलाते है । इसी प्रसंग में वह उपहार जो सम्बन्धियों या इष्टमित्रों द्वारा बधाई के रूप में आता है 'बधावा' कहलाता है। तुलसी ने उपहार और गीत दोनों ही रूपों में 'बधावा' शब्द का प्रयोग किया है । देखिए:

गए जाम जुग भूपति आवा । घर घर उत्सव बाज बधावा ।

-मानस

सजि आरती विचित्र थार कर जूथ जूथ बर नारि ।

गावत चली बधावन लै लै निज निज कुल अनुहारि। ।/2-9

घर घर अवध बधावने मंगल साज-समाज। ।/5

बाजत अवध गहागहे अनंद बधाए। ।/6-।

सुनत नगर आनंद बधावन, कैकेयी बिलखानी। 2/।

पूत जाए जानकी द्वै, मुनि बधू उठीं गाइ ।

हरषि बरषत सुमन सुर गहगहे बधाए बजाइ। 7/34-।

बाँह पगार :

शरण या आश्रम देने वाले व्यक्तियों को 'बाँह पगार ' कहा जाता है । 'पगार' शब्द संस्कृत के 'प्राकार' का विकसित रूप है, जिसका अर्थ है 'दीवार' । जो अपनी भुजा रूप दीवार से अपने आश्रित की रक्षा करता है उसे 'बाँह पगार' कहते हैं। हनुमान, जामवंत, सुग्रीव आदि ने इसी अर्थ में राम को 'बाँह पगार' कहा है :

बाँह पगार द्वार तेरे तैं सभय न कबहूँ फिरि गए ।

तुलसी असरन-सरन स्वामि के बिरद बिराजद निज नए। 5/32-3

मघा-जल :

सत्ताईस नक्षत्रों में पाँचवे नक्षत्र का नाम 'मघा' है जिसमें पाँच तारे हैं । इसलिये इसे मघा नक्षत्र योग भी कहते हैं । ज्योतिष के अनुसार माना जाता है कि मघा नक्षत्र के अनतर्गत बहुत वर्षा होती है । बाहुल्य या बहुतायत की सम्भावना ही गीतावली के इस प्रयोग में द्रष्टव्य है :

नगर लोग सुधि पाइ मुदित सबही सब काज बिसारे ।

मनहु मघा-जल उमगि उदधि रूख चले नदी नद नारे। 1/68-7

मज्जन करना :

किसी पवित्र सरिता के जल में शरीर को अवगाहित करने को मज्जन करना कहते हैं । इसी अर्थ में गीतावली में इसका प्रयोग हुआ है :

मंदाकिनि मज्जत अवलोकत त्रिविधि पाप, त्रयताप नसाई । 2/46-2

मज्जन करि सरजुतीर ठाढ़े रघुबंसबीर । 7/3-2

मल्हार:

इसको मलहार कहते हैं । एक राग या गीत विशेष, जिसको सामूहिक रूप से कोरस के रूप में स्त्रियाँ वर्षाऋतु में, हिंडाले पर अथवा झुंड प्रयाण में गाती हैं । उसी प्रसंग में गीतावली में इसका प्रयोग है । हिंडोला और वर्षा वर्णन के अन्तर्गत इसका उल्लेख हुआ है :

सारंग गुंड मलार , सोरठ, सुहव,सुघरनि बाजही। 7/19-4

झूलहि झुलावहि ओसरिन्ह गावै सुहो, गौडमलार । 7/18-5

मसान-पावक :

'मसान' शब्द संस्कृत के 'श्मशान' का विकसित रूप है। मसानिया या श्मशान में रहने वाले डोम आदि के द्वारा सुरक्षित अग्नि **'मसान पावक'** कहलाती है । यह अग्नि उसकी संरक्षा में निरन्तर प्रज्जवलित बनी रहती है। आवश्यकता पड़ने पर मृतक-दाह के

लिए किसी भी समय यह अग्नि श्मशान में प्राप्त की जा सकती है । यह अग्नि अशुभ मानी जाती है, इसलिये घर के भीतर इसको नहीं रखा जाता । राम-वनवास के पश्चात कौशल्या ने अपने को 'मसान पावक' बताया है,जिसका अर्थ है दुर्भाग्यशाली ,अभागी। देखिए :----

पति सुरपुर, सिय- राम लषन बन, मुनि व्रत भरत गह्यो ।

हौं रहि घर मसान पावक ज्यों मरिबोई मृतक दह्यो । 2/84-2

रक्षा-ऋचा -

'नामकरण' के पश्चात अथवा किसी मांगलय पूजनादि के पश्चात पुरोहित यजमान और उसके परिवार को मंत्र पढ़ कर आर्शीवाद देता है। इसको आर्शीर्वादात्मक मंत्र अथवा 'रक्षा ऋच ' कहा जाता है । (इसका उल्लेख नामकरण के प्रसंग में हो चुका है।) गीतावली में अवधेश के कुमारों का 'नामकरण' संस्कार होने के उपरानत कुलगुरू वशिष्ठ रक्षा-ऋचा पढ़ते हैं। देखिए :

लगे पढ़न रच्छा-ऋचा ऋषिराज विराजे ।

गगन सुमन झरि, जय जय बहु बाजने बाजे। 1/6-16

रोटिहा :

ेवज उदर पूर्ति या रोटी खाकर चाकरी करने वाला चाकर रोटिहा कहलाता है। लोक जीवन में यह शब्द खूब प्रचलित है । 'रोटिहा' चाकर की दिनचर्या रोटी देने वाले मालिक के आश्रित रहती हैं । वह पेट भरने के लिये अपनी शारीरिक सेवायें मालिक को अर्पित कर देता है। इसका लाक्षणिक अर्थ है कि रोटिहा व्यक्ति अपने जीवन-निर्वाह

के लिये रोटी-दाता या आश्रयदाता का आश्रयस या संरक्षण चाहता है। भक्ति के क्षेत्र में अपने को रोटिहा कहने का तात्पर्य है अत्यन्त दीन, मन्सा वाचा-कर्मणा सेवक-धर्म स्वीकार करने वाला । इसी अर्थ में तुलसी ने विभीषण के मुख से इस शब्द का प्रयोग कराया है :

कहिहौ, बलि रोटिहा रावरो बिनु मोलही बिकाउँगी ।

तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौ, उबरी जूठनि खाऊँगी । 5/30-4

बसन्त-बिहार :

बसन्त ऋतु में बसंत -पंचमी या उसके अगले दिन वसंत उत्सव मनाने की परिपाटी है । इसदिन लोग उद्यानों में बसंत और कामदेव की पूजा करते थे । तदुपरान्त मनोविनोद के साथ वसन्तोत्सव मनाया जाता था। इसे मदनोत्सव भी कहते है। होली खेलने की परम्परा भी इसका एक रूस्प है । बसन्त खेलने अथवा बसन्तोत्सव के विषय को जिस पद या गीत में 'बाँधा जाता है, उसे भी बसन्त बिहार कहते हैं । गीतावली में 'बसन्त-विहार' नाम से दो पदों का संग्रह है, जिनमें बसन्त खेलने का उल्लेख है। देखिए:

खेलि बसंत कियो प्रभु मज्जन सरजू तीर। 7/21-24

खेलत बसंत राजाधिराज । देखत नभ कौतुक सुर-समाज ।

सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ । झोलिन्ह अबीर,पिचकारि हाथ। 7/22

विन्ध्यस अगस्त्य कथा:

यह कथा महाभारत में वर्णित है। अगस्त्य मित्रावरूण के पुत्र एक प्रसिद्ध ऋषि थे । इनको कुंभज भी कहते हैं । मान्यता है कि उर्वशी को देखने पर मित्रावरूण

के वीर्यस्खलन से इनका जन्म हुआ था । सागर-पानकी कथा भी इनसे ही सम्बन्धित है। विवाह योग्य कोई कन्या न मिलने पर इन्होंने स्वयं एक कन्या की सृष्टि की, जिसे विदर्भराज ने पाला-पोसा था और उसका नाम लोपामुद्रा रखा था ।

विन्ध्याचल पर्वत से सम्बद्ध आगस्त्य की एक और कथा है । इसके अनुसार हिमाचवल को नीचा दिखाने के लिये विन्ध्याचल से सूर्य से कहा कि सुमेरू पर्वत की भाँति मेरी भी प्रदक्षिणा किया करो । पर सूर्य नहीं माना । इस पर विंध्याचल बढ़ने लगा जिससे सूर्य का मार्ग अवरूद्ध होने लगा । इस अनष्टि की आशंका से देवों ने अगस्त्य से उसकी प्रगति अवरूद्ध करने के लिये प्रार्थना की । अगस्त्य जैसे ही उसके निकट गये वैसे ही विन्ध्य ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया । अगस्त्य ने स्वयं लौटने का उसे आश्वासन दिया पर अब तक न वे आये हैं और न लम्बायमान विन्ध्याचल ही उठकर खड़ा हुआ है । उक्त मान्यता के अनुसार ही गीतावली में इस कथा का संकेत हुआ है :

अकनि कटु बानी कुटिल की क्रोध विंध्य बड़ोइ ।

सकुचिव सम भयो ईस आयसु कलस भव जिय जोइ । 5/5-2

लोहे ललकारना :

'लोहे ललकारना' युद्ध विषयक प्रयोग है। लोहे ललकारने से तात्पर्य है तलवार से तलवार लड़ाना, लोहास्त्रों से लउ़ना । परन्तु लोहे ललकार कर लड़ने का लाक्षणिक अर्थ है बहादुरी ,पराक्रम पूर्वक युद्ध में कौशल दिखाना । इसी प्रसंग में इसका गीतावली में प्रयोग हुआहै ।:

सुनि रन घायल लषन परे हैं ।

स्वामि काज संग्राम सुीटसों लोहे ललकारि लरे हैं। 6/13-1

सगुन मनाना :

शकुन विचार का एक व्यवहारिक प्रयोग सगुन मनानाहै। शकुनि (पक्षी) से ही शकुन जानने की परिपाटी बाद में ज्योतिष से सम्बद्ध हुई। भविष्य में होने वाले किसी सम्भावित कार्य की सिद्धि एं शुभ परिणाम के लिये सगुन मनाने का रीति जन-जीवन में प्रचलित है । इसी सम्बन्धा में ज्योतिषी आदि से, कार्य की अनुकूल सिद्धि के लिये पारिवारिक जन प्रश्न करते हैं और वह उनका समाधान करता है। श्रीराम के वनवास से अयोध्या आगमन के प्रसंग में कौशल्या के द्वारा 'सगुन-मनाने' की बात गीतावली में कही गई है । जन-जीवन में मान्यता है कि घर की किसी मुंडेर पर कोई काग बोल जाय तो किसी आगन्तुक के आगमन का निश्चय माना जाता है। देखिए :

बैठी सगुन मनावति माता ।

कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर,कहहु काग ! फुरि बाता ।

दूध भात की दौनी देहौ, सोने चोंच मढ़ैहों ।

\+ \+ \+ \+

गनक बोलाइ, पाँच परि पूछति प्रेम मगन मृदु बानी । 6/19

साग खाकर जनना :

यह मुहावरात्मक प्रयोग है। लोक जीवन में मान्यता है कि जिस शिशु का शाक-भाजी आदि को अधिकता से सेवन करने के पश्चात जन्म होता है । अर्थात जो

माता गर्भावस्था के दौरा अधिक शाक्-पात या हरी सब्जी खाती है, उसका शिशु श्याम वर्ण का तथा भावना रहित होताहै । इसी जनभावना की मान्यता को तुलसी ने गीतावली में जनकपुर के स्त्री पुरूषों द्वारा आगन्तुक राजा लोगों के प्रति व्यंग्यपूर्वक मुखा किया है:

देखो नर-नारि कहैं, साग खाई जाए माइ ,

बाहु पीन पॉवरनि पीना खाई पोखो है । 1/95-3

साढ़ी काढ़ना :

तपाने के बाद दूध के ऊपर जमने वाली बालाई या (मलाई) के लिये पूर्वांचल में प्रयुक्त होने वाला शब्द 'साढ़ी' है । इसका लाक्षणिक अर्थ है सारतत्वको ग्रहण कर लेना,तत्व की बात स्वीकार कर लेना । सूरदास ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है- 'सब हेरि धरी है साढ़ी । लै उपर - उपर तैं काढ़ी ।' गीतावली में अप्रस्तुत विधान के रूस्प में इसका प्रयोग हुआ है:

करनाकर की करूना भई ।

दसमुख तज्यो दूध माखी ज्यों, आपु काढ़ि साढ़ी लई । 5/37-2

सार करना:

सेवा करने के अर्थ में इसका प्रयोग होताहै । गीतावली में भरत के द्वारा रामाश्वों की सार करने की बात कौशल्या ने पथिक से कही है :

भरत सौगुनी सार करत है, अति प्रिय जानि तिहारे ।

तदपि दिनहिं दिन होत झॉंवरे, मनहु कमल हिम मारे । 2/87-3

सिला लक्नी :

'सिला' संस्कृत के 'शिला' शब्द का व्यावहारिक रूप है । कटे हुए खेत में से चुना हुआ दाना 'सिला' कहलाता है औरकटे हुए खेत में बिखरे हुए दाने को चुनने की प्रक्रियसा - 'शिला वृत्ति' कहलाती है । दूसरे के परिश्रम का भाग लेने के कारण सन्यास में शिलान्न को ग्रहण किया जाता था। खेत काटे जाने के पारिरमिक स्वरूप मजदूरों को जो कटी हुई शालि दी जाती है उसे लवनी कहते हैं । कहीं-कहीं उसे 'लाँक' भी कहते हैं । कम या अल्पता के लिये 'सिला-लवनी' शब्दों का प्रयोग होताहै । तुच्छ या अवशिष्ट किन्तु अल्प भाग के रूप में ही गीतावली में इन शब्दों का प्रयोग हुआ :

रूप - रासि बिरचवी विरंचि मनो सिला लवनि रति काम लहे री ।

1/106-4

सुर-निमेष :

ऐसी मान्यता है कि देवताओं का निमेष संचालन नहीं होता । इसी मान्यता का प्रयोग गीतावली में हुआ है । वानर-सेना के चलते समय इतनी धूलि उड़ी कि जिससे पलक न मार सकने वाले देवताओं को परेशानी हो रही थी । इन्द्र के सहस्त्र नेत्रों में धूलि के कारण और अधिक कष्ट हो रहाथा। देखिए :

पवन पंगु पावक पतंग ससि दुरि गए थके विमान ।

जाचवत सुर निमेष सुरनायक नयन भार अकुलान। 5/22-6

सोहिला :

इसे सोहला, सोहना, सोहर आदि कई रूप व्यवहार में प्रचलित हैं । 'सोहर' सम्भव है संस्कृत के 'सूतिकागृह ' और प्राकृत के 'सुइहर' से विकसित होकर आया है। वह गीत जो जन्मोत्सव के समसय घर में स्त्रियाँ गाती हैं, सोहर या 'सोहिला'कहलाताहै । उपनयन संस्कार तथा विवाह के समय भी कहीं-कहीं यह गीत गाया जाता है । यह गीत हिन्दी जनपद में बहुत लोक-प्रिय है । वस्तुतः यह एक मांगलिक गीत है । शोभा या शोभावत् से भी इस शब्द का सम्बन्ध हो सकता है। कहीं-कहीं 'सोहिला' को 'मंगल' भी कहते हैं । सोहर-छंद के रूप में ही इसका प्रयोग है :

सहेली सुन सोहिलो रे ।

सोहिलो,सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो सब जग आज ।

पूत सपूत कौसिला जायसो, अचल भयो कुल-राज । ।/2-।

आजु महामंगल कोसलपुर सुनि नृप के सुत चारि भए ।

सदन-सदन सोहिलो सोहावनो, नभ अरू नगर निसान हए । ।/3-।

भयो सोहिलो सोहिले मो जनु सृष्टि सोहिले-सानी । ।/4-7

स्वांग :

लोक-जीवन में प्रसिद्ध लोक-नाट्य का अत्यन्त जनप्रियस रूप 'स्वांग' है । पिछड़े हुए समाज-भंगी, धोबी, धानुक, कुर्मी, चर्मकार, काछी, बारी आदि के द्वारा सामूहिक रूप में ,नृत्यादि प्रस्तुत करते हुए जो अभिनय किया जाता है वह 'स्वांग' कहलाता है । इसमें स्त्री-पुरुष दोनां ही भाग लेते हैं । किन्तु पुरुषों की संख्या अधिक होती है । युग्म

के रूप में वे नाचते -गाते और हँसी ठठ्ठा करते हैं । अधिकतर पुरुष ही स्त्री वेष धारण कर लेते हैं । किसी श्रृंगारिक गीत की टेक वाली पंक्ति को बार-बार दुहराते हुए ढोलक ,मजीरा, फूल का बेला आदि ताल-सम पर बजाते हुए समा बाँधते हैं । नाचने वालों की श्रृंगारिक चेष्टाएं दर्शकों के नेत्रों को आकर्षित करती है । विदूषक का अभिनय खासतौर से हँसी-मजाक के लिये होता है। संवाद शैली की योजना से स्वांग लोक-रूपक में नाटकीय तत्परता आ जाती है । इनका मंच खुला होताहै, पर्दा आदि नहीं होते और अन्य प्रकार के रंगमचीय शिष्टाचार का अभाव भी स्वांग में रहता है । दृश्य भेद भी नहीं होते। प्राय: शादी-व्यवहारादि उत्सवों और त्योहारों पर गांवों में स्वांग की व्यवस्था होती है । होली के अवसर पर भी स्वांग खेले जाते हैं । गीतमावली में उसी परिवेश में रूपात्मक झाँकी प्रस्तुत करने के प्रसंग में 'स्वांग' शब्द का प्रयोग हुआ है। देखिए :

चित्र-विचित्र विविध मृग, डोलत डोंगर डाँग ।
जनु पुर बीथिन बिहरत छैल संवारे स्वांग ।
नचहिं मोर, पिक गावहिं सुरबर राग बँधान ।
निलज तरून तरूनी जनु खेलहिं समय समान । 2/47-12

लोचन आजहिं फगुआ मनाई ।छाड़हिं नचवाइ, हाहा कराइ ।
चढ़े खारनि विदूषक स्वाँग साजि । करै कूटि, निपट गई जाल भाजि।

7/22-8

स्वांन-खग-जति न्याउ :

बाल्मीकि रामायण द्वारा उल्लिखित श्वान-कथा की ओर संकेत है । इस न्याय के अनुसार राम की न्याय-प्रियता की व्यंजना होती है। कहा जाताहै कि एक कुत्ता

श्रीराम के दरबार में आया, उसने इच्छा प्रकट की कि उसके मारने वाले को मठाधीश बनाया जाय। क्यों कि मठाधीश होने पर दान की हुई चीजों का जो भाग ग्रहण करता है और जो देवता, ब्राह्मण की सम्पत्ति को हरने का विचार बनाता है, वह नराधम नरक का अधिकारी होता है । कुत्ते के कहने से न्यायस प्रिय श्री राम ने निरापराध प्रहार करने वाले ब्राह्मण को मठाधीश बनाया । खग से यहाँ जटायु की ओर संकेत है, जो आमिष भोगी होने से श्रेष्ठ कर्मन करने के कारण उच्च योनि का अधिकारी नहीं होता । किन्तु श्रीराम ने मरते समय उसके द्वारा श्रेष्ठ कर्म में प्रवृत्त होने के कारण ,अच्च्छी गति प्रदान की । यति से शम्बूक-बध की ओर संकेत है, जिसको शूद्र वर्ण का होने के कारण,तपस्या निरत होने पर भी (क्योंकि जिसके कारण एक ब्राह्मण की अकाल मृत्यु हुई थी) श्री राम ने अपनी तलवार से बध किया था । देखिए :

पालत राज यों राजा राम धरम धुरीन ।

स्वान-खग जति न्याउ देख्यो आप बैठि प्रबीन ।

नीचु हति महिदेव बालक कियो माचु बिहीन। 7/24-2

हाँक देना :

बढ़ावा देना, प्रेरणा देना, किसी के नेतृत्व में प्रयाण करना । यह मुहावरा बढ़ावा देने के अर्थ में ही अधिक प्रयुक्त होता है । गीतावली में भी इसी रूप में इसका प्रयोग हुआ है :

परी भोर ही रोर लंक गढ़, दई हाँक हनुमान । 6/9-9

हिंडोला :

हिंदोल या झूला को हिंडोला कहते हैं । परन्तु काव्यों में वर्षादि वर्णन के रूप में हिंडोला शब्द का प्रयोग पारिभाषिक ही होता है जिसका अर्थ है, स्त्रियों का सामूहिक रूप में झूला झूलना । उस समय जो गीत गाया जाता है , उसे भी हिंडोला या 'हिंडोला गीत' कहते हैं । इसमें सावन के झूले वाले गीत रहते हैं । उत्तर भारत में वर्षा ऋतु में हिंडोला राग गाने की अधिक प्रथा । गीतावली में 'हिंडोला' शीर्ष में ही (जिसमें 25 पंक्तियाँ है) हिंडोला सम्बन्धी गीत या वर्षा -गीत का उल्लेख है । देखिए:

आली री ! राघो के रूचिर हिंडोलन भूलन जैए ।

+ + + +

उनये सघन घनघोर मृदु झरि सुखद सावन लाग ।
बगपाँति सुरधनु, दमक दामिनि हरित भूमि विभाग ।

+ + + +

सो समौ देखि सुहावनों नवसत सँवारि-सँवारि ।
गुन रूप जोवन सींव सुंदरि चली झुंडनि झारि ।
हिंडोल साल विलोकि सब अंचवल पसारि-पसारि ।
लागीं असीसन राम सीतहिं सुख समाजु निहारि । 7/18-4
गृह-गृह रचवे हिंडोलना महि गच काँच सुढार। 7/19-3
अति मचत,छूटत कुटिल कच, छबि अधिक सुंदरि पावहीं ।
पट उड़त भूषन खसत, हँसि-हँसि अपर सखी झुलावही । 7/19-4

हेतुवाद :

'हेतशास्त्र' तर्कशास्त्र को कहते हैं, हेतुवाद तर्क विद्या को । व्यवहार में हेतुवाद का लाक्षणिक अर्थ कुतर्क या नास्तिक पक्ष के समर्थन से किया जाता है। कुतर्क अर्थ में ही गीतावली में 'हेतुवाद' शब्द का प्रयोग हुआ है । जनकजी विश्वामित्र से कहते हैं:

आपुही विचारिये, निहारिये सभा की गति,

बेद-मरजाद मानौ हेतुबाद हुई है । 1/86-3

होरी :

हिन्दुओं का एक विशिष्ट त्योहार है जो फालगुन के अन्त में मनाया जाताहै। ऋतु की प्रेरणा से सर्वत्र आनन्द खुशी का वातावरण छाया हुआ प्रतीत होता है । इस उत्सव के उपलक्ष में लोग परस्पररंग, अबीर आदि डालकर अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करते हैं । होली के ही प्रसंग में जो गीत या लोक-गीत विशेष, सामूहिक रूप में गाये जाते हैं, उन्हें भी होली या होली -गीत कहते हैं। 'होली जलाने के रूप में यह मुहावरा है । अपव्यय या अग्नि से विनाश के लिये भी इस शब्द का प्रयोग होता है । गीतावली में होली जलाने के रूप में इस शब्द का प्रयोग हुआ है । देखिए:

मनो प्रथम फागु मिस करि अनीति ।

होरी मिस अरिपुर जारि जीति । 2/49

तृतीय अध्याय

शब्द स्वरूप

तुलसी दास जेसे कवि ने अदभुत भाषा ज्ञान दन्दोबद्धता एवं काव्यात्मक अनीूति के कारण अपने साहित्य में उन भाषाओं के व्याकरणिक रूपों की ओर भी ध्यान दियाहै इसके बाबजूद काव्सयात्मक अभिवाछित के कारणउनहें व्याकरणिक नियमों काउल्लघन भी करनापड़ा है । तुलसी जैसे मर्थ कवि के काव्यस में नियम तोड़नादोष नहींह` वरन् भाषा विकास की दृष्टि से स्वस्थ लक्षणहै क्यों कि इससे भाषा प्रवाह अक्षुण्णरहता है और व्सयारिणिक क्षमता भी वर्द्धित होती है तुलसीदास की काव्यस भाष मेंमूलतः अवधी और ब्रजभाषाका का प्रयोग हुआहै परनतु शब्दावली उन्होंने बहुत सी भाषाओं में ग्रहणकी है । अतः उनके प्रचलित प्रसयोगों की स्वीक।ति सहज है। इसलिये उनकाभाषा-विशेष के प्रति आग्रह नहीं है । इसके स्थान पर गोस्वामी जी ने काव्य प्रवाह को ही महत्व दिया है ।

काव्सय भाषा के अनुशीलन में उपयर्सुक्त कारणों से व्यसाकरणिक विश्लेषण गद्य भाषासे भिन्न होता है गद्यरचना में जहाँ सर्वनिर्दिष्ट व्यसाकरणिक नियसमों क`आधारपर ाािषा काअध्ययन होता है वही काव्यसभाषा में पूर्वनिदष्टि नियमों के साथ साथ व्याकरणकी नसयी सम्भावनाओं की खोज भी जारी रहती है । गोस्वामी तुलसीदास उसभाषाके कविहै जिस ाािषा का व्यारिण उनके पूर्वनिर्दिष्ट भी नहीं हुआ थ तुलसी के विष्सय में तो परिस्थिीत लगीाग वैसी ही है जेसी ऐन्द्रवायक ग्रह ब्रहमण के मंत्रों में वर्णित है । आदि भाषा में वेदा की रवना पर्यादा मात्राओ में हो जाने के पश्चात भाषा के व्याकरण का विधा हुआ।[1] तुलसी के युग तक संस्कृत प्राकूट और अपभ्रंगश के व्याकरणों की रचवना ही

हुयसी थी जिनका प्रीााव मात्र पड़ सकता है ऐसी स्थिति में तुलसी को भाषागत स्वतन्त्रता ीाी उपलब्ध थी । जहाँ तक अवधी का प्रश्न है तुलसी के समक्ष ठेठ अवधी की रनाएं सुजग थी जो सूफी कवियों द्वारा लिखी गयी थी ब्रजभाषा की दृष्टि से तुलसी को अधक सुविधाथी क्यों कि उनके युग तक ब्रजभाषा काव्यस भाषाद के रूप में प्रतिष्ठित होचुकी थी ।

जहाँ तक विवेच रचनाओं का प्रश्नहै इनमें गोस्वामी जी ब्रजभाषा का ही प्रयसोग किय है जिसका उस युग तक परिविस्तारहो गयता था। बोस्वामी जी अवधी के सिद्ध कवि थे अतः उन्होंने इन रचवनओं में ब्रजभाषा को ग्रहणकरते हुए अवधी का मणिकांवच योग कियाहै । कृष्ण गीतावली को छोड़कर तुलसी की समस्त रचनाओं में यह ीाषा संयोग विद्यमान है अतः तुलसी की रचनायसें किसी एक ीाषा का ेप्रृति से नहीं जड़ी है अतः तुलसी की ीाषाको समझने के लिय ेऔर उनकी व्याणिक कोटियों के निर्धारण के लिये एक अलग व्याकरण की आवश्यकता होती है जो तूलसी पर जादू होती हे उनकी भाषा के लिये कतिपय नियम अपनाते पड़ते हैं ।

व्याकरणिक अध्ययन :

किसी भाषाके व्याकरणिक अध्ययन के लिये जिन तत्वों पर विचारकियाजाताहे उनमें संज्ञा, सर्वनाम क्रियापद विशेषण अन्यसथातथा वाक्य विन्यास प्रमुखाहैं तुलसी में इन कोटियों क ेनिर्धारण ने ब्रज औरअवधी के व्याकरणिक नियसमों और साथ ही अन्यस भाषाओं क ीशब्दावली की कोटियों को केन्द्र में रखा कर ही विचार विमर्श किया गयाहै । इनका शब्द रचवना के क्रम मं भाग तो अध्याय में विवेचन किया जायेग । इस विवेचन में तूलसी की विवेच्य रचनाओं मे शब्द की विीान्न सिीतियों का विवेचन अभीष्ट है।

1- ब्रजीाषा व्याकरण किशोरीदास बाजपेयी पृष्ठ -6

शबद समूह काअध्ययन दो प्रकार से कर सकते हैं -

1) इतिहास के आधार पर

2) रवचना के आधार पर ऐतिहासिक द्रृष्टि से विवेच्य कृतियों की शब्दावली में अनतर्गत विभिन्न भाषाओं के शब्दोंका वर्गीकरण किया जाताहै जहाँ पर रचना के आधार पर वर्गीकरण का प्रश्नन हे इसे प्रमुख रूस्प से तीन वर्गों में विभजित कियाजाताहै।

1) मूल 72) यौगिक (3) सामाजिक ।

1) मूल शब्द :

वह प्रकृति तत्व जो अपना अध्यात्मक रूप परिवर्तित किये बिना स्वतन्त्र शब्द के व्रूपमें भाषा में प्रयुक्त होताहै और प्राथ की द्रृष्टिसे जिसका विभजन नही हेता उसे मूल शब्द कहते हैं यह भाषा की आविभाज्य इकाई हैप्रत्यय हित होने के कारण प्रकृति और मूल शब्द एक रूप होते हैं वल प्रगति ही अभिधार्थद्योतन में समर्थ होती ह विवेच्यस कृतियों में ऐसे मूल शब्द मिलते हैं जो अधातुज होकरभी प्रयसुक्त हुएहैं यथा-

छाँह,आग काम,साँप, नाम,दिन

यौगिक शब्द:

यसौगिक शब्द रचवना प्रकृति औरप्रतयय क योग से होती है धातुओं और मूल शब्दों में उतपादक प्रतययों क योग से नस अर्थो की द्योतक शब्द संरचना इसी से होती है प्रतयय दो प्रकारके होते हैं -

1) पूर्व प्रतयय जिसे उवर्स कहते है ।

2) पर प्रतयय परप्रत्यय भी दो प्रकार के होते है -कृत तथा तद्धित ।

प्रत्ययों का संयोग धातु रूप तथाअधातु स्रूप दोनों प्रकृतियों से होता हे गोस्वामी जी

ने अधातु रूपों में प्रत्ययों का प्रयोग अधिक किया है।

पूर्व प्रतयय उपसर्ग:
- - - - - - - - - - - -

गोस्वामी तुलसीदासकी रचनाओं में बहुत से शब्द उपसर्गो द्वारा निर्मित हुएहैं इनमें भी बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनमें उपसर्ग इसतरह समाविष्ट है कि उनको पृथक करना सम्भव नहीं है जेसे-

अनख[1] अखिल[2], अधम[3], निचोल[4] आदि ऐसे शब्द जिनमें पूर्व प्रत्ययऔर प्रकृति का अुतर स्पष्ट है - अनुराग[5]

तुलसी को भाषा में रचना की द्वृष्टि से उपसर्गो को तीन वर्गो में विभाजित किया गया है -

(अ) वे उपसर्ग जो संज्ञा विशेषण धातु से पूर्व जुड़कर उसी वर्ग की शब्दावली उत्पन्न करते हैं ।

(ब) वे उवसर्ग जो संज्ञा निदेश या धातु के साथ जुडकरमिल वर्गीयशब्दावली की रचना करते हैं ।

(स) वे उपसर्ग जो उपर्युक्त दोनों वर्गो की शब्दावली का निर्माण करते हैं ।

(अ) उपसर्गो के यसोग से उत्पन्न शब्दावली जिससे तदवर्गीय शब्द निर्मित होते है-

उपसर्ग	संज्ञा	व्युत्पन्न संज्ञा	अर्थ
अ	कुलीन	अकुलीन	हीनता
अ	नाथ	अनाथ	हीनता

- -

(1) वि0प0230 (2) विप0-49, (3) वि0प0 44, (4) वि0प0 62, (5) गीतावली

अ	गुन	अगुन	हीनता
अव	गुन	अवगुन	हीनता
अपि	चवल	अविचल	"
अन	बन	अनबन	"
अनु	राग	अनुराग	"
कु	चाल	कुम्पाल	अभाव
कु	रूप	कुरूप	"
स	गुन	सगुन	श्रेष्ठता
स	रूखा	सरूखा	हीनता
सु	बरन	सुबरन	श्रेष्ठता
सु	मातु	सुभातु	"
सु	गुरू	सगुरू	"
सु	पिता	सुपिता	"
सु	हित	सुहित	श्रेष्ठता

1- विनयपत्रिका 69
2- वही 76
3- वही 20
4- वही 220
5- वही- 95
65 वही 55
7- गीतावली 2/47
8- वही- 1/59
9- वि0प0 195
10- कृष्णगीतावली 29
11- वि0प0 50
12- गीतावली- 7/30.
13- वि0प0 पद 266
14--17- वि0प0 पद 77

बि	बुध	बिबुध
बि	योग	बियोग
डर	आसा	दुरासा
पुर	मुख	दुर्मुख
परिुजन	जन	परिजन
परि	हास	परिहास
प्र	भातुप्रीाात	
. प्रतुबोधु	प्रबोधु	
सद	गुन	सदगुन
सद	गुरू	सदगुरू
सत	पंथ	सत्वंथ
नु	ापिुअथ्यपन	
उप	वन	उपवन
नि	वास	निवास
निर	आमय	निरामय
अन	अहिगत	अनआहिगत

उपसर्ग	**संज्ञा**	**विशेषण**
अ	गुन	अगुन

1- वि0प0 17, (2) गीतावली 2/3, (3) वि0प0 198, (4) वि0प0 198, (5) गीतावली2/76, (6) वि0=241, (7) वि0प074, (8) वि0प0 23, (9) वि0प0923, (10)वि0प0 38, (11) वि0प0 239, (12) वि0प0 31, (13) गीतावली 1/39, (14) वि0प0 45, (15) वि0प0 57, (16) गीतावली 2/28, (17) वि0प0 262

अ	पारा	अपारा
अ	मान	अमान
अ	नाम	अनाम
अ	खण्ड	अखण्ड
अभि	मत	अभिमत
स	गुन	सगुन
स	विनय	सविनय
स	घन	सघन
स	भीत	सभत
स	पूत	सपूत
स	बलुसबल	
दूर	लभ	दुर्लभ
दुरी	दोष दुर्दोष	
दुर	जन	दुज्रन
नि	काम	निकाम
सिर	गुन	निर्गुन
निर	दयुनिर्दय	
निर	दलन	निर्दलन
निर	बंस	निर्वंस
निर	वहर	निर्वहर

निः	संबल	सिसंबल
नि	सोत	निसोत
निः	तार	स्तिीए

इस कप्रकार तुलसी की उपर्युक्त रचवनाओं में उपसर्गो के रूप में अ, आ, अन, अनु, अब, अब, आी, स, सु, नि, निर, क, कु, प्र, दुर, पि, सद, उप आदि है ।

प्रत्यय :

कृतप्रत्ययः

	अन	क्रियार्थक संज्ञा
	चल	चलन ॅचलभि॒ गी -1/25
	गम	गबनु ॅगी-1/676
	मिल	मिलन ॅगी-2/56
	सुमिर	सुमिरन॒ वि0प0 2/2
	लग	लगन ॅ गी-1/39॒
	खोले	खोलन ॅगी- 1/40
	भजू	भजन
आवन-	सोह	सोहहावन ॅगी-1/3॒
	सिखा	सिखावन ॅवि - 190॒
अनाः	मर	मरना ॅगी- 3/12
	सरहि	सराहना ॅवि0प0 2/7

	ताड	ताड़ना (वि0प0 179) -	
अनी,नी,आनी,अनि,नि :			
	कर	अनी	करनी (वि0 9/46
	डर	अनि	डरनि
	मिल	अनि	
	अनि	लरिन (गी- 1/27	
	जर	अनि	जरनि (वि0प0 247
	बिलोकि	अनि	विलोकनि (गीतावली
आ-ना:	देखा	आ	देखा
	मार	आ	मारा
	जा	ना	जाना
अक	पाल	अक	पालक
	पोष	अक	पोषक
	निद	अक	निन्दक
बार-बारा-बारी:			
	रखा	बार	रखावारी (कृ-60
एरा:	बास	एरा	बसेरा (वि0-2
अत-इत:	कह	अत	कहत
	सोह	अत	सोहत
	निरखु	अत	निराखत
	लस	अत	लसत
	चल	अत	चलत (गी- 5/13

हरिः	निबाह	हार	निवाहनहार ‍(वि-12
	आई-ई :		
	लोना	आई।	आई(गी- 2/26
	तरूण	ई	तरूणी
	निसिचर	ई	निसिचरी
इनी-नी- नि-इनिः			
	लोग	नि	लोगनि (गी-2/25
	निरह	नि	निरहिनि (गी-5/2

समासः

दो यसा दो से अधिक मूल शब्दों के योग से बने शब्द को समास कहते हैं। समासिक शब्दों में तुलसी ी मूल प्रवृत्ति दा`श्बद प्रकृतियों क`योग से निर्मित समास की आरे है संस्कृत शब्दावली में सामासिक शध्बद योजना विशेष प्रीावशाली है और वहाँ समायसाजिक पदावली श्रेष्ठ है। विनयपत्रिका सामासिक दृष्टि से तुलसी की सर्वश्रेष्ठ कृति है। तुलसी की सामासिक पडावजी क`प्रयोग कुछ उदाहरण संस्कृत शैली में द्रष्टवा है-

यातुधानोदृत कुछ कालान्गिहर [1] ध्वान्तरचर सहजयसंहावरो [2], सिद्ध सरस सिघा[3] कौशला कुशल कल्याणभावी [4] राम विरहार्क संतुप्त भरतादि [5] रामायण श्रवण संजात रोमाच[6] वचन चय चातुरी परशुघर गरबहर [8] भमिजा रमण पद कंज मररंद रस मधंकर[8] भक्ति वेराग्य विज्ञान राम दान दय[9]

---

1) वि0प0 27   वि0प0 27
3) वि0प0=21   4) वि0प0 38
5) वि0प0 46

तुलसी की रचनाओं में सम्मासिक पदावली को पारवर्गो में विभाजि किया जा सकता है।

1) समस्त पद संज्ञा

2) समस्त पद क्रिया

3) समस्त पद विशेषण

4) समस्त पद अव्यय

(1) समस्त पद संज्ञा :

अवनिप-कुमार 10

उर नयन बाहु 11

धनु वान 12

देह-गेह-13

(2) समस्त पद क्रिया :

जानि-मानि 14

कह सुन 15

उठ बैठ 16

देत-लेत 17

10- गीतावली 1/39
11- वही/ 1/40
12- वही 1/41
13- वही 1/49
14- गीतावली 2/14
15- कृ0 गीता पद 22
16- वही पद 12
17- वि0प0 पद 118

ɸ3ɸ समस्त पद विशेषण :

माकत करकबर ।8

एक एक ।9

ɸ4ɸ समस्त पद अव्यय :

बारहि बारि 20

जहँ-तहँ 2।

गोस्वामी जी को विवच्य कृतियसों में सामसिक पों की दृष्टि से तत्सम शब्दावली के समासों क बहंलता है । तत्सम शब्दावली में सामाजिक पद अधिक मिलते हैं । इसके बाबजूद तद्भरा शब्दों के समास भी मिलते हैं । इसके साथ ही कुछ नए समीकरण भी तूलसी की विवेच्य रचनाओं में मिलते हैं ,जेसे

ɸकɸ तत्सम +तत्सम सामासिक पद

ɸखɸ तत्सम - अर्द्धतत्सम सामासिक पद

ɸगɸ अर्द्धतत्सम- तद्भव सामासिक पद

ɸघɸ समानार्थी समास

ɸडɸ व्यतिटेवी समास

ɸकɸ तत्सम + तत्सम :

सतर्ग -अपसर्ग -पति ɸवि0प -50ɸ विबुधारि संघाɸवि0प0 50ɸ ञन-गुणधामɸवि0प0 52ɸ नलिन नयन ɸगी- 2/15

ɸखɸ तत्सम -अर्द्धतत्सम :

धर्म-मरजादɸवि0प0 52ɸ, प्रेम मगन ɸवि0 2/16ɸ, ग्राम नारि ɸगी2/16ɸ,

चवरन-सरोरूह (गी- 2/13, लोचवन भूवर (गता 1/18), उदय उछाह (गी-14), प्रमोद-अघानी (गी-1/4), जल थल गगन (गी- 1/4)

(ग) अद्वतत्सम -तद्भव :

निसान कुलाहज 7गी-14), प्रताक घुज (गबी-15

(घ) व्यतिरेकी सामासिक पद:

सांसति प्रसाद (गी- 6/1, सुर साधु मातु पिता (वि0प0 152)

(ड) अर्द्वतत्सम- विदेशी :

सुमंगल -खानी (गी-1/4)

विभिन्न समास :

(क) तत्पुरुष- सुर मौन राम ीगति कैकयी कोखि प्रीु चरन (गी0-2/76) एमसखा(गी-68

(2) द्वन्द्व-- दिन राति 7गी0 2/83), असन बसन सुख संतोष (गी- 2/77)

(3) द्विगु-- चारिभुज च्यनधन त्रिपुर (वि0प-3)

(4) कर्मधारण-- नलिन -नयन (गी-39),पीतपर (वि0प0-61), मनोहर (वि0-62)

(5) बहुब्रीहि-- कंठ (वि0प0 43) त्रिपुरारि (वि0प0 18),

(6) अकागीयान-- जथाजोग (वि0 169)

भाषागत वर्गीकरण :

अंक (गी 17/117) अंकित अग अंगुलि त्राण (वि-7/17) अंगुष्ठ (गी-7/17) अंतक अलंक। अत्श्र यत्श्र टप्न (वि0-22) अंध अनुकली अनुपाल अक्षय अखिल

तद्भव:

अंकोर (गी- 7/3), अंगकरयो (वि0- 232),अंगना (गी-118), अंगनैश (गी-1/9), अंगहीन (वि0-19), अगुरिया (गी-1/29), अगुली (7/17), अंचई (वि0 158), अनज केस (वि0-142), ओरी (वि0-158), अनुलोन7गी-1/5/9),अनगनो (वि-5/5-), अणगु(वि-256),

ऊसर (वि0-180),ऋगु(वि0-115), ऋच्च(गी- 6/16), ऋषि खालेल (गी-114), गहगह (विऋ561), गाँव (वि-8),गाहक गालकमल (वि-130), मोमर (गी51/37) घीय (वि0-162), घुटेवनि(गी-129), घूटी (गी-21/2456

चँदिदिन (वि)17) छठि (वि)203), ध्वनी (गी1/56), जंता (वि0-26), जंग (गी-1/4), झरा (गी-7/4), झनकार (गी-1/1), सिहोरे (वि-8), हनुथल (7/17), हठजोग (वि-209), होरी (5/16), ।

देशराज :

अर्मरा (वि0 189), कनसुई (गी- 1/68), कनिगर(वि0-33), खोहर (वि0- 100), खोंची (वि0-33), गहडोरिहौ (वि0- 258), गुड 7गी-7/9), घवरि घैयसा (कृ0- 19), छंगन (गी-1/20), झगूली (गी-1/28), झगुयिसा (1/29), झडूता (गी-1/30), झरोखे (गी- 5/12), लेरूआ 7गी-1/17) ।

ठगर (गी-2/82),ठगौरी (कृ0-8), ठट्ठु(गी-1/17), टोटका (वि0-272), ठग(गी-2/82), ठगौरी (कृ0-8), ठटउगरि(कृ0-86), उगरो (वि0-173), तनरूह (गी-1/1), तारिए (वि-186), खलेल (गी-1/4), ओरहने (कृ0-5), खरखोट (वि-191),

विदेशी शब्द :

खलल (वि-276), खाको (वि-152), गरम (वि-249), गरीबनेवाज (वि-262), जरकसी (गी- 1/42), तरकस (गी- 1/40), दिमानी (वि-=122), पदा (वि-32), दगा (कृ0-24), मिलिक (कृ0-32), बैरख (कृ0-32), नकीब (कृ0-32), दोहाई 7कृ-32), मजा (कृ0-35), सहिल(कृ0-35), चवलाकी (कृ0-43), खाजी (कृ0-61), गाजी (कृ- 61), गरीब (कृ0-61) ।

इससे यह स्पष्ट हो जाताह कि गोस्वामी जी ने अपने युग में प्रचवलित नाना भाषा रूपों का प्रयोग कियाहै औ उनकी शबदावली लेकर उनकी प्रयोग धर्मिता में अपने व्यक्तित्वका`महत्व दियश है उनके शबद प्रयोग की स्थितियों के अवलोकन से यह स्पष्ट हा`जाताहै कि इन शब्दों के प्रयोग में उन्होने अपनी मौलिकता का परिचय देते हुए तत्सम या परिनिष्ठित शब्दों क`साथ तद्भव यसा अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग इस ढंग से किया है कि वे अलग प्रतीत न होकर उसी भाषा क प्रतीत होने लगते हैं ।

: : : : :

: : :

अनेकार्थी :

अंक	चिन्ह	भोहैं बंक मयंक अंक रूचि (गी- 7/17
	गोद	
अंग	शरीर का अंक	बाल विभूषन बसन मनोहरअंगनि बिरचिव बनैहौ
	भगया हिस	दीन सब अंगहीन छीन (वि-41)
अंगना	आँगन	छगन-मगन अंगना खेलिहौ मिलि (गी-1/8)
	स्त्री	
अंत	समाप्ति	जौ पै अलि अंत इहै करिबे को (कृ-39)
	सीमा	
कर	टैक्स	जनु देत दूतरन्तप कर विभाग (गी-2/49)
	हाथ	तथ तू दाम कुदाम ज्यो कर कर न बिकतो (वि-1,51)
स्वर	तेज	तीमिर घनघो रवर किरण माली
गधा	खार ज्यसो फिरत विषय अनुरागे ।	
खानि	खजाना	खानि सकल कल्यान की (वि-30)
	उत्पत्ति	खानि चारी संतति अवगाही (वि-136)
जीवन	जिन्दगी	जीवन अवधा अति नेरे (वि-273)
	पानी	जीवन को दानी धन कहाताहि चाहिए (वि-118
जनक	पिता	बन्धु गुरू जनक जनकी विधाता (वि-11)
	राजाजनक	जनक विलोकि द्वार द्वार रघुवर को
पक्षपच्छ	पंखा	जयति धर्मांसु संपति नवपच्छ लोचन (वि-28)
	साथदेना	विप्रहित यज्ञ रच्छन दच्छ पच्छ कर्ता (वि-50)

पतंग	सूर्य	पवन पंगु पावक पतंग सलि दूरगिए
	चिड़िया	पाहन पसू पतुग मोहबस
बर	श्रेष्ठ	बार बार बर बारजि लोचन
	दूल्हा	जानकी बर सुन्दरमाई
	जलना	थाके उरबरति अधिक अंग अंग दव
मंद	मूर्ख	मंदजन ौलि मनि|वि-211|
	धीरे	सीतल सुगन्ध सुमंद
रंग	अंगने का	भूषन प्रसूनबहु द्विविधि रंग
	आनन्द	अपने अपने रंग लाई है
रज	धूल	मिलित जलपात्र अजयुक्त हरिचरण रहज
	रजोगूण	
रसना	जिह्वा	रुचिर रसना तू राम राम
	वरधनी	रसना रचिवत रतन चामीकर |गी-7/17|
राढ़	कायर	राएड राउत होत पिरि कै जूझैर |वि-176|
	झगड़ालू	ना कहे रढ रोर
लंक	क.मरकटि	लंक भृगपति ध्वनि कुँवर कुसल घनी |गी-2/7
	लंका|एकदेश	परी भोर ही रोर लंक गढो
साल	कष्ट	सुरभि सुखद असुरानि उर सालत्ति
	शाला,घर	हिडोला साल लोकि सब |गी-7/18|
सारंग	धनुष	सुमिरत श्री सारंग पानि |गी-1/45|
	मृग	

सार	रखवाली	सनत भरत सौगुनी सार करत है (गी-2/87)
	तत्व	पर उपकार सार श्रुति को (वि-202)
सर	तालाब	सर खानहिं जनम सिरान्यो (वि-88)
	बाण	
हर	शंकर	मारकरिमतत गजराज त्रयनयन हर नौमि(वि-49)
	हरणकरने	त्रैलोक सोक हर प्रयथ राज (वि-13)
हरि	विष्णु,ईश्वर	हरि ज्ञान धन सच्चिदानन्द मूली (वि-53)
	सिंह	कशिमत्त हरि दूषनारी (वि-48)
	बन्दर	आइ गए हरि जूथ देखिउर (गी-4/2)
	कामदेव	जगु हर डरहरि विविध रूप धरि (वि-62)
	इन्द्र	हरि परे उघरि (कृ- 36)
	धनुष	आकरण्यों सिय मन समेत हरि (गी-1/88)

पर्यायशब्द:

विवेच्य रचनााअें में तुलसी ने पर्यायशब्दों का प्रयोग भाषा विस्तार के लिये कियाहै । पर्याय उन्हें कहते हैं जो समान अर्थदेते हं इनमें बहुत कम अर्थ भेद होताहै । प्रायस3 लोक पसर्यायस शब्दों को एकार्थी मानलेते हैं किनतु वास्तवमें प्रत्ये कशब्द की अपनी रचना प्रक्रियसाऔरअर्थबोध होताहै । इसके बाबजूदएवं अर्थ की अपेक्षा एक भावकी प्रतीति कराने कक कारणये शब्द पर्याय कहे जाते हैं। पर्याय का अर्थ अनुक्रम होताहै किजसका सम्बन्धऐसे शब्दो से है जो एक अर्थ वर्ग में रखे जा सकते हैं प्रयसोग साम्यस में अर्थ सम्यस बनारहता है पर प्रयोग भेद से वे अजग अर्थ भी दे सकते हैं। काव्यस में

पर्याय शब्द काविशेष महत्व होता है । इसका कारण यह है कि यदि पर्याय शब्दों का प्रयोग न हो तो शब्दा वृत्ति के कारण नीरसता आ जाती हैऔर आत्मीकरणा व्यथित हाती है । इसके बाबजूद कवि जिस शब्दका जहाँ प्रयोग करताहै उसका विकल्प पसर्याय नहीं हा`सकते । तुलसी की रचवनाओं म` पर्याय शब्दों व्यापक प्रयोग हुआहै। शब्द परिवर्तन के द्वारा गोस्वामी जी ने अनेक पयर्सायों काविकासभी कियाहै यथा-युवति जुवति । यहाँ मात्र ध्वनि परिवर्तन से दो अलग अीग शब्द बन गए हैं किनतु ये पर्याय नहीं बन सकते पर अमिय औरअमृत एक शब्द होने क`कारण पर्याय बनगऐ हैं । पर्याय जातिवाचवक शब्दों के तोहोरे ही है अत्यन्त प्रसिद्ध व्यक्तियों या वस्तुओं के भी अनेक पर्याय हो जाते हैं । प्रस्तुत तालिका में तुलसीदास की विवेच्य रचनाओं में पर्याय शब्दों का विवेचन किया गया है-

व्यक्तिवाचक पर्याय शब्द:

अगस्त- कुभंज ‖वि-44‖ घटज ‖वि-56‖ घटजोनी ‖गी- 7/17‖

आँख- कुीजात ‖वि- 53‖ लोवचन नयन 7गी-1/77‖ जैन7गी-1/82‖, लोचन ‖गी-1/83‖

अग्नि- पावक धूकेत ‖वि-52‖, हुताशन‖वि-23‖ अनल ‖वि-23‖

इन्द्र- हरि ‖कृ0-36‖ सुरपति ‖गी-16‖ सुरेस ‖गी-18‖ पाकारि ‖वि-43‖

कल्पवृक्ष- कलपतरूस ‖वि-4‖, कलर्पेल ‖गी-1/92‖, कामतरू‖प्गी-2/23

कमल- कंज ‖गी-1/25‖, अम्भोज ‖गी-1/23‖, जलज गी-1/23‖, पंकज ‖गी-1/26‖, सरोज 7गी-1/27‖, वारिज ‖गी-2/58‖, नलिन‖गी- 1/23 ‖

कामदेव- मयन‖वि-11‖ काम ‖वि-12‖ पचंवान ‖वि‖14‖, मार ‖वि‖15‖ मदन ‖वि-1/2‖, मनोज ‖गी-1/27‖,रातिपति ‖गी-1/2‖ मनसिज ‖गी-1/30

कृष्ण- गोविन्द (कृ-1), जदुराई (कृ-1), स्याम (कृ-3), गोपाल -कृ-4), मोहन(कृ-6), कान्ह(कृ-11),नन्द कुमाररू्स (कृ-14), नंदलाल (कृ-16),मुरारी (कृ523) ।

गणेश- गणपति (वि-1), संकर सुवन (वि-1), गजबदन(वि01), विनायसक (वि-1), हरम्ब (वि-15) ।

गंगा- त्रिपथगा (वि17), सुरसरी(वि 10),जहुकन्या(वि-18),सुरसरित(वि-19)

चन्द्रमा- वचन्द्र (वि-10), इन्द्र (वि-1), विधु (25)

ब्रह्मा- अज (वि-18) विधि (पि-20) विरंचि (गी-1/2) विधाता (गी-1/13)

पार्वती- भवानी (वि-5) गिरिजा (वि-5), शूल धारिणी (वि-15), भीमा (वि-15), जगदंबिका (वि-15), कालिका (वि-16)

राम- रघुपति-वि-6), रघुराई (1/67), रघुवर (गी-1/59), रघुनायक (गी-2/3)

रावण- दीकंठ (वि-29) दससीस (वि-50), दरमौलि (वि-58)

लक्ष्मी- श्री(वि-5),रमा '(वि-2) इन्दिरा (गी- 1/25)

विष्णु- हरि(वि-9), रमा (गी-1/2), सांरगपाणि(मगी-1/47), सेष सयन(गी-1/59)

विश्वामित्र- कौशिक (गी-1/47), गाधि कसुयन (गी- 1/54), विस्वामित्र (गी 1/63)

शंकर- संभु(वि-3), कामरिपु (वि-3), संकर(वि-4), पुरारि (वि=5),हर(वि-8)

सूर्य- दिनमनि 7गी-1/51), दिवाकर (वि-2), करमाल5वि-2),अर्क (वि-10),

सरस्वती- सारदा (वि-5), गिरा(वि-52),बानी (वि-26)

सीता- जानकी (गी-1/98), सिय (गी- 1/97), बिदेहकुमारी (गी-1/109), भूमिजा(वि-29)

सोना - जातरूप (गी-1/1), कनक (गी- 1/3), हाटक (गी-1/25), हेम(गी-1/10
कंचन (गी- 1/108), कलधौत (वि-44)

हाथी- गज (गी-1/1), करि(गी-1/56), जागेन्द्र (वि-46)

नारी- कामिनी (वि-18),सुमुखि(गी-1/2), वनिता (गी5।4) सुआसिनि(गी-14),
ाामिनि (गी-14),तिय (ग-15),घरनि (गी- 1/28)

पर्वत- द्रोणि(वि-18), भूधर(वि-18), गिरि(वि-23), सैल(वि-24)

पिता- तात(गी-22), जनक(गी52/36), पितु (गी-1/22

पुत्र- पूत- 6गी-1/22), सुवन(वि-1), बेटा (गी1/67), सुत 1/100),ललन(24)

पुत्री- सुता (गी- 1/101), कन्यसा (ग- 1/103, कुमारि (गी- 2/5), बृच्च्छ
गी-2/28), बिल(गी-1/54),

पृथ्वी- भूमि(वि-24) घरनि(गी- 1/26), महि (गी- 1/55), ाू(वि-44)

बादल- मेघ(वि-21), वनद (वि-56), जलद (वि-61), अबुद (गी-1/7),घन
(गी-1/106)

बालक- सिसु (गी-1/6), लेरूआ (गी-1/20), लरिका (गी-1/30),ढोटा (गी-1/56)

ब्राह्मण- महिदेव(गी-1/2), विपु (गी-1/2), ाूमिसुर(गी-1/2), ाूसुर(गी-1/3),

माता- जननी (गी-1/5),अम्ब (वि) मैया (गी- 1/8), मातु (गी- 1/10)
महतारी (गी- 1/99) ।

समूहार्थक शब्द तालिका -

मीर-(जन समूह)- नभ प्रसून झरि पुरी कोलाहल मइ मन भावति मीर [1]

गावत चली मीर मई बीथिन्ह [2]

समाज-	जनु रतिपति ऋतुपति कोसलपुर बिरत सहित समाज ।[3]
	सुनि सानन्द उठे दस स्यनन्दन सकल समाज समेत ।
जूथ-	सजि आरती विचित्र गिर कर कजूथ जूथ बरनारि ।
निकट-	बरषहि बिबुध निकट कुसुभावलि नभ दुदुभी बजाई
गन-(गण)	तुलसी सहित जिन गुन मन गाए ।
वृन्द	सखा प्रिय नृप द्वार ठाढ़े विपुल बालक वृन्द।
समुदाय-	बनवासी बळु जती जोगि जन साधु सिद्ध समुदाई ।
समूह-	जातकरम करि कनक ,बसन, मनि भूषन सुरभि समूह दए ।
पुंज-	चलत पद प्रतिबिम्ब राजत अजिर सुखमा पुंज ।
चय-	मुनि चय चकोर चन्दिनि।
सन्दोह5	जयति निर्भरानन्द संदोह कपिकेसरी ।
दल-	तौ यह रिसतोहि सहित दसानन ! जातुधान दल दलतो ।
रासि-	त्रिपथगासि पुन्यरासि पापछालिका।

1-वि- 17

2- वि-29

3- गी- 5/13

4- वि- 17

चतुर्थ अध्याय

शब्द रचना

संज्ञा शब्द रचना:

संज्ञा रूपों के सम्बन्ध में हम तुलसी की भाषा की प्रमुख प्रवृत्तियों की छानबीन क्रमशः बचन,लिंग, कारक रचना, रूप निर्माण आदि के आधार पर करेंगें । सर्वमान्य रूप से संज्ञा के तीन[1] भेद प्रचलित हैं व्यक्तिवाचवक,जातिवाचक तथा भाववाचक।

व्यक्तिवाचक संज्ञा :

तुलसी द्वारा प्रयुक्त व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के सम्बन्धमें निम्नलिखित विशेषताए महत्वपूर्ण है -

(अ) व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का बहुवचन में प्रयोग -

साधारणतः व्यक्तिवाचवक संज्ञा किसी व्यक्तिविशेष की बोधक होती है और सर्वत्र एक वचन में ही प्रयुक्त होती है । बहुवचन में इसका व्यवहार असंस्कृत एवं अव्यवहारिक कहा जायेगा, परन्तु तुलसी अपने वाग्चातुर्य केबल पर एक के बाद एक ऐसे प्रयोग इतना निस्संकोचय होकर करते चलते हैं मानों उनका निर्दिष्ट व्याकरणिक नियमों से कोई विरोध ही न हो । इस शैली की नवीनता और निरंकुशता में भी पूर्वकालीन परम्परा

1- कुछ हिन्दी वैयाकरणों ने संज्ञा के पाँच भेद तक माने हैं- व्यक्ति जाति गुण भाव और सर्वनाम । आदम साहब ने एक और भेद क्रियावाचक माना है जिसे भाषाभास्कर में क्रियार्थक संज्ञा कहा गया है । कहीं-कहीं समुदायवाचक और द्रव्यवाचक भेद भी माने गये हैं, किन्तु इन सभी वर्गीकरणों में अंग्रेजी व्याकरण का प्रायः अन्धानुकरण किया गया प्रतीत होता है, और वस्तुतः वे हिन्दी व्याकरण की स्वाभाविक व्यवस्था से मेल नहींखाते(देखिए-कामता प्रसाद गुरू- हिन्दी व्याकरण पृ0- 82-83)

तथा स्वाभाविकता का जो आभास मिलता है उसी का यह परिणाम है कि साधारण पाठक की दृष्टि में ऐसे प्रयोग खटकते नहीं वरन् कुतूहल जागृत करते हैं । ये बहुवचन प्रयोग दो प्रकार के स्थलों पर किये गये है -

1) जहाँ एक ही नाम वाले कई व्यक्तियों को बोध कराने की आवश्यकता हुई है ।

2) जहाँ किसी व्यक्ति से सम्बन्धित किसी लोकोत्तर एवं असाधारण परिस्थिति सूचित करने का प्रसंग उपस्थित हुआ है ।

प्रथम बार की व्यक्तिवाचक संज्ञा को कुछ लोगों ने जातिवाचक संज्ञा के रूप में परिणत हुई माना है।[2]

(आ) एक ही व्यक्ति के लिये पर्यायवाची शब्दों का व्यवहार :

व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के प्रयोग में तुलसी की भाषा को द्वितीय महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे एक ही व्यक्ति के लिए कई पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करते चलते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ पर उनकी दृष्टि नाम-विशेष के प्राभाव्य पर न रहकर अर्थ प्राधान्य पर रहती है । जबकि ठीक इसके विपरीत प्रायः अन्य भाषाओं के साहित्य में तथा बोलचाल में यहाँ तक कि आधुनिक खड़ी बोली में भी, व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का आधार 'नाम' होता है न कि वह 'अर्थ' जो उससे अभिव्यक्त होता आजकल यदि किसी का वास्तविक नाम विश्वनाथ हो और उसे हम जगपति, जगदीश,

---

2- 'जब व्यक्तिवाचक संज्ञा का प्रयोग एक ही नाम के अनेक व्यक्तियों का बोध कराने के लिये अथवा किसी व्यक्ति का असाधारण धर्म सूचित करने के लिये किया जाता है तब व्यक्तिवाचक संज्ञा जातिवाचक हो जाती है, जेसे ' कहु रावण रावण जग केते '। (देखिए-पं कामता प्रसाद गुरू-हिन्दी व्याकरण पृ0- 80)

जगन्नाथ, विश्वपति, अथवा संसारनाथ इत्यादि अन्य पर्यायवाची शब्दों से पुकारे तो बड़ी भारी अड़चन उपस्थिति हो जायेगी परन्तु तुलसी एक ही व्यक्ति के लिये अनेक पर्यायवाची शब्दों का व्यवहार बेखटके करते रहते हैं, जेसे-मेघनाथ के लिये 'घननाद और वादिनाद' अथवा 'दशरथ' के लिये दसस्यंदन ऐसे कुछ प्रयोगों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

सुनि सानंद उठे दसस्यंदन सफल समान समेत [1]

अभिमान सिन्धु कुंभज उदा· ।[2]

जयति लवणाम्बुनिधि कुंभसीव, महादनुज-दुर्जन दवन दुरितहारी ।[3]

सकुचि समभयो इस आयसु कलस भव लिय जोई।[4]

जयति जय सत्रुकरि केसरी सत्रुहन सत्रु तम तुहिन कर किरन केतू ।[5]

जयति दासरथि समर समरथ सुमित्रासुजन सत्रुसदन रामभरत बंधो ।[6]

ीारत राम रिपुदवन लषन के चरित सरित अन्हवैया ।[7]

व्यक्तिवाचक संज्ञाओं क ेऐसे प्रयोग हम भारतीय पाठकों के लिये अधिक विस्मयोत्पादक नहीं प्रतीत होते क्यों कि तुलसी केपहले प्राचीन ीारतीय संस्कृत साहितय तथा उससे न्यूनाधिकांश में प्रभावित मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में भी ऐसे प्रयोगों की परम्परा विद्यमान थी । परन्तु प्राचीन भारतीय ग्रन्थों की शब्द प्रयोग शैल की सूक्ष्मताओं से अपरिचित पाश्चात्य आलोचकों के निकट में प्रयोग एक रहस्य और कुतूहल के विषय

1- गीतावली 1,2
2- विनयपत्रिका -64
3- विनयपत्रिका -40
4- गीतावली- 5,5
5- विनयपत्रिका -40
6- विनयपत्रिका -38
7- गीतावली- 1,9

बन गये हैं । इस विषय में एडविन ग्रीब्ज का साक्ष्य पर्याप्त है।[8] इस दृष्टि से उनका विवेचन और भी महत्वपूर्ण हो जाता है ।

व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के सम्बन्ध में तुलसी जी की प्रयोग पद्धति की उपर्युक्त दो विशेषताओं के अतिरिक्त एक और ध्यान देने योग्य बात रह जाती है। वह यह कि तुलसी की शब्दावली में कतिपय विशेषण शब्द, जो हैं तो मूलतः किन्हीं विशेष व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के गुण अथवा धर्म के बोधक, परन्तु अनेक स्थलों पर वे अकेले ही बिना विशेष्य की उपस्थिति की आवश्यकता को महत्व देते हुए इस प्रकार प्रयुक्त किये गये हैं जिनसे साधारण द्रृष्टि में यह जान पड़ता है कि वे विशेषण भी वस्तु अथवा व्यक्ति विशेष के नाम हैं । हनमें विशेष सूचक शब्दों के अर्थ भिन्न भिन्न हैं किन्तु उनसे संकेतित व्यक्तिवाचक संज्ञा एक ही है । पूर्वोक्त उदाहरणों में जहाँ-जहाँ विशेषण सूचक शब्द आये हैं, वे सर्वत्र एक ही अर्थ रखते हैं । इसी द्रृष्टि से ये दूसरे प्रकार के प्रयोग अपना भिन्न महत्व रखते हैं । कुछ उदाहरणों से बात स्पष्ट हो जायेगी -

एक 'सित' के लिये संकर,रूद्र,महेस, सम्भु, हर, बामदेव, कामरिपु, त्रिपुरारि तथा चन्द्रमाललाम जैसे शब्दों का व्यवहार । यथा-

---

पाहि भैरव रूप राम रूपी रूद्र वन्यु गुरू जनक जननी विधाता ।[1]

नष्टमति दुष्ट अति कष्ट रत ,खेद गत दास तुलसी सम्भुसरन आया।[2]

देहु कामरिपु रामचवरन रति ।[3]

एक ही व्यक्ति रावण का बोध कराने के लिये दसमुख, दससीस, दसकंठ, दसमौलि, दसकंध तथा भुजबीह जैसे शब्दों का व्यवहार । यथा-

तू दसकंठ भले कुल जायो ।[4]

मोह दसमौलि तद्भ्रान्त अहंकार पाकारिजित काम विश्रामहारी ।[5]

जाति वाचक संज्ञा :

तुलसी की भाषा में उपलब्ध जातिवाचक संज्ञा के रूपों पर मूलतः दो दृष्टियों से विचवार करना आवश्यक है लिंग और वचन । इस क्षेत्र में तुलसी द्वारा अनुसृत नियमों के विश्लेषण क पूर्व इस बात की ओर संकेत कर देनाआवश्यक है कि उनकी रचनाओं की भाषा में कुछ संज्ञाओं का व्यवहार कहीं-कहीं परम्परागत लिंग में न होकर विपरीत लिंग में किया गया है । लिंग परिवर्तन से सम्बन्ध रखाने वाले जो नियम तुलसी की भाषा में व्यापक रूप से व्यहत हुए हैं उनका संक्षिप्त निर्देश किया जा रहा है-

(क) अकारान्त पुल्लिंग संज्ञाओं के अन्टम व्यंजन के साथ- 'आ' का योग जैसे निम्नलिखित पंक्तियों में सुत से सुता, अनुज से अनुजा ताा तनुज से तनुजा का निर्माण-

---

1- विनय पत्रिका -11

2- विनयपत्रिका -10

3- विनयपत्रिका - 7

4- गीतावली- 6,2

5- विनयपत्रिका- 58

पर पीत मानहु तड़ित रुचि सुचिव नौमि जनक सुता वरम्।[1]

(ख) अकारान्त पुल्लिंग संज्ञाओं के अन्त्य व्यंजन के साथ 'इ' का योग- उदाहरणार्थ- निम्नांकित पंक्तियों में ' कुंवरि ' तथा 'देवि ' शब्दों का व्यवहार जो क्रमशः कुंवर और देव शब्दो से बने हैं -

कुंवंर कुवंरि सब मुगल मूरति नृप दोउ धरम धुरंधर धोरी ।[2]

जय जय जग जननि देवि सुरनर मुनि असुर सेति,

भक्ति मुक्तिदामिनि भय हहनि कालिका ।[3]

(ग) अकारान्त पुल्लिग संज्ञाओं के अन्त्य व्यंजन के साथ 'आनि' तथा 'आनी' का योग जैसे- 'ब्रह्मा' से 'ब्रह्मानी' का प्रयोग -

आसिष दे दै सराहहिं सादर उमा रमा ब्रह्मानी ।[4]

(घ) अकारान्त पुल्लिंग संज्ञाओं के अन्त्य व्यंजन को ईकारान्त कर देना-जैसे निम्नलिखित उदाहरण में कुमार से कुमारी -

कहौ धौं तात क्यों जीति सकल नृप बरी है विदेह कुमारी ।[5]

(च) अकारान्त पुल्लिग संज्ञाओं के अंतिम व्यंजन के साथ 'इनि' का प्रयोग जैसे-निम्नांकित पंक्तियों में प्रयुक्त कुरंगिनि चंदिनि शब्द कुरंग और चंद शब्द से बने हैं -

चितवत चकित कुरंग कुरंगिनि सब भये मगन मदन के भारे ।[6]

1- विनयपत्रिका - 45
2- गीतावली- 1,102
3- विनयपत्रिका- 17
4- गीतावली- 1,4,10
5- गीतावली 1,107
6- गीतावली, 3,2

जय जय भगीरथ नंदिनि मुनि चय चकोर चंदिनि

नर नाग विबुध बंदिनि जय जह्नुबालिका ।[1]

(छ) अकारान्त पुल्लिंग संज्ञाओं के अन्त्य व्यंजन के साथ 'नी' जोड़ कर भी स्त्रीलिंग शब्द बनाये गये हैं । जैसे चकोर से चकोरनी -

तुलसी के लोचन चकोरनी के चन्द्र से

आहे मन मोर चित चातक के घन हैं ।[2]

(ज) इसी प्रकार घर से बना 'घरिन' शब्द जो 'नि' के योग से बना है ,स्त्रीलिंग संज्ञा के अन्तर्गत ही रखा जायेगा । यद्यपि 'घर' के साथ इन शब्दों का सम्बन्ध उस प्राकर का नहीं है जैसा चकोर और चकोरनी अथवा कुरंग और कुरगनी शब्दों का है,क्यों 'घर' प्रयोग में पुल्लिंग होते हुए भी प्रृति में नपुंसक लिंग है । 'घरनि' का सीधा अभिप्राय 'घरवाली' से हैं यथा-

पुन्य फल अनुभवति सुतहिं विलोकि दसरथ घरनि ।[3]

निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयुक्त 'भवनी' जो 'भवन' शब्द से बनाहै बहुत कुछ इस प्रकार है -

देखि बड़ी आचवरज पुलकि तनु कहति मुदित मुनि भवनी ।[4]

(झ) कुछ अकारान्त पुल्लिंग सं ज्ञओं के स्त्रीलिंग रूप मूल शब्दों के अंतिम दो व्यंजनों के

1- विनय पत्रिका ।7
2- गीतावली 2,26
3- गीतावली ।,24
4- गीतावली ।,56

अन्त्म स्वरों में (यदि ये शब्द दो से अधिक व्यंजनों के हों) कुछ परिवर्तन करके भी निर्मित हुए हैं जैसे बालक से बालिका, परिचायक से परिचारिका (इनमें अंतिम दो व्यजनों में से प्रथम को अकारान्त से इकारान्त कर दिया गया है और दूसरे को अकारान्त से आकारान्त) यथा-

जय महेस भामिनी अनेक रूपनामिनी,

समस्त लोकस्वामिनी हिम सैल बालिका ।[1]

(ञ) ईकारान्त पुल्लिक संज्ञाओं के अनत्य 'ई' को ह्रस्व करके तथा उसमें 'नि' का योग करके स्त्रीलिंग रूप बनाये गये हैं जैसे- निम्नलिखित पंक्ति में 'स्वमी' से स्वामिनि-

तुलसी स्वामी स्वामिनि जोहै मोही है भामिनि

सोभा सुधा पिए करि अँखिया दोनी [2]

वचन :

जिस प्रकार लिंगों की संख्या संस्कृत से क्रमशः हिन्दी में आते-आते तीन से दो हो गयी है उसी प्रकार वचनों की संख्या भी तीन से दो हो गयी है। संस्कृत के तीन वचनों-एक वचन , द्वि वचन और बहुवचन में से द्विवचन का लोप प्राकृत भाषाओं के काष में ही हो चुका था। और इस प्रकार हिन्दी व्याकरण में भी दो ही वचन अर्थात् एक वचन और बहुवचन रह गये । तुलसी की भाषा में भी इन्हीं दो वचनों का व्यवहार मिलता है । इसके सम्बन्धमें केवल दो बातों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है- प्रथम तो एक वचन संज्ञा रूपों से बहुवचन संज्ञा रूपों के निर्माण से सम्बन्धित प्रमुख नियमों का

1- विनयपत्रिका - 16

2- गीतावली - 2,22

अनुसंधान और दूसरे कुछ विशेष संज्ञा शब्दों को केवल एकवचन अथवा केवल बहुवचन में प्रयोग करने की प्रवृत्ति की छानबीन । इनमें किसी न किसी अंश तक संस्कृत की परवर्ती किन्तु हिन्दी की पूर्ववर्ती पालि, प्राकृत और अपभ्रंश आदि भाषाओं के व्याकरण का भी स्वाभाविक प्रभाव दृष्टिगत होताहै किन्तु नियमों की सहज रूपता एवं वैज्ञानिकता की दृष्टि से तुलसी के प्रयोगों में कुछ विशेष प्रवाह मिलता है । आगामी विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जायेगी ।

एक वचन संज्ञाओं से बहुवचन रूप बनाने के कुछ प्रमुख व्यापक नियम निम्नलिखित हैं -

(क) बिना किसी प्रत्यय के योग के एकवचन मूलरूपों का ही बहुवचन रूपां की भाँति व्यवहार, जैसे निम्नलिखित पंक्तियों में विटप,बेलि, कुंज इत्यादि ।

प्रिया प्रिय बन्धु को दिखावत बिटप बेलि
मंजु कुंज सिलातल दल फूल फर हैं ।[1]

इनमें शब्दों के बहुवचन होने का बोध क्रियाओं के वचन रूपों से होता है ।

(ख) इकारान्त तथा ईकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं की अंतिम ध्वनि के साथ अनुसार का योग करके बहुवचन रूप का निर्माण ।

(ग) संज्ञा शब्दों के एकवचन रूपों के साथ 'न' प्रत्यय जोड़कर बहुवचन रूप बनाने के उदाहरण भी मिलते हैं। यथा निम्नलिखित उदाहरण में 'दसनन' शब्द 'दसन' शब्द से बना है-

---

1- गीतावली 2,45

कंबु कंठ चिबुकाधर सुन्दर क्यों कहौं दसनन की रुचिराई ।[1]

(घ) संज्ञा शब्दों के अन्त में 'न्ह' का योग करके भी बहुवचन रूपों का निर्माण [2] हुआ है। ईकारान्त शब्द का अन्त्य स्वर प्रायः न्ह का योग होने से पूर्व ह्रस्व कर दिया जाता है, जैसे- सिसु से सिसुन्ह -

खेल खेलत नृप सिसुन्ह के बालवृन्द बोलाइ ।[3]

(च) कहीं- कहीं 'नि' प्रत्यय का योग भी बहुवचन रूपों के निर्माण में किया गया है जैसे कलनि तथा भुजनि शब्द जो क्रमशः फल तथा भुज शब्द से बने हैं -

तब तहँ कही सबरी के फलनि की रुचि माधुरी न पाई।[4]

भुजनि पर जननी वारि फेरि डारी ।[5]

(छ) इसी प्रकार 'न्हि' प्रत्यय के योग से भी बहुववचन रूपों का निर्माण होता है जैसे झरोखन्हि ।

(ज) केवल अकारान्त संज्ञाओं के अंतिम व्यंजन के साथ 'ऐं' का योग करके बहुवचन रूप बनाने की प्रवृत्ति भी तुलसी की भाषा में दृष्टिगोचर होती है जैसे - बाहैं, घारैं, घाहैं, साहैं, कुचाहैं, तथा बातैं, इत्यादि -

सुमिरत श्री रघुवीर की बाहैं ।[6]

1- गीतावली 1,106

2- यह नियम तुलसी की अवधी बहुल भाषा में रचित ग्रन्थों के अन्तर्गत ही प्रचुरता से मिलेगा। ब्रजभाषा बहुत ग्रन्थों में ऐसे प्रयोग दुर्लभ हैं ।

3- गीतावली - 7,36

4- विनयपत्रिका 164

5- गीतावली 2,273

6- गीतावली 6,13.

धारें बान फूल धनुभूषन जलचर ीवर सुभग सब घाहें ।[1]

सकल भुवन मंगल मंदिर के द्वार विसाल सुहाई साहें ।[2]

जातुधान तियस जानि वियोगिनि दुखाई सीय सुनाई कुचाहें ।[3]

करि आई करिहैं करती हैं तुलसिदास पर छोहें ।[4]

तुलसिदास प्रभु कहौं ते बातें जे कहि भजे सबेरे ।[5]

(झ) केवल आकारान्त पुल्लिंग संज्ञाओं के बहुवचन रूप बहुधा 'ए' के योग से बनाये गये हैं जैसे तारा से तारे ।

वचन सम्बन्धी अन्य स्फुट विशेषताओं के अन्तर्गत दो बातें उल्लेखनीय हैं। प्रथम तो यह कि किसी आदरणीय व्यक्ति के लिये विशेषण और क्रिया के बहुवचन रूपों का प्रयोग तुलसी की रचनाओं में हुआ है, यद्यपि मूलतः संज्ञा के नाते के एक वचन के ही रूप हैं । इन्हीं के कारण ऊपर से देखने में वे संज्ञा रूप भी बहुवचन रूप से प्रतीत होते हैं। दूसरी बात यह है कि अर्थ में एकवचन परक होते हुए भी 'प्रान' शब्द प्रायः सर्वत्र बहुवचन में ही प्रयुक्त हुआहै । इस बहुवचन प्रयोग की सूचना भी साथ में व्यहृत क्रिया के बहुवचन रूपों से होती है । उदाहरणार्थ -

मन हौं तजी कान्ह हौं त्यागी प्रानौ चलिहै परिमिति पाई ।[6]

1- गीतावली- 6,13
2- गीतावली- 6,13
3- गीतावली- 6,13
4- गीतावली- 6,13
5- श्रीकृष्ण गीतावली-3
6- श्रीकृष्ण गीतावली- 25

भावात्मक संज्ञा :

भाववाचक संज्ञाओं के लिंग और वचन जातिवाचक संज्ञाओं की ही भांति चलते हैं। और इसलिये इनके विषय में विचार करना आवश्यक होगा । भाववाचक संज्ञाओं की अनेकरूपता तथा उसके मूल में विद्यमान तुलसी की वह भाषाधिकार सम्पन्नता ही, जिसके बल पर ही वे विशेषण,क्रिया, सर्वनाम,जातिवाचक ,संज्ञा आदि सभी शब्द रूपों से भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण कर सके हैं, विशेष विवेचन की अपेक्षा रखती है । कहीं-कहीं तो स्वयं भाववाचक संज्ञाओं में दूसरे भाववाचक संज्ञा प्रत्यय लगाना भी तुलसी की एक विशेषता है जैसे सुन्दर से बनी हुई भाववाचक संज्ञा,सुन्दरता से दूसरे भाववाचक संज्ञा रूस्प -सुन्दरताई' का निर्माण । तुलसी की रचनाओं में भव वाचक संज्ञाओं के रूपों की छानबीन करने पर जिन प्रमुचा व्यापक नियमों का पता चलता है वे संक्षेप में आगे दिये जायेगें । विवेचन की सुविधा के लिये इन्हें क्रमशः चार वर्गों के अन्तर्गत रखाकर देना उचित होगा -

(अ) विशेषणमूलक भाववाचक संज्ञाएं

(आ) क्रियसामूलक भाववाचक संज्ञाएं

(इ) सर्वनाममूलक भाववाचक संज्ञाएं

(ई) जातिवाचक संज्ञामूलक भाववाचक सं ज्ञाएं

(अ) विशेषणमूलक भाववाचक संज्ञाएं :

(क) गुणवाचक एवं परिमाणवाचक विशेषणों के साथ 'ता' प्रत्यय का योग करके भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण,जैसे निम्नलिखित पंक्तियों में मूढ़ता शब्द मूढ़ से क्या है-

जानकीस की कृपा जगावती सुजान जीव जागि त्यागु मूढ़तानुराग श्री हरे ।[1]

(ख) इसी प्रकार 'ता' का यसोग करके कृदन्तमूलक विशेषणें से भी भाववाचक संज्ञा रूप बनाये गये हैं जैसे भतव्यताऔरलोक मान्तया आदि ।

(ग) गुणवाचक विशेषणों के साथ 'पन' अथवा 'पनु' प्रत्यय का योग करके भावचाचक संज्ञाओं का निर्माण, जैसे परूषन,कठोरपन आदि ।

(घ) गुणवाचक एवं परिमाणवाचक विशेषणों के साथ 'आई' के योग से बनी हुई भावचाचक संज्ञाएं जैसे निम्नलिखित उदाहरणों में प्रयक्त बड़ाई और अरूनाई शब्द-

उबटौ न्याहु गुहौं चोटिया बलि देखि भलाबर करिहिं बड़ाई [2]

अरून चरन अंगुली मनोहर, नख दुतिवंत कहुक अरूनाई ।[3]

(ङ) कहीं-कहीं गुणवाचक एवं परिमाणवाचक विशेषणों के साथ अन्त में 'ई' स्वर के योग से भी भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण हुआ है जैसे निम्नाँकित उदाहरण में प्रयुक्त सठई और अधिकाई शब्द-

तुम समुझत कतर हौ ही नीके नानति नंद नंदन हो निपट करी सठई।[4]

हितनि के लाह की उद्वाह की विनोद मोद सोभा की अवधि नहिं अब अधिकई है।

ई को आई का ही छन्द सुविधा की दृष्टि से संक्षिप्त किया हुआ प्रत्यय मान सकते हैं। इसकी व्युत्पत्ति भी 'आई' की ही भाँति समझनी चाहिए ।

1- विनयपत्रिका -74
2- श्री कृष्णगीतावली- 13
3- गीतावली- 1,106
4- श्रीकृष्ण गीतावली- 36
5- गीतावली 1,94

अब दो ऐसे नियमों का उल्लेख किया जा रहा है जिसका अनुसरण केवल इने गिने स्थलों पर कुछ विशिष्ट शब्दों के साथ हुआ है किन्तु जो मौलिकता और कुतूहल की दृष्टि से ही नहीं वरन् तुलसी की एक विशिष्ट वैयक्तिक प्रवृत्ति के भी परिचायक होने के कारण कुछ विशेष महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं वे ये हैं -

(क) गुणवाचक विशेषण के साथ केवल 'प' प्रत्यय के योग से भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण जैसे -समान से समानप ।

तुलसी प्रभुमुख निरखिते रही चरित रहयो न सयानप तब मन तीके ।[1]

(ख) गुणवाचक विशेषण के साथ केवल 'आत' प्रत्यय के योग से भाववाचक संज्ञा का निर्माण जेसे -कुशल से कुसलात (कुशल+आत्)।

(आ) क्रियामूलक भाववाचक संज्ञाएं :

इनके सम्बन्ध में जिन प्रमुख नियमों काअनुसरण किया गया है वे निम्नांकित हैं -

(क) धातु के मूल रूप का ही भाववाचक संज्ञा के रूप्प में व्यवहार,जैसे निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयुक्त सकुचव और पुलक शब्द -

सुनु मैया तेरी सौं करौ यसाकी टेव लरल की सकुच बेंचि सी खाई ।[2]

लोचन सजल तन पुलक मगन मन होत भूरि भागी जस तुलसी बखानि कै।[3]

(ख) मूल धातु में 'आउ' का योग करके भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण जैसे निम्नलिखित उदाहरण में प्रयुक्त बनाउ और पछिताउ शब्द-

---

1- श्री कृष्णगीतावली- 10 .
2- श्रीकृष्ण गीतावली- 8

भोग पुनि पितु आयु को सोऊ किए बनै बनाउ [1]

दई सुगति सो न हेरि हरष हिय चरन हुए को पछिताऊ ।[2]

(ग) धातु के मूलरूप में 'पनी' के योग से भाववाचक संज्ञा बनाने की प्रवृत्ति तुलसी के काव्यस में मिलती है ।

(घ) कहीं-कहीं मूल धातु के अंतिम व्यंजन के साथ 'आन'क जोड़कर भाववाचक संज्ञा बनी है जैसे बंध से बंधान-

उघटहिं छन्द प्रबन्ध गीत पद राम तान बंधान ।[3].

(ङ) कुछ विशिष्ट स्थलों पर मूल धातु के साथ 'नि' तथा 'नी' जोड़कर भी भावावाचक संज्ञाएं बनायी गयी हैं जैसे जरनि -

याके उए बरति अधिक अंग अंग दब वाके उए मिटति रजनि जनित जरति[4]

(च) मूल धातु के साथ 'आई' का यसोग करके भाववाचक संज्ञाके निर्माण के उदाहरण भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं -

(छ) करतूति जैसे कुछ शब्द भाववाचक संज्ञाओं के रूप में प्रयुक्त हुएहैं । वास्तवमें क्रिया से व्युत्पन्न होने के कारण क्रियामूलक भाववाचक संज्ञाओं के अन्तर्गत लिए जा सकते हैं । यथा-

निज करना करतूति भगत पर चलत चलत चरचाऊ ।[4]

1- गीतावली -7,25
2- विनयपत्रिका - 100
3- गीतावली 1.2
4- श्रीकृष्ण गीतावली 30

(इ) सर्वनाममूलक भाववाचक संज्ञाएं :

इनका निर्माण विविध कारकों में प्रयुक्त सर्वनाम रूपों से अलग अलग कुछ व्यापक नियमों के आधार पर किया गया है जिनका विवरण सोदाहरा आगे प्रस्तुत है-

(क) निजवाचक सर्वनाम 'आप' के प्रथम स्वर को हस्त्त करने के उपरान्त इसके साथ 'आन' का योग करके ' अपान' जैसा भाववाचक संज्ञा रूप बनाया गया है जो अपनापन का अर्थ व्यस्क्त करताहै सामान्यतः अप्रचलित होते हुए भी यह रूप तुलसी की रचनओं में बहुलता के साथ प्रयुक्त हुआ है-

तुलसिदास गुन सुमिर राम के प्रेम मगन नहिं सुधि अपान की ।[1]

(ख) निजवाचक सर्वनाम 'आप' के सम्बन्धकारक में प्रयुक्त होने वाले रूस्प 'आपन' के प्रथम अक्षर को दीर्घ से हस्व करने के उपरान्त 'पउ' अथवा 'पौ' प्रत्यय के योग से बनी हुई भाववाचक संज्ञा अपनपौ का भी व्यवहार प्रचुर है । यथा-

उर आनहिं प्रभु कृतहित जेते । सेवहिं तंजे अपनपौ चेते ।[2]

कुस साथरी देखि रघुपति की हेतु अपुनपौ जानी ।[3]

(ग) संस्कृत सर्वनाम 'अस्मद' की षष्ठी विभक्ति एक वचन के रूप 'मम' के साथ 'ता' प्रत्यय जोड़कर भाववाचक सं ज्ञ रूप ममता का व्यवहार पूर्व प्रचलित परम्परा रूप में ही हुआ है । यथा-

तुलसिदास रीतेहु तनु ऊपर नयननि की ममता अधिकाई ।[4]

1-विनयपत्रिका- 100

2- गीतावली- 5,11

3- विनय पत्रिका 126

4- गीतावली, 2.68

ऐसेहु पितु ते अधिक गीध पर ममता गुन गरूआई ।[1]

सर्वनाम से बनी हुई यही कुछ भाववाचक संज्ञाएं तुलसी में मिलती हैं अन्य रूप प्रायः नहीं मिलते ।

(ई) जातिवाचक संज्ञामूलक भाववाचक संज्ञाएं :

इसके सम्बन्ध में तुलसी की रचनाओं में उपलब्ध प्रमुख नियम नीचे दिये जाते हैं -

(क) 'पन' प्रत्यय के योग से भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण यथा बालपन ।

(ख) 'प' प्रत्यय के योग से बनी हुई भाववाचक संज्ञाएं जैसे- भायप ।

(ग) 'आई' प्रत्यय को जोड़कर भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण जैसे लरिकाई,कलुषाई शब्दों का प्रयोग लरिकाई बीती अचेत चित चंचलता चौगुनी चाय ।[2]

भये सब साधु किरात किरातिनि राम दरस मिटि गई कलुषाई ।[3]

(घ) कहीं-कहीं जातिवाचक संज्ञाओं के रूपों के साथ केवल 'ई' का योग करके भी भाववाचक संज्ञा के रूप बनाये गये हैं । जैसे लरिका के अंतिम अक्षर को दीर्घ से ह्रस्व करके और 'ई' जोड़कर लरिकई शब्द का निर्माण । इसी प्रकार पहुनई शब्द भी बनाहै जिसमें पाहुन का पा उच्चारण सुविधा की दृष्टि से ह्रस्व कर दिया गया है । इनका प्रयोग देखिए -

रावरो भरोसो वहा कै है कोउ कियो छल कैधों कुल को प्रभाव कैधो लरिकई है ।[4]

बारहिं बार पहुनई ऐहैं राम लषन दो भाई ।[5]

1- श्रीकृष्ण गीतावली 25
2- विनयपत्रिका 164
3- विनयपत्रिका 83
4- गीतावली 1,46
5- गीतावली 1,84

(च) 'औरी' प्रत्यय के योग से भी भाववाचक संज्ञा रूप बनाया गया है । यथा ठग से ठगौरी-

'राजिव नयसन बिधु बदन टिपारे सिर नखसिख अंगनि ठगौरी ठौर-ठौर है।[1]

ऋषि नृप सीस ठगौरी सी डारी ।[2]

तुलसिदास ग्वालिनी ठगी आयो न उत्तर कछु कान्ह ठगौरी लाई ।[3]

इसके पश्चात कुछ ऐसी भाववाचक संज्ञाओं के सम्बन्ध में भी कुछ कहना है जो स्वतः भाववाचक संज्ञाओं से ही बनाई गयी हैं । इनके विषय में इतना ही स्पष्ट कर देना पर्याप्त होगा कि प्रायः विशेषणों से विशेष कर गुणवाचक विशेषणों से बनी हुई भाववाचक संज्ञाओं -सुन्दरता, चंचलता और 'मनोहरता' आदि में 'ई' का योग करके इनके सुन्दरताई, चंचलताई और मनोहरताई जैसे अन्य भाववाचक संज्ञा रूप बन गये हैं ।यथा-

अलप तड़ित जुग रेख इंदु महँ रति तजि चवंचलताई ।[4]

क्यों कहौ चित्रकूल गिरि संपत महिमामोद मनोहरताई ।[5]

कारक- रचना :

तुलसी की रचनाओं में उपलब्ध संज्ञाओं की कारक रचना के विवेचन में जाने से पहले उनकी एक विशिष्ट प्रवृत्ति की ओर संकेत करना आवश्यक है । वह यह कि सामान्यतः तुलसीदास जी ने अपने पूर्ववर्ती अवधी कवि जायसी की भाँति अपने ग्रन्थों में

1- गीतावली - 1,96
2- गीतावली 1,71
3- गीतावली 1,98
4- श्रीकृष्ण गीतावली- 8
5- विनयपत्रिका - 62

परसर्गों का प्रयोग अल्प मात्रा में किया है । प्रायसः या तो उनमें संज्ञाएं अपने मूल रूप में ही प्रयुक्त हो गयी हैं, अथवा विभिन्न कारकों में उनका अर्थबोध कराने के लिये उनके साथ विभक्तिसूचक प्रत्यय लगाये गये हैं । यथा-

तुलसी प्रभु गयो चहत मनहु तें सो तो हैं हमारे हाथ ।[1]

इसपंक्ति में 'मनु हुते'प्रयुक्त रूप 'कहँ' तथा 'तें' परसर्गो से युक्त रूप है । परन्तु तुलसी की शब्दावली में इन रूपों की अपेक्षा हि,हि, आदि विभक्ति सूचक प्रत्ययों से युक्त रूप कहीं अधिक मिलेगे । जैसे निम्नांकित पंक्ति में प्रयुक्त प्रभुहिं-

तुलसी प्रीुहित देत सब आसन निज निज मन मृद कमल कुटीर ।[1].

उसी प्रकार ऐसे रूस्प भी बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं जिनमें संज्ञाओं के मूलरूपों का ही प्रयोग हुआ है । उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्ति में प्रभुक्त सिला, लवनि शब्द देखिए -

रूपरासि बिरचवी बिरंचि मनु सिलालवनि रति काम लही री ।[2]

इस सम्बन्ध में डॉ0 बाबूराम सक्सेना की उस गणना [4] काउल्लेख कर देना अनुचित न होगा जिसके अनुसार रामचरित मानस की 300 पंक्तियों के अन्तर्गत 184 संज्ञाओं का प्रयोग हुआ है जिनमें आधुनिक बोलचाल की प्रवृत्ति के अनुसार जाने कितने परसर्गो की आवश्यकता पड़ जाती , परन्तु तुलसीदास ने उनमें से केवल 45 संज्ञाओं के साथसाथ परसर्गों का व्यवहार किया है । उनकी गणना के अनुसार जायसी ने तो

1- श्रीकृष्ण गीतावली -43
2- गीतावली 1.52
3- गीतावली 1,104
4- डॉ0 बाबूराम सक्सेना- एवोल्यूशन आफ अवधी पृ0- 213

पद्‌मावत्‌ की प्रथम 300 पंक्तियों के अन्तर्गत प्रयुक्त 91 संज्ञाओं में केवल 24 संज्ञाओं के साथ परसर्ग का व्यवहार किया है । तुलसी दास भी इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए दिखाई देते हैं । अस्तु अब हम कारक रचना के विश्लेषण पर आते हैं-

कर्ताकारक:

सामान्य रूप से किसी भी आधुनिक आर्यभाषा में कर्ताकारक का बोध कराने के लिए किसी परसर्ग का व्यवहार नहीं होता । केवल पश्चिमी हिन्दी के सकर्मक भूतकालिक क्रिया तथा मराठी के एकवचन रूपों के साथ 'ने' और मराठी के बहुवचन रूपों के साथ भी परसर्ग का प्रचलन मिलता है ।[1] तुलसी की भाषा में अवधी बोली का प्राधान्त हाने के कारण यह स्वाभाविक ही था कि 'ने' परसर्ग का उसमें अभाव हो क्योंकि अवधी में उसकी कोई सत्ता नहीं है । यहाँ पर केवल दो प्रकार से कर्ताकारक के रूपों का विधान दिखाई देता है । प्रायः तो ऐसा होता है कि संज्ञा के मूल रूप अथवा बिकारी एवं अविकारी बहुवचन रूप ही कर्ताकारक के अर्थ में व्यवहृत हुए हैं जिनमें किसी विभक्तिसूचक प्रत्यय अथवा परसर्ग का योग नहीं मिलता । इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे स्थल भी मिलते हैं जहाँ संज्ञाओं के अंतिम अन्तर के साथ चवन्द्र बिन्दु अथवा अनुस्वार के द्वारा सूचित किये गये अनुनासिक ध्वनि के संयोग से इन रूपों का निर्माण हुआ है । ये दोनों प्रवृत्तियाँ दोनों लिंगों तथा दोंनो वचनों में प्रयुक्त होने वाले संज्ञा रूपों की कर्ताकारक रचन के सम्बन्ध में लागू होती है । इनका संक्षिप्त निर्देश निम्नांकित है -

(क) परसर्ग तथा विभक्ति सूचक प्रत्यय से रहित पुल्लिंग विकारी बहुवचन रूपों का व्यवहार उदाहरणार्थ निम्नांकित पंक्तियों में प्रयुक्त वेदन और ऋषयनि शब्दों का

1- पं0 कामता प्रसाद गुरू- हिन्दी व्याकरण पृ0- 255.

हौ नहिं अधम सभीत दीन ? किधौं बेदन मृषा पुकारो ।[1]

जे पूजी कौसिक भरत ऋषयनि जनक गनप संकर गिरिजा है। [2]

(ख) परसर्ग तथा विभक्ति सूचक प्रत्यय से रहित पुल्लिंग बहुवचन अविकारी रूपों का व्यवहार उदाहरणार्थ निम्नांकित पंक्ति में प्रयुक्त 'सोच' शब्द -

सोचव सकल मिटिहैं राम भलो मानि है ।[3]

(ग) परसर्ग तथा विभक्ति सूचक प्रत्यय से रहित स्त्रीलिंग बहुवचन विकारी रूपों का व्यवहार उदाहरणार्थ निम्नांकित उदाहरण में प्रयुक्त जुवतिन्ह शब्द-

दल फल फूमल दूब दधि रोचन जुवतिन्ह भरि-भरि थार लिये ।[4]

(घ) परसर्ग तथा विभक्तिसूचक प्रत्यय से रहित स्त्रीलिंग बहुवचन अविकारी रूपों का व्यवहार उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों में व्यवहृत ग्वालिनि शब्द-

सुनि सुनिवचन चातुरी ग्वालिनि ,हँसि हँसि बदन दुरावहि ।[5]

कर्म कारक:

इस कारक के रूपों का निर्माण भी विभिन्न स्थलों में विभिन्न प्रकार से हुआ है। इसका संक्षिप्त निर्देश सोदाहरण किया जा रहा है ।

1- विनयपत्रिका 94
2- गीतावली- 7,13
3- विनयपत्रिका 135
4- गीतावली 1,3
5- श्रीकृष्ण गीतावली- 4

(क) परसर्ग तथा विभक्ति सूचक प्रत्यय कसे रहित पुल्लिंग बहुवचन विकारी रूपों का प्रयोग उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्ति में देवन शब्द द्रष्टव्य है-

जहि कर गहि सर चाप असुर हति अभय दान देवन दीन्हो।[1]

(ख) परसर्ग तथा विभक्तिसूचक प्रत्यय से रहित पुल्लिंग बहुवचन अविकारी रूपों का प्रयोग यथा निम्नांकित छन्दमें प्रयुक्त 'काम' शब्द -

नीले पीले कमल से कोमल कलेवरनि तापस हूँ

केज किए काम कोटि फीके हैं ।[2]

(ग) परसर्ग तथा विभक्ति सूचक प्रत्यय से रहित स्त्रीलिंग बहुवचन अविकारी रूपों का प्रयोग उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्ति में प्रयुक्त दुदुभी शब्द -

दुदुभी बजाइ गाइ हरषि बरषि फूल सुरगन नाचै नाच

नासयक हू नाक के ।[3]

(घ) विभक्ति सूचक प्रत्यय 'हि' के योग से बने हुए पुल्लिंग संज्ञा रूपों का प्रयोग। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्ति में सुतहि शब्द का प्रयोग-

ललित सुतहि लालत सचु पाए ।[4]

(ड) पुल्लिंग संज्ञा-रूपों के साथ विभक्ति सूचक प्रत्यय हि के योग से कर्मकारक रूपों का निर्माण। उदाहरणार्थ कंचनहि शब्द का प्रयोग-

---

1- विनयपत्रिका -138
2- गीतावली- 2,30
3- गीतावली 1,92
4- गीतावली 1,29

स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं ।[1]

कहु स्थलों पर स्त्रीलिंग संज्ञाओं के साथ भी 'हि' के योग से कर्मकारक रूप बनाये गये है। जैसे गनकहि का प्रयोग-

तौ कत बिप्र ब्याध गनिकहिं तारेहु कहु रही सगाई ।[2]

(च) 'को' परसर्ग के योग से तुलसी ने प्रायः अपनी ब्रजभाषा कृतियों में कर्मकाण्ड रूपों का निमाण किया है। इस परसर्ग से युक्त रूप के उदाहरण निम्नलिखित पंक्ति में द्रष्टव्य है सिगरियै हौं ही खैहों बलदाऊको न देहौं, सो क्यों भटू तेरो कहा कही इत उत जात ।[3]

(छ) कहँ, परसर्ग का व्यवहार कर्मकारक रूपों के निर्माण में तुलसी की लगभग सभी रचनाओं के अन्तर्गत बहुलता से किया गया है । निम्नलिखित छन्द में प्रयुक्त कँह रूप देखिए-

तुलसिदास तजि आस त्रास सब ऐसे प्रभु कहँ गाड ।[4]

उक्त नियमित रूपों के अतिरिक्त तुलसी की संस्कृत मिश्रित शब्दावली के अन्तर्गत कुछ स्थलों पर संस्कृत की विशुद्ध द्वितीया विभक्ति के रूप भी उपलब्ध हो जाते हैं जो प्रस्तुत व्याकरणिक विवेचन में विशेष महत्व के न होते हुए भी वैष्ठिय की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। यथा-

---

1- विनयपत्रिका 105
2- विलयपत्रिका 112
3- श्रीकृष्ण गीतावली 2
4- गीतावली 2,45

निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयुक्त नारायण चवरणार विदमहं शब्द-

नौमि नारायणं नरं करूणायनं ध्यानपरायणं ज्ञानमूलम् ।[1]

चरणारबिंदमहं भजे ाजनीय सुर युति दुर्लभम् ।[2]

युत्पत्ति की दृष्टि से कर्म कारक सम्बन्धी प्रत्यय तथा परसर्ग पयाप्त महत्व रखते हैं । किन्तु इनमें तथा सम्प्रदान कारक के स्रूपामें प्रयुक्त होने वाले प्रत्ययों एवं परसर्गों में बहुत कुछ साम्प पाया जाता है । अतः पहले सम्प्रदानकारक रूपों का विवेचन कर देने के उपरान्त दोनों कारकों के विभक्ति सूचक प्रत्ययों तथा परसर्गों की त्युत्पत्ति पर एक साथ विचार करना अधिक मुक्तिसंगत होगा ।

सम्प्रदान कारक:

इस कारक के रूस्पों का निर्माण प्राय3 कर्मकारक रूपों के प्रत्यय 'हि' और 'हिं' तथा परसर्ग 'कहँ, कहुँ' से ही हुआ है । केवल 'को' ऐसा कर्मकारक परसर्ग है जिसका व्यवहार सम्प्रदान कारक रूपों के लिये तुलसी ने अत्यन्त अल्प मात्रा में किया है कुछ और भी अर्द्धसार्थक एवं सार्थक परसर्गो का सहारा लेकर सम्प्रदानकारक रूप निर्मित किये गये हैं जो उनके कुछ मौलिक प्रयोगों से गिने जा सकते हैं । इनमें लागि, लागि हित तथा हेतु प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं । इनका विवेचन प्रस्तुत है -

(क) विभक्ति सूचक प्रत्यय हि के योग से बने हुए रूपों का प्रयोग जैसे निम्नलिखित उदाहरा में 'साहिबहि का प्रयोग -

तऊ न होत कान्ह को सोमन सबै साहिबहि सो हैं।[3]

1- विनय पत्रिका 60

2- श्रीकृष्ण गीतावली 23

3- वही,35

(ख) कहँ परसर्ग के सहारे सम्प्रदान कारक रूपों का निर्माण जैसे निम्नलिखित उदाहरण में प्रयुक्त भवसरिता -

भव सरिता कहँ नाव संत यह कहि औरनि समझावत ।[1]

(ग) कहुँ परसर्ग के योग से सम्प्रदानकारक रूपों का निर्माण जैसे निम्नलिखित छन्द में-

एहि सरीर बसि सरित वा सठ कहुँ कहि न जाई जो निधि कविआई ।[2]

(घ) लागि पर्स के योग से सम्प्रदान कारक रूपों का निर्माण- यथा-

निज आसिक सुख लागि चतुर अति कीन्हीं है प्रथम निसा सुभ सुन्दर।[3]

(ड) हित का परसर्ग के रूप में प्रयोग करके सम्प्रदानकारक रूपों का निर्माण यथा-

तुलसिदास तनु तजि रघुपति हित कियो प्रेम परवान ।[4]

(च) 'को' परसर्ग के यसोग से सम्प्रदानकारक रूपों का निर्माण-यथा-

भगतन को हित कोटि मातु पितु औरन्ह को कोटि कृसानु है ।[5]

करण कारक:

इस कारक के रूपों का निर्माण विविध नियमों का अनुसरण करते हुए किया गया है । इनके प्रमुखतः तीन प्रकार मिलते हैं -

---

1- विनयपत्रिका 185
2- श्रीकृष्ण गीतावली-25
3- वही- 31
4- गीतावली 2,51
5- वही, 5,35

1) जहाँ पर शब्दों के मूल रूप एक वचन अथवा बहुवचन एवं विकारी रूप (बहुवचन) की करणकारक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं और उनमें किसी विभक्तिसूचक प्रत्यय अथवा परसर्ग का योग नहीं है ।

2) जिन शब्दों के साथ अनुनासिक ध्वनि का योग करके उन्हें करणकारक का रूप दिया गया है।

3) व रूप जिनके विधान में परसर्गो का सहारा लिया गया है ।

उपर्युक्त तीन प्रकार के रूपों के अतिरिक्त कतिपय रूप संस्कृत संज्ञाओं की तृतीया विभक्ति के रूपों से लगीाग पूर्ण साम्य रखाते हैं किन्तु इन रूपों का तुलसी की भाषा की दृष्टि से अधिक महत्व नहीं है । केवल विविधारूपता की दृष्टि से उनका भी उल्लेखा आवश्यक जान पड़ताहै । इनका सोदाहरण विश्लेषण प्रस्तुत है -

(क) पुल्लिंग एकवचन संज्ञा रूपों का मूल रूप में विना किसी विभक्तिसूचक प्रत्यय अथवा परसर्ग के योग के व्यवहार- यथा- निम्नांकित पंक्ति में प्रयुक्त 'यहि' और 'प्रसाद'शब्द -

सखि यहि भग जुग पथिक मनोहर वधु विशवदनि समेत सिघाए ।[1]

राम प्रसाद दास तुलसी डरराम भगति जोग जागि है । [2]

(ख) पुल्लिग बहुवचन विकारी संज्ञा रूपों का व्यवहार यथा निम्नांकि त उदाहरण में प्रयुक्त 'चरन सरोजनि- शब्द -

पानही न चरन सरोजनि चलत मग कानन पठाए पितु मातु कैसे हिय के है।

(ग) स्त्रीलिंग एकववचन संज्ञारूपों का बिना किसी विभक्तिसूचक प्रत्यय अथवा परसर्ग के मूल रूप में व्यवहार यथा निम्नांकित पंक्ति में प्रयुक्त 'कृपा' शब्द-

जहि कृपा व्याघगज विप्र खल नर तरे

तिन्हहिं समान मानि मोहि उद्ध रहगे ।[4]

(घ) विभक्तिसूचक प्रत्यय एवं परसर्ग के योग के बिना स्त्रीलिंग बहुवचन विकारी संज्ञारूपों का व्यवहार । यथा निम्नलिखित पंक्ति में प्रयुक्त 'सहनाइन्ट' शब्द-

सुघर सरस सहनाइन्अ गावहि समय निसान ।[3]

(ड) 'तें' परसर्गका व्यवहार प्रचुरता से हुआ है यथा-

मद मोह लोभ विषाद क्रोघ सुबोघ तें सहजहि गये ।[4]

(च) संसकृत संज्ञाओं की तृतीया विभक्ति के रूपों का व्यवहार यथा निम्नलिखित पंक्ति में प्रयुक्त 'हेलया' शब्द-

धर्म घुर धीर रघुवीर भुजबल अतुल हेलमा दलित भूाार भारी ।[5]

अपादान कारक :

प्राय: इस कारक के रूप करण-कारक रूपों क`साथ साम्य रखते हैं और केवल

1- गीतावली 2,30
2- विनयपत्रिका 211
3- गीतावली 7,21
4- विनयपत्रिका 136
5- विनयपत्रिका 44

अर्थ वैभिन्य के सहारे ही दोनों का अन्तर स्पष्ट होताहै । ते, तैं, तथा सों इस कारक के प्रमुख परसर्गों के रूप में व्यवहत हुए हैं । विभक्ति सूचक प्रत्यय तथा परसर्ग से रहित रूपों का प्रयोग इस कारक में अन्य कारकों की अपेक्षा बहुत कम हुआहै । इनके काव्सय में प्रयुक्त 'ते' के सानुनासिक रूस्प 'ते' का परसर्ग के रूप में प्रयोग निम्नांकित पंक्ति में देखिए-

तुलसी प्रभु गयो चहत मनहु ते सो तो हैं हमारे हाथ ।[1]

सम्बन्ध कारक :

इस कारक के रूपों का निर्माण तुलसी की शब्दावली में जिन प्रमुख परसर्गों के सहारे हुआहै उनमें क, की, के, कें, कै, कइ, को, कर, केरा, केरि, केरी, केरे तथा केकरो उल्लेखनीय है । सम्बन्ध कारक के रूपों की सबसे बड़ी विशेषता यसह है कि उनमें प्रयुक्त होने वाले परसर्गों की संख्या अन्य सभी कारक रूपों की अपेक्षा अधिक है । भाषा के गठन में भी इनका स्थान अधिक महत्वपूर्ण है क्यों कि प्रायः इनके द्वारा भाषा के भेदक लक्षणों पर विशेष प्रकाश पड़ता है । इनके काव्सय में प्रयुक्त सम्बन्धकारक रूपों का व्यवहार सोदाहरण प्रस्तुत है-

(क) 'की' परसर्ग का व्यवहार, यथा-

तुलसिदास सब दोष इरि करि प्रभु अब जाल करहु निज पन की ।[2]

जानकीस की कृपा जगावती सुजान जीवजागि त्यागुमूढ़तानुराग श्री हरे ।[3]

1- श्रीकृष्ण गीतावली -43

2- गीतावली - 2,71

3- विनयपत्रिका 74

(ख) 'को' परसर्ग का व्यवहार - यथा-

धरम धुरीन धीर वीर रघुवीर जी को कोटि राज सरिस भरतजू को राज भो ।[1]

(ग) 'केरि' परसर्ग के दीर्घस्वरान्त रूप 'केरी' का परसर्ग के रूप में व्यवहार,यथा-

मन मेरे मानहि सिख मेरी । जो निर्गुनगति चवहै हरि केरी ।[2]

(घ) 'केरो' परसर्ग का व्यवहार , यथा-

ठौर-ठौर साहिबी होति है ख्याल काल कलि केरो ।[3]

अधिकरण कारक :

इस कारक के रूपों के निर्माण में तुलसी ने प्रायः में, मैं, मो,यहँ,महु, माँह,मोहि,माहीं,माझ,मझारी, पर पहँ, पहिं,पाहीं,आदि को परसर्ग के रूप में व्यवहृत किया है । अधिकरण कारक के प्रमुख रूप प्रस्तुत है-

(क) 'में' परसर्ग का व्यवहार , यथा-

तिहु काल तिहु लोक में एक टेक रावरी तुलसी से मन मलीन को ।[4]

(ख) 'मो' का परसर्ग के रूप में प्रयोग , यथा-

जोगिजन मुनिमंडली भो जाहिरीती धारि ।[5]

1- गीतावली 2,33
2- विनयपत्रिका 126
3- विनयपत्रिका 146
4- वही, 274
5- श्रीकृष्ण गीतावली 53

(ग) 'यहँ' परसर्ग का व्यवहार, यथा-

कौसिल्या कल कनक अजिर महँ सिखावति चलन अंगुरिया लाए ।[1]

(घ) 'माहिं' का दीर्घस्वरान्त रूप माही भी यत्र तत्र छन्द सुविधा के अनुसार प्रयुक्त हुआ है-

एसो को उदार जगमाहीं ।[2]

(ङ) 'पर' जो आधुनिक खड़ी बोली नं भी 'में' के साथ-साथ बहुलता से प्रयुक्त होता है) का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग हुआ है। यथा-

निष्पलता पर रीझि रघुवर देहु तुलसिहिं छोरि ।[3]

डारौ वारि अंग अंगनि पर कोटि कोटि सत मार।[4]

(च) 'यहँ' परसर्ग का व्यवहार, यथा-

महराज राम पहँ जाउगो ।[5]

(छ) संसकृत संज्ञाओं को सप्तमी विभक्ति के रूपों का व्यवहार, यथा-

देहि कामारि सिय रामपद पंकजे भक्तिमनवटत गत भेद माया ।[6]

जग्योपवीत विचित्र हमेमय मुक्तामाल उरसि मोहिं भाई ।[7]

केहै तुलसीदास क्यौ मतिमंद सकल नरेसु।[8]

1- गीतावली 1,29
2- विनयपत्रिका 162
3- वही,158
4- गीतावली 2,29
5- वही, 5,30
6- विनयपत्रिका 10
7- गीतावली 1.106
8- गीतावली 7,9

(ज) विभक्तिसूचक प्रत्यय एवं परसर्ग से रहित केवल मूल एकवचन शब्द रूपों का व्यवहार , यथा-

तुलसी प्रीु निहारि जहाँ तहाँ ब्रजनारि ठगी ठाढ़ी मग लिये रीते भरे घट हैं[9]

(झ) विभक्तिसूचक प्रत्यय एवं परसर्ग से रहित ऐसे रूपों का व्यवहार जो बहुवचन सूचक प्रत्यय के संयोग से बने हैं, यथा निम्नलिखित पंक्ति में प्रयुक्त 'कमलनि'

लोने लोने धनुज विसिष कर कमलनि लोने मुनि पट कटि लोने सरघर है[10]

सम्बोधन कारक :

इस कारक के रूपों के सम्बन्ध में यह समझ लेना आवश्यक है कि तुलसी ने केवल कुछ स्थलों को छोड़कर जहाँ पर संस्कृत संज्ञाओं के रूप प्रयुक्त हो गये हैं, प्रायः सम्बोधन का अर्थ व्यक्त करने के लिये शब्दों के मूल रूपों को विकृत नहीं किया केवल कहीं-कहीं पर हे, रे तथा री, आदि शब्दों को इन रूपों के पहले स्थान देकर उन्होंने उक्त संबोधनार्थ को व्यक्त किया है । वैसे तो सामान्यतः कर्ताकारक में प्रयुक्त होने वाले मूल शब्द रूप,बिना संबोधनसूचक चिन्हों के व्यवहृत किये गये हैं । उनकी समस्त रचनाओं में यही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है । साथ ही उनमें एक महत्वपूर्ण बात यह भी पाई जाती है कि प्रायसः 'हे' शब्द का प्रयोग शिष्टता तथा आत्मीयता का भाव तथा 'रे' का प्रयोग घृणा अथवा तुच्छता का भाव व्यसक्त करने के उद्देश्य से किया गया है। 'रे' के द्वारा चेतावनी काभी भाव अभिव्यक्त करने की चेष्टा की गयी है । कहीं-कहीं अन्य कारक रूपों की भाँति इस कारक में भी संस्कृत संज्ञाओं के सम्बोधन कारक रूप प्रयुक्त हो गये

1- श्रीकृष्ण गीतावली 20

2- गीतावली 2,45

हैं । संक्षेप में उनका विवेच्य प्रस्तुत है -

(क) 'रे' शब्द के द्वारा उक्त अर्थ की व्यंजना करने वाले प्रयोग - यथा-

राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे ।[1]

(ख) स्त्रलिंग संज्ञाओं में 'री' के द्वारा सम्बोधिनार्थ का बोध कराने वाले प्रयोग-यथा-

देखु री सखी पथिक नख शिखनी के हैं ।[2]

ससि तें सीतल मोकों लागै माईरी तरनि ।[3]

(ग) संस्कृत संज्ञाओं के सम्बोधन रूप्पों का प्रयोग, यथा-

सखि पहि मग जुग पथिक मनोहर बधु विधुबदनि समेत सियाए ।[4]

दास तुलसी चरन सरन सीदत विभो पाहि दीनार्त्त संताप हाता ।[5]

सम्बोधन कारक के उक्त नियमित रूपों के अतिरिक्त तुलसी के काव्य के अन्तर्गत ऐसे स्थलों पर , जहाँ सम्बोधित व्यक्ति के सूचक शब्दों का अभाव है, कुछ विशिष्ट निरर्थक अथवा सार्थक ब्द सम्बोधनार्थ सूचक चिन्हों के रूप में प्रयुक्त किये गये हैं,इनमें प्रमुख रूप से उल्लेखनीय शब्द हैं री और रे । इनके प्रयोग के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं ।

(क) 'री' का प्रयोग, यथा-

'स्यसाम गोरे धनु बाब तून धर चित्रकूट अब आइ रहे री ।[6]

1- विनयपत्रिका 189

2- गीतावली 2,30

3- श्रीकृष्ण गीतावली 30

4- गीतावली 2,35

5- विनयपत्रिका 2,35

6- गीतावली 2,42

खायसौ कै खवायौ कै बिगारयौ डारयौहारिका री,

ऐसे सुतपर कोह कैसो तेरो हियो है ।[1]

(ख) 'रे' का व्यवहार , यथा-

मारग अगम संग नहिं सकवल नाउ नाद कर भूला रे ।[2]

तुलसिदास भवत्रास हरहु अब होहु राम अनुकूला रहे ।[3]

(ख) विशेषण शब्द रचना

तुलसी के विशेषणों का वर्गीकरण

व्यसाकरणिक आधार

पात्रगत आधार

ईश्वरपरक देवपरक मानवपरक

गुणवाचक संख्यावाचक सर्वनाममूलक परिणामबोधक

मूलसर्वनाममूलक यौगिकसर्वनाममूलक

कारनसूचक स्थान सूचक आकार सूचक अवस्यासूचक वर्णसूचक

निश्चितसंख्यावाचक अनिश्चितसंख्यावाचक

गणनासूचक क्रमसूचक आवृत्तिसूचक समुदायसूचक प्रत्येकबोधक

पूर्णांकबोध अपूर्णांकबोधक

1- श्रीकृष्ण गीतावली ।6

2- विनयपत्रिका ।89

3- विनयपत्रिका ।89

वर्गीकरण का आधार

तुलसी के विशेषों के वर्गीकरण के कई आधार हो सकते हैं, जिसमें व्याकरणिक ऐतिहासिक , एवं पौराणिक प्रबन्धमें आगत पात्रों के आगत आधार आदि प्रमुख हैं । इनके अतिरिक्त विशेषणों का वर्गीकरण सामाजिक, सांस्कृतिक ,आध्यात्मिक आधार नही है जिसके अन्तर्गत तुलसी के समस्त विशेषणों को वर्गीकृत किया जा सकताहै । प्रायः ऐसे विशेषण तुलसी के काव्सय में प्रयुक्त पात्रों के लिये आये हैं । इन सभी आधारों में प्रमुख दो दृष्टियों से तुलसी के समस्त विशेषों का सर्वांगीण वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा सकता है, जो निम्नांकित है -

(अ) व्याकरणिक आधार ।

(ब) प्रबन्ध में आगत पात्रों का आधार ।

ऐतिहासिक एवं पौराणिक ,सामाजिक एवं सांस्कृतिक (आध्यात्मिक एवं पौराणिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक) तथा आध्यात्मिक एवं दार्शनिक आदि आधारों पर तुलसी के विशेषणों का सम्यक् विवेचन एवं वर्गीकरण नहीं हो सकता । विवेचन सुविधाकी दृष्टि से उपर्युक्त प्रमुख दो आधारों परही तुलसी के विशेषणों का वर्गीकरण किया जायेगा।

(अ) व्याकरणिक आधार :

वैयाकरणों ने विशेषणों का वर्गीकरण केवल व्याकरणिक आधार पर ही किया है । हिन्दी साहित्यस पर उपयोगी ग्रन्थों में सर्वप्रथम ग्रन्थ आचार्य पं० कामता प्रसाद गुरू कृत हिन्दी व्याकरण है जो व्याकरण परलिखे समस्त हिन्दी ग्रन्थ में विशेष प्रामाणिक माना जाता है। फलतः व्याकरणिक आधार पर तुलसी के विशेषज्ञों का वर्गीकरण उसी

ग्रन्थ की आधारभूमि पर किया जायेगा।

व्याकरणिक आधार पर किये गये वर्गीकरण को दृष्टि में रखते हुए विशेषणों को प्रमुखतः चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। और उसी के आधार पर तुलसी के विशेषणों की भी निम्नांकित चार कोटियाँ की जा सकती हैं-

1) तुलसी के गुणवाचक विशेषण

2) तुलसी के संख्यावाचक विशेषण

3) तुलसी के सर्वनाममूलक विशेषण

4) तुलसी के परिमाणवाचक विशेषण ।

(1) तुलसी के गुणवाचक विशेषण :

जो किसी वस्तु या व्यक्ति के गुण अथवा धर्म प्रदर्शित करें उन्हें गुणवाचक विशेषण कहते हैं । गुणवाचक विशेषणों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक रहती है। किसी वस्तु या व्यक्ति का गुण कई प्रकार का हो सकताहै । उसी आधार पर उसके कई अर्थ भी हो सकते हैं । फलतः गुण और अर्थ के आधार पर निम्नांकित कोटियाँ निर्धारित की जा सकती है -

(क) वर्णसूचक

(ख) कालसूचक

(ग) स्थान सूचक

(घ) आकार सूचक

(ङ) अवस्था सूचक

(च) गुण सूचक

(क) वर्णसूचक विशेषण :

किसी भी वस्तु या व्यक्ति के रंग या वर्ण को द्योतित करने वाले विशेषण वर्णसूचक कहलाते हैं । तुलसी साहित्य में नील, पीत, श्याम, श्वेत, अरून इत्यसादि अनेक वर्णो का प्रयोग उनके विविध परिवर्तित रूपों के साथ हुआ है । इस संदर्भ में यह दृष्टव्य है कि जिस स्थल पर जिस वर्ण की तुलिका अपेक्षित थी, गोस्वामी जी ने उसी को अपनाया है। यथा-

नील जलज लोवचन हरि मोचन मम भारी [1]

नील पीत पाथेज बीज जनु दिनकर [2]

पिंग नयन भृकुटी कराल रसना दसआनन [3]

पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली

बालक दामिनि ओढ़ी मानो बारे बारियर ।[4]

कपिस केस कर कस लंगूर खल दल मल मानन ।[5]

स्याम तामरस दाम वरन बपु पति बसन सोआ करसै ।[6]

साँवरे गोरे श्रीर महाबाहु महावीर,

कटि तून तीर धरे धनुष सुहाए हैं ।[7]

1- गीतावली 1/47/1, 1/25/3
2- वही 1/56/3
3- वही 1/24/3
4- वही 2/49/3
5- वही 1/33/2, 1/42/2, 1/43/1, 1/73/4
6- विनयपत्रिका छन्द- 24/3 गीतावली 1/43/2
7- श्रीकृष्ण गीतावली 1/42

उपर्युक्त उद्धरणों से स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी के प्रत्येक ग्रन्थ में वर्णसूचवक विशेषणावली प्रचुर मात्रा में दृष्टिगत होती है ।

(ख) कालसूचक विशेषण :

कालसूचक विशेषण प्रायः घटनाओं का द्योतक करते हैं । तुलसी साहित्य में विशेषतः इनका प्रयोग सीमा निर्धारण के प्रसंग में हुआ है । जो विशेषण समय अथवा समय की सीमा का निर्धारण करें , उन्हें कालसूचक कहा जाताहै । इसके अन्तर्गत नवनी, प्राचीन भूत,वर्तमान और भविष्य की बातों का प्रायः संकेत रहता है, यथा-

दिन दूसरे भूप-भामिनि दोउ भई सुमंगल खानी ।

संग अनुज अनेक सिसु नवनील वीरद स्याम ।[3]

नित नए मंगल मोद अवध सब लोग सुखारे ।[4]

रिपु रन दलि मख राखि कुसल अति अलप दिननि घर ऐहैं ।[5]

थोरी सी बयस गोरे साँवरे सलौने लोने,

लोयन ललित बिधु बदन बटोही ।[6]

दिव्यतर दुरूल भव्सय नव्सय रुचिर चंपक चम,

चवंचला कलाप कनक निकर अलि किधौं है ।[7]

कंबु कठ उस मिसाल तुलसि का नवीन माल,

मधुकर बर-बास विबस उपमासुनु सोरी ।[8]

1- गीतावली 1/74/2, 1/77/2, 1/62/2, 1/63/2
2- वही , 1/4
3- वही , 1/4/1, 7/5/6
4- वही 1/46/5, 1/47/4
5- वही 1/50/3, 3/16/2
6- वही 2/20/1, 1/62/3
7- वही 7/4/5
8- वही 7/7/5

(ग) स्थान-सूचक विशेषण :

स्थान की सूचना देने वाले विशेषणों को स्थान-सूचक विशेषण कहा जाता है। तुलसी साहित्य में इस कोटि के विशेषणों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। इसका प्रमुख कारण उनके काव्सय में भगवान राम की अवतार जीवाओं का वर्णन ही है । कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

> दिये दिव्यस आसन सुपास सावकास अति,
>
> आहे-आहे बीहे-बीहे, बिहौना बिहाई कै ।[1]
>
> सुभग सिंहासनासीन, सीताखान
>
> भुवन अफिराम,बहुकाम सोभा सही ।[2]

तुलसी के काव्य में तिरहे, तिरहौ हे,आयत, सामी (लम्बा) आदि अर्थो के द्योतक स्थानसूचक विशेषण आकार सूचक विशेषणों की भाँति ही प्रयुक्त हुएहैं क्यों कि इनके द्वारा उन्होंने किसी व्यक्ति के स्वरूप का वर्णन किया है, किसी स्थान का नहीं।

(घ) आकार सूचक विशेषण:

किसी व्यक्ति या वस्तु के आकार या स्वरूप को निर्धारित करने वाले विशेषण ही आकार सूचक कहलाते हैं । 'विनयपत्रिका' के प्रारम्भिक पदों में विभिन्न देवताओं की स्तुति करते हुए गोस्वामी जी ने उन्हें पथास्थल जिन जिन रूपों में देखाहै, उन-उन स्वरूपों का चित्रण करते हुए उन्होंने आकार सूचक विशेषणों का ताँता दिया है । कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

---

1- गीतावली 1/25/3, 1/26/5, 1/40/3, विनयपत्रिका 62/6

2- गीतावली 1/73/3

भुज विसाल मुरति कराल कालहु ो काल जनु [1]

बड़े नयन कुटिल भूकुटि भाल विसाल ।

तुलसी मोहत मनहि मनोहरबाल ।[2]

चिक्कन कथ कुचित मभुमारे ।[3]

मुख मयंक सरसीरूह लोचवन तिलक भाल टेढ़ी भौहें ।[4]

कहं सिव चाप लरिकवनि बूझति बिहारी चितै तिरहौहै ।[5]

राम प्रीति प्रतीति तबोली कपट करतब ठोसु ।[6]

तुलसी साहितय में आकार सूचक विशेषणों की अधिकता है। काव्यगत पात्रों के स्वरूप वर्णन में आकार सूचक विशेषणों की सुन्दर झड़ी सी लगी हुई दिखाई पड़ती है । अपने आराध्य के रूप वर्णन में तो कवि ने अपनी सूझ-बूझ का अच्छा परिचय दिया है।

(ड) अवस्था-सूचक विश्लेषण :

किसी वस्तु या व्यक्ति की स्थिति, दशा अथवा अवस्था बतलाने वाले विशेषज्ञ शब्द अवस्था सूचक कहलाते हैं ।[7] गोस्वामी जी ने यथा-स्थान इसका समुचित प्रयोग किया है।

1- गीतावली 1/25/3, 1/26/5, 1/40/3, विनयपत्रिका 62/6
2- गीतावली 1/73/3
3- गीतावली 1/22/7
4- गीतावली 1/63/3
5- वही 1/62/4
6- विनयपत्रिका 59/2
7- मानव मन के विभिन्न मनोभावों का चित्रण ही इसके अन्तर्गत आता है। प्रेम सौन्दर्य, करूणा और उत्साहमूलक भावनाएं ही इस कोटि के विशेषणों की सर्जना करती है ।

तल्स्न अस्रून सरोजपद बनी कनकअय त्रास ।[1]

बम किसोर गोरे साँवरे धनु वान धरे हैं ।[2]

गद गद कठ न कहु कहि जाई ।[3]

उपर्युक्त उदाहरणों से पूर्णतः स्पष्ट है कि तुलसी काव्य में विभिन्न प्रकार के अवस्थामूलक विशेषण प्रयुक्त हुए हैं। ऐसे विशेषणों में प्रायः अर्थ में एकता किन्तु रूप में अनेकता दृष्टिगत होती है ।

(च) गुणसूचक विशेषण :

गुणवाचक विशेषों का अंतिम किन्तु महत्वपूर्ण उप-विभाग गुण सूचक विशेषण ही है । जो सिी भी जड़ अथवा चवेतन पदार्थ का गुण प्रकट करे उसे गुण सूचक विशेषण कहते हैं । ऐसे विशेषण उपर्युक्त परिगणित किसी भी कोटि में समाहित नहीं किये जा सके । कुछ उदाहरण देखिए -

ललन लोने लेरूआ ,बलि भैया [4]

अति पुनीत मधुमास, लगन ग्रह बार जोग समुदाई ।[5]

कल बल बचन तोतर मंजुल कहीं माँ मोहि बुलैहो ।[6]

लोहित ललित लघु चरन कमल चारू,

चाल चाहि सो छवि सुकवि जिय जियो है ।[7]

1- गीतावली 1/41/2, 1/55/1, 1/64/1
2- वही 2/25/1
3- वही 1/72/7
4- गीतावली 1/20, 1/24/3, 1/42/1, 1/53/1
5- वही 1/1/1, 1/32/3, 1/58/3
6- वही 1/8/3, 1/9/5, 1/9/4, 1/24/4, 1/22/1, 1/18/2, 1/25/4, 1/28/3
7- वही, 1/10/3, 1/8/4, 1/7/1, 1/10/4, 1/21/4, 1/27/8, 1/25/3,

बाल विभूषन बसन मनोहर अंगनि बिरचि बनै हो ।[1]

या ब्रज में लरिका घने हौं ही अन्याई ।[2]

वास्तव में गुण सूचक विशेषणों के अन्तर्गत उपर्युक्त वर्णित पाँचों उपविभागों (काल, स्थान, आकार, अवस्था और वर्ण) को छोड़कर शेष सभी के गुणवाचक विशेषण इसी कोटि में आते हैं । तुलसी साहित्य में इनकी संख्या अपरिमित है ।

इस कोटि के विशेषणों के अन्तर्गत क्रमशः मंजु, पावन, पापी,दानी, झूठा, सच्चा, न्यायी,दुष्ट, अधम, शत, नीच, पामर, तुच्छ, हीन, पातकी, पाँवर, गँवार, भले-बुरे, सीधा, शान्त आदि अनेक स्वभाव सूचक विशेषण आते हैं, साथ ही दिव्य, पूत, पवित्र, सुभ, मंगल, भल, चारू, रुचिर, सुचि, प्रवीन, कुशल, चतुर, निपुण, गूढ़, शीतल, मंद, चिक्कन,लोल, सुठि, सरल, सुशील, इत्यादि विशेषणावली भी इसी के अन्तर्गत परिगणित की जायेगी । यह ध्यातव्य है कि तुलसी साहित्य में इन विशेषणों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है । विषम विस्तार के भय से सभी के उदाहरण न प्रस्तुत किये जा सकेंगें । इसकोटि के विशेषणों के प्रयोग में गोस्वामी जी अपेक्षाकृत अधिक सजग दिखाई पड़ते हैं । विशेषता तो यह है कि समनार्थी एवं समानधर्मी शब्दों के विविध रूप की पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलते हैं । इन विशेषज्ञों के प्रयोग में शब्दों के अर्थ विस्तार एवं अर्थ संकोचव पर गोस्वामी जी ने विशेष ध्यान दिया है ।

(2) तुलसी के संख्यावाचक विशेषण :

संख्यावाचक विशेषणों को विवेचन की सुविधा की दृष्टि से दो भागों में विभाजित

1- गीतावली, 1/8/2, 1/29/2, 1/32/3, 1/34/3, 1/56/1, 3/7/6, 3/13/3

2- श्रीकृष्ण गीतावली 8/2

किया जा सकता है -

(अ) निश्चित संख्यावाचक

(आ) अनिश्चित संख्यावाचक

तुलसी काव्य में संख्यावाचक विशेषणों का प्रयोग प्रचुरमात्रा में हुआ है। अब हम इनका क्रमिक विवेचन प्रस्तुत करेंगें ।

(अ) तुलसी के निश्चिवत संख्यावाचक विशेषण:

जिनसे वस्तुओं की निश्चित संख्या का बोधहोता है उन्हें निश्चित संख्यावाचक विशेषण कहते हैं । निश्चित संख्या वाचक विशेषणों को पाँच भागों में विभाजित किया जा सकताहै -

(क) गणनावाचक

(ख) क्रमवाचक

(ग) आवृत्तिवाचक

(घ) समुदायवाचक

(ड) प्रत्येक बोधक

(क) गणनावाचक विशेषण :

तुलसी के गणनावावचक विशेषणों के दो उपविभेद हैं-

(अ) पूर्णांकबोधक

(ब) अपूर्णांक बोधक

पूर्णांक बोधक विशेषण उसे कहते हैं, जिससे किसी पूर्ण संख्या का बोध हो। तुलसी साहित्य में ऐसे विशेषणों की संख्या अत्यधिक हैं । कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

उपमा कहौं चारि फल की,मोहि भलों न कहई कवि कोई ।[1]

राम लखन आवते भरत रिपुदमन चारू चवाइ्यो भैया ।[2]

सखि महि मग जुग पथिक मनोहर ।[3]

उपर्युक्त उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकताहै कि तुलसी में इस कोटि के विशेषणों की संख्या अधिक है । इन विशेषणों के विविध परिवर्तित रूप भी अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुएहैं ।

अपूर्णांक बोधक विशेषण उसे कहते हैं जिससे किसी अपूर्ण संख्या का बोध होता है तुलसी के काव्यस में इस कोटि के विोषणों का प्रयोग सीमित मात्रा में हुआ है। इनके रूपों में आधे डेबढ़ और अढाई उल्लेखनीय हैं ।

॥ख॥ क्रमवाचक विशेषण :

क्रमवाचक विशेषणों से किसी वस्तु की क्रमानुसार गणना का बोध होता है। ऐसे विशेषण तुलसी काव्य में कई स्थलों पर ॥ विनय पत्रिका में भक्ति के साधनों को गिनाते समय प्रयुक्त हुए हैं ॥ उदाहरणार्थ -

परिवा प्रामि प्रेम बिनु राम मिषन अति दूरि ।[4]

दुहज द्वैत मति छाड़ि चरहिं महि मण्डल धीर ।[5]

1- गीतावली 1/2/8, 1/2/10, 1/5/3, 1/6/8
2- वही, 1/8/1, 1/9/1, 1/17/3, 1/16/2
3- वही 2/35/1
4- विनयपत्रिका 203/2
5- वही 203/3

(अ) मूल सर्वनाम

(आ) यौगिक सर्वनाम

सर्वनाममूलक विशेषण के रूप उतनी ही अधिक संख्या में है जितनी संख्या सर्वनामों की है सामान्यतः अन्यपुरुषवाचक, सम्बन्धवाचक,प्रश्चवाचक और अनिश्चितवाचवक इन सभी सर्वनामों का व्यवहार कहीं-कहीं बिना किसी विकार अथवा परिवर्तन के विशेषण क रूप में हुआ है । इनके अतिरिक्त आन, अपर, अस, जस जेते, कवने और केतिक आदि शब्द सर्वनामों से बने हुए (उनके मूल रूप से भिन्न) विशेषणों के अन्तर्गत उल्लेखनीय हैं ।

: : : : :
: : : :
: : :
: :
:

तीज त्रिगुण पर परम पुरुष श्री रमन मुकुन्द ।[1]

चौथि चारि परिहरहु बुद्धि मन चि अंहंकार ।[2]

पाचइ पाँच परस रस शब्द गद्य डाक रूप ।[3]

छठ पट बरग करिय जय जनप सुलामति जारी ।[4]

साते सप्त धातु निरमति तनु करिय विचार ।[5]

आठइ आठ प्रकृति पर निरबिकार श्री राम ।[6]

नवमी नव द्वार पुर बसि जेहि न आपु भल कीन्ह ।[7]

दसई दसइ कर संजय जो न करयिस जिप जानि ।[8]

एकादशी एकमन बस कै सेवहु जाहि ।[9]

छादस दान हेतु अस अभय होई लैलोक ।[10]

तेरसि तीन अवस्था तजहु भजइ भगवत ।[11]

चौदसि चवौदह भुवन अचर चर रूप गोपाल ।[12]

1- गीतावली, 203/4
2- वही , 203/5
3- वही, 203/6
4- वही, 203/7
5- वही, 203/8
6- वही, 203/9
7- वही, 203/10
8- विनयपत्रिका, 203/11
9- वही, 203/12
10-वही, 203/13
11-वही, 203/14
12-वही,203/15

क्रमवाचक विशेषणों के संर्दी में एक बात ध्यान देने योग्य है कि तुलसी काव्य में इनकी बहुलता है । विशेषण विषयक दुष्क्रमत्व दोष तुलसी में देखने को मिलता है।

(म) आवृत्ति सूचक विशेषण :

इस विशेषण से यह जानाजाताहै कि इसके विशेषण का वाच्य पदार्थ कितने गुना है । पूर्णांक बोधक विशेषण के आगे 'गुना' शब्द जोड़ने से आवृत्ति सूचक विशेषण बनते हैं । तुलसी ने संस्कृत के आवृत्तिवाचक विशेषणों का भी प्रयोग किया है । यथा द्विगुण, त्रिगुण ,चतुर्गुण इत्यादि । एक उदाहरण देखिए -

सो हरि गौर प्रसाद एक ते कौसिक कृपा चौगुनो भोरी ।[1]

आवृत्ति विशेषणों के प्रयोग में तुलसी का क्षेत्र कुछ सीमित सा प्रतीत होता है।

(घ) समुदायवाचक विशेषण :

जिनसे किसी पूर्णांक बोधक संख्या के समुदाय का बोध होताहै उसे समुदायवाचक विशेषण कहते हैं ।7 तुलसी साहित्य में ऐसे विशेषणों की संख्या अत्यधिक है कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

पगनि कब चलिहै चारो भैया ।[2]

उमंगि चल्यो आनंद लोक तिहू देत सबनि मंदिर रितए ।[3]

1- गीतावली 1/102/1
2-(अ) पूर्णांक बोधक विशेषणों के आगे 'ओं'जोड़ने से समुदाय वाचक विशेषण बनते हैं।
(आ)'ओं' प्रत्यय अनिश्चय बोध भी है। पं0कामताप्रसाद गुरू-हिन्दी व्याकरण,पृ-114
3- गीतावली 1/9/1

पू र्णांक बोधक संस्याओं के साथ अवधी में 'ओ' के स्थान पर 'उ' अथवा 'ऊ' अधिक मिलता है । तुलसी साहित्य में ऐसे विशेषणों में 'ओ' का योग नहीं मिलता ,क्योंकि तुलसी अवधी के कवि हैं । फलतः समुदायवाचक विशेषणों में वचारों, दसों , बीसों, और पचासों के स्थान पर क्रमशः चारिहुँ, दसहुँ, बीसहुँ, और पचासहुँ, इत्यादि विशेषण रूप मिलते हैं।[1]

(ङ) प्रत्येक बोधक विशेषण :

जहाँ पर कई वस्तुओं में से प्रत्येक का बोध होता है वहाँ प्रत्येक बोधक विशेषण होता है । यथा-प्रतिजन्म, प्रत्येक बालक, हर घड़ी इत्यादि । प्रत्येक बोधक विशेषणों में तुलसी की भाषा में बहुलता से इसी प्रति शब्द का प्रयोग हुआ है ।[2] तुलसी की प्रत्येक रचना में इसका प्रयोग सुलभता से मिल जायेगा ।

(आ) तुलसी के अनिश्चित संख्यावाचक विशेषणः

जिस संख्यावाचक विशेषण से किसी निश्चित संख्या का बोध नहीं होता उसे अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण कहते हैं । ऐसे विशेषणों की संख्या के अर्थ में इनका प्रयोग बहुवचन में होता है । कुछ उदाहरण देखिए -

सौहिलो सौहिलो सौहिलो सब जग आज ।[3]

1- गीतावली- 1/3/6

2- समुदायवाचक विशेषणों से किसी पूर्णांक संख्या के समुदाय का बोध होता है, यथा दोनों हाथ, चारों जुग ,आठों लड़के इत्यादि, किन्तु अनिश्चित संख्यावाचक विशेषणों से किसी निश्चित संख्या का बोध नहीं होता। यथा-सभी लड़के,सब आदमी, बहुत पेड़ इत्यादि। पं० कामताप्रसाद गुरू-हिन्दी व्याकरण- पृ०- 114

3- गणनावाचक विशेषणों की द्विरूक्ति से भी यही अर्थ निकलता है। यथा -दो-दो घंटे बाद (दुइ दुइ सुत सब भ्रान्तह करै)(तुलसीदास- रामचरितमानस)(पं कामता प्रसाद गुरू- हिन्दी व्याकरण पृ०- 115

आनंद उमगत आज विबुध विमान विपुल गनाइके ।[1]

कीरति विकल विस्व अघमोचनि रहिहि सकल जग छाई ।[2]

अनिश्चित संख्यावाचक विशेषणों के प्रयोग में तुलसी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार के रूप में दिखाई पड़ते हैं । एक ही शब्द के विभिन्न पर्यायों का प्रयेग तुलसी की बहुज्ञता का द्योतक है ।[3]

संख्यावाचक विशेषणों के उपर्युक्त संक्षिप्त पर्यालोचन से यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि तुलसी अपरिमित शब्द-राशि के जनक हैं । संख्यावाचवक विशेषणों का काइ ऐसा उपवर्ग नहीं मिलता जिसमें तुलसी की सुमति का वैचित्य न देखने को मिलता हो । वास्तव में यही साहित्यकार की सफलता है ।

(3) तुलसी के सर्वनाममूलक विशेषण :

पुरुषवाचक एवं निजवाचक सर्वनामों को छोड़कर शेष सर्वनामों का प्रयोग विशेषणों के समान होता है । जब ये शब्द अकेले आते हैं तो सर्वनाम होते हैं और जब इनके साथ संज्ञा आती है तब विशेषण होते हैं । उदाहरणार्थ- किसी को बुलाओ' में किसी शब्द सर्वनाम है और किसी ब्राह्मण को बुलाओ में किसी शब्द विशेषण है क्यों कि इसके साथ ब्राह्मण शब्द संज्ञा रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

व्युत्पत्ति के अनुसार सर्वनाममूलक विशेषणों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-

---

1- गीतावली 1/2/1

2- गीतावली 1/5/2

3- (अ) और का और,सब का सब, विशेषण वाक्यांश है । इसका प्रयोग समस्तता के अर्थ में होता है। तुलसी में ऐसे प्रयोग भी मिलते हैं।(पं कामताप्रसाद गुरू-हिन्दी व्याकरण पृ0- 117

सर्वनाम

तुलसी की भाषा में उपलब्ध सर्वनाम रूपों के विश्लेषण के पूर्व हिन्दी में सर्वनाम रूपों की जटिलता के विषय में संकेत कर देनाआवश्यक जान पड़ता है । इससम्बन्ध में निम्नलिखित बातें प्रमुख रूप से ध्यान देने योग्य है-

1) बहुत से प्राचीन विभक्तिसूचक प्रत्यय, जिनका प्रयोग संज्ञाओं के साथ अब कहीं नहीं मिलता है । सर्वनामों में प्रायः नियमित रूप से प्रयुक्त होते हैं ।

2) कतिपय राजस्थानी प्रयोगों के अतिरिक्त अन्य बोलियों की शब्दावली में लिंग भेद सर्वनामों से प्रायः विलुप्त हो गया है ।

3) अन्य पुरुष वाचक सर्वनाम का पृथक अस्तित्व स्पष्ट नहीं रह गया । इसका बोध भी प्रायः सम्बन्ध वाचक 'ओ' की तोल में प्रयुक्त होने वाले नित्य सम्बन्धी सर्वनाम 'सो' तथा दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम 'वह' के रूपों से होने लगा है ।

इस प्रकार की विषमताएं और जटिलताएं एकदम से नहं आ गयीं, इनका आभास पहले से ही साहित्यिक रचनाओं में होने लगा था जिसका पता हमें तुलसी की भाषा में उपलब्ध सर्वनामों को देखने से भी चलता है । हम इस जटिलता के विषय में इतना ही निर्देश करके , वर्गीकरण , कारक, रचना तथा व्युत्पत्ति आदि प्रमुख बातों को ध्यान में रखते हुए तुलसी द्वारा प्रयुक्त सर्वनाम रूपों पर विचार करेंगें 2।

वर्गीकरण :

आजकल साहित्यिक हिन्दी में उपलब्ध सर्वनामों के आठ प्रमुख भेद मिलते हैं-

1) पुरुषवाचक

2) सम्बन्ध वाचक

3) नित्य सम्बन्धी

4) निश्चयताचक

5) प्रश्नवाचक

6) अनिश्चय वाचक

7) निजवाचक

8) आदरवाचक

इसी वर्गीकरण के आधार पर तुलसी की भाषा में प्रयुक्त सर्वनामों के मूल रूपों का उल्लेख क्रमशः नीचे किया जाता है ।

पुरुषवाचक:

मैं प्रायः इसी रूप में तथा कही-कहीं हौं के रूप में व्यहृत हुआ है । तू के स्थान में तैं तथा तू का प्रधान रूप से और तूँ का गौण रूप से केवल यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है। उत्तमपुरुषवाचक मैं का बहुवचन रूप 'हम' तथा मध्यमपुरुषवाचक तैं एवं तू का बहुवचन रूप तुम्ह मिलता है। 'हम' तथा 'तुम्ह' अपवाद रूप में कही-कहीं एकवचन रूपों के लिये भी आये हैं किन्तु उनकी गणना नियमित रूप रचना के अन्तर्गत नहीं की जा सकती । आदरवाचक 'आप' को भी जिसका 'आपु' रूप तुलसी की भाषा में बहुलता से प्रयुक्त मिलता है, मध्यमपुरुषवाचक सर्वनाम के अन्तर्गत ही रखना चाहिये ।

सम्बन्धवाचक :
- - - - - - - -

'जो' के लिये तुलसी ने प्रीाावतया 'जो' तथा 'जेहि' का और गौणतया 'जोई' का प्रयोग किया है । बहुवचन में इसके दो रूप मिलते हैं 'जे' तथ जिन्ह ।

नित्यसम्बन्धी और दूरवर्ती निश्चयवाचक :
- -

इन दोनों प्रकार के सर्वनामों के लिये तुलसी ने एक ही प्रकार के रूपों का व्यवहार कियाहै । आजकल के दूरवर्ती निश्चयवाचक वह का प्रयोग विरल है, प्रायः सर्वत्र सो के द्वारा ही दोनों प्रकार के सर्वनाम रूपों काबोध कराया गया है । अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम की सूचना भी इसी शब्द के द्वारा हो जाने के कारण उसकी भी कोई पृथक सरता शेष नहीं रह गयी । सो का बहुवचन रूप ते मिलता है । उक्त प्रमुख रूपों के अतिरिक्त 'सो' के स्थान में तेहि और ते के स्थान में तिन्ह,तेई और उन्ह का भी यत्र-तत्र प्रयोग दृष्टिगोचवर होता है ।

दूरवर्ती निश्चयवाचक :
- - - - - - - - - - - - - -

वह के विषय में ऊपर विवेचन हो चुका है । अब रह जाताहै केवल निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम जिसके रूप यह तथा(बहुवचन) ए और इन्ह मिलते हैं । यह के स्थन में यत्र-तत्र एहा औरएहि भी प्रयुक्त हुएहैं ।

प्रश्नवाचक :
- - - - - -

इसके अन्तर्गत प्रायः कवन को तथा का व्यवहार दिखायी देता है । बहुवचन में इनका के रूप मिलता है । इन प्रमुख रूपों के अतिरिक्त एक वचन में कहीं-कहीं केई केहि, जेसे रूपों का भी व्यवहार हुआ है ।

अनिश्चय वाचक:

इसके अनतग्रत प्रधानरूप से कोउ तथा कोई और गौण रूस्प से काहु तथा एक का प्रयोग वर्तमान खड़ीबोली कोई के अर्थ में तथा काउ का प्रयोग खड़ीबोली कुछ के अर्थ में हुआ है । इनके एकवचन और बहुवचवन के रूस्पों में कोई मौलिक भेद नहीं दृष्टिगोचर होता ।

निजवाचक :

इसके अन्तर्गत आप आपुन और आपुनु जैसे रूपों का प्रयोग मिलता है । प्राय: इनका व्यवहार सर्वत्र एक वचन में ही हुआहै ।

तुलसी द्वारा प्रयुक्त सर्वनों के मूल रूपों के सामान्य वर्गीकरण के पश्चात उनकी कारकरचना की विशेषताओं तथा विभिन्न कारकों में प्रयुक्त विभक्तिसूचक प्रत्ययों एवं परसर्गो से युक्त रूपों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है -

उत्तरपुरुष वाचक सर्वनाम :

कर्ताकारक के अन्तर्गत मूल रूपों का ही प्रयोग हुआहै । एकवचन में मै तथा हौं का और बहुवचन में हम का । कहीं कही हम एकवचन में प्रयुक्त हुआ है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

(क) मै का प्रयोग-

मैं तोहि अब जान्यसों संसार ।[1]

(ख) 'हौं' का प्रयोग-

1- विनयपत्रिका - 188

हौ सब विधि राम रावरो चवाहत भयो घेरो ।[1]

चलत महि मृदु चवरन अरून बारिज वरन,

भूपसुत रूस्पनिधि निरखि हौ मोही ।[2]

(ग) 'हम' का बहुवचन में व्यवहार-

तुलसी परमेश्वर न सहैगो हम अवलनि सब सही है ।[3]

(घ) हम का एकवचन में व्यवहार-

तौ कलि कठिन करम मारग जड़ हम कहि भाँति निबहते ।[4]

(च) इनके विशुद्ध संस्कृत बहुवचन रूप 'वयं' का व्यवहार भी यत्र-तत्र हो गया है।

धीर गंभीर मनपीर कारक तत्र के वराका दमं विगत सारा ।[5]

उक्त सभी रूपों के बसात्मक रूप भी उपलब्ध होते हैं जो प्रायः 'हु' और 'हुं' अथवा 'हू' और 'हूँ' प्रत्ययों के सहारे, जिनसे खाड़ीबोजी के भी का अर्थ सूचित किया गया है, बनाये गये हैं । यथा निम्नलिखित पंक्ति में हमहुँ का प्रयोग-

भली कही आली । हमहुँ परिचाने ।[6]

कर्मकारक के अन्तर्गत एकवचन में सामान्यतः मोहि इसी के अनुनासिक रूप मोहि तथा दीर्घ स्वरान्त रूप मोही का और बहुवचन में हमहि तथा हमहि रूपों का प्रयोग मिलता है। किन्तु कहीं-कहीं हौं तथा हम अपने मूल कर्ताकारक रूपों में ही व्यहृत हो

1- विनयपत्रिका ।46
2- गीतावली 2,18
3- श्रीकृष्ण गीतावली 42
4- विनयपत्रिका 97
5- वही, 60
6- श्रीकृष्ण गीतावली 38

गये हैं जिन्हें अर्थ की दृष्टि से ही अपवाद स्वरूप कर्म कारक रूपों के अन्तर्गत ग्रहण करना पड़ा है । इनका सोदाहरण विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है-

(क) मोहि का व्यवहार-

सुन्दर मुख मोहि देखाउ इच्छा अति मोरे ।[1]

जनकसुता कब सासु कहै मोहि रामलषन कहै मैया ।[2]

(ख) बहुवचन रूप 'हमहिं' का एकवचन में प्रयोग-

तदपि हमहिं त्यागहु जनि रघुपति दीनबन्धु दयालु मेरे बारे ।[3]

(ग) मोको का व्यवहार-

मोको बिधुबदन विलोकन दीजै ।[4]

कीजै मोको जमनातनामई ।[5]

(घ) संस्कृत के उत्तम पुरुष एकवचन के कर्मकारक रूप 'माम' का प्रयोग विनयपत्रिका के स्तुति के पदों में यत्र-तत्र मिल जाता है । यथा-

पाहि मामीस संताप संकुल सदा दास तुलसी प्रनत रावनारी ।[6]

हृदय अवलोकि यह सोकसरनागत पाहिमां पाहि भो विश्वभर्ता ।[7]

सम्प्रदान कारक के रूपों के निर्माण में उत्तमपुरुषवाचक सर्वनाम के अन्तर्गत एकवचन में मो अथवा मोहि के साथ यथास्थान को कहुँ ,लगि,लगि, निति आदि परसर्गो का

1- श्रीकृष्ण गीतावली -1

2- गीतावली 2, 55

3- वही 2,2

4- वही, 2,12

5- विनयपत्रिका 171

6- वही 54

7- वही, 59

व्यवहार हुआ है बहुवचन में हमहि, हमकहँ, हमकहुँ, रूप मिलते हैं । कुछ उदाहरण देखिए-

(क) मोको का प्रयोग-

मोको और ठौर न सुटेक एक तेरिए ।[1]

मोको तो राम को नाम कल्पतरू कलि कल्यान करो ।[2]

(ख) 'हमहिं' का प्रयोग-

भूमिदेव नरदेव सचिव परसपर कहत हमहिं सुरतरू सित घनु ओ ।[3]

करणकारक के अन्तर्गत प्रमुख रूप से 'मो' सन मोहिसन' मेपहि, मो पाही, मोहिपाहीं, मोपै, हमसों और हम सब उल्लेखनीय हैं । इनके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-

(क) 'मो पाहीं' का प्रयोग-

'ता ठाकुर को रीतिझ निवासिनी कहयसो क्यों परत मो पाही ।[4]

(ख) (मोपै' का प्रयोग-

तुलसीदास स्याम सुन्दर बिरह की दुसह दसा सो मोपै परति नहीं बरनि।[5]

तो क्यों कटत सुकृत नख तें मोपै विटप बूँद अघ वन के ।[6]

(ग) 'हम सों' का प्रयोग-

हम सों कहत विरह स्रम जेहै मगन कूप खानि खोरे ।[7]

1- विनयपत्रिका-18।
2-वही, 226
3- गीतावली- 1,64
4- विनयपत्रिका 4
5- श्रीकृष्ण गीतावली - 30
6- विनयपत्रिका 96
7- श्रीकृष्ण गीतावली 44

अपादानकारक के रूपों में केवल एक ही रूप ध्यान देने योग्य है वह है 'मोते' का प्रयोग -

देखी मैं दसकंठ, सभा सब मोतें कोउ सबल तो ।[1]

सम्बन्ध कारक में प्रयुक्त होने वाले रूस्पों की संख्या सबसे अधिक है । विविध रूपता के विचार से भी उनका विशेष महत्वहै । निमें प्रमुखतः उल्लेखनीय रूप ये है-

एकवचन में मो, मोर , मोरा, गोरि, मोरी, मोरे, मोरें, मेरी, मेरे, मेरों, तथा मम और बहुवचन में (कहीं-कहीं एकवचन में भी) हमार, हमारा, हमारि,हमारी, हमारे, हमारें, हमारो तथा अस्मद् की षष्ठी विभक्ति का कवृति बहुवचन रूप असमाकं है । स्फुट रूपों में मोहिं, हमरि, हमरे,हमरें तथा हमरो और आत्मक रूपों के अनतर्गत मोरेहु, मोरेहु×,मोरिऔ, मेरियै तथा हमरउ विशेष रूप से ध्यान देने यसोग्य है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-

(क) 'मो' का प्रयोग-

माधव । मो समान जग माहीं ।[2]

(ख) 'मोरि' का प्रयोग-

देत सिरत सिखायो नमानत मुढता असि मोरि।[3]

(ग) 'मोरी' का प्रयोग-

व्याह समय सोहत वितान तर उपमा कहुँ न लहत गति मोरी ।[4]

1- गीतावली 5,13
2- विनयपत्रिका 114
3- वही,158
4- गीतावली 1,103

(घ) 'मोरे' का प्रयोग-

सब प्रकार मैं कठिन मृदुल हरि,दृढ़ विचार जिय मोरे ।[1]

(ङ) 'मेरी ' का प्रयोग-

अँधियारे मेरी बार क्यों? त्रिभुवन उजियारे ।[2]

जिनकी भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।[3]

(च) 'मेरे' का प्रयोग-

भलो भली भाँति है जो मेरे कहे लागि है ।[4]

प्रातकाल रघुवरी बदन छबि चितै चतुर चिवत मेरे ।[5]

(छ) 'मेरो' का प्रयोग-

बारक कहिए कृपालु तुलसिदास मेरो ।[6]

(ज) 'मम' का प्रयोग-

मम हृदय कंज निवास करू कामादि खल दल गंजनं ।[7]

मम हृदय भवन प्रभु तोरा ।[8]

(झ) 'हमारी' का प्रयोग'

कोटि जतन करि सपथ कहे हम माने कौन हमारी ।[9]

1- विनयपत्रिका - 114
2- विनयपत्रिका - 33
3- वही- 5
4- वही - 70
5- गीतावली 7,12
6- विनयपत्रिका 78
7- वही 45
8- वही, 125
9- श्रीकृष्णगीतावली- 6

(ञ) 'हमारे' का प्रयोग-

मग नर नारि निहारत सादर कहै बढ़ भाग भाग हमारे ।[1]

तुलसी प्रभु मगा चहत मनहु तें सों तो है हमारे हाथ ।[2]

(ट) 'हमारो ' का प्रयोग-

जासों होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो ।[3]

(ठ) 'असमाकं' का प्रयोग-

अनघ अविछिन्न सर्वज्ञ सर्वेस खलु सर्वतोभद्र दाताअसमाकं ।[4]

(ड) 'मोहि' का प्रयोग-

तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै ।[5]

(ढ) 'हरि' का प्रयोग-

हमरि बेर कस भयो कृपनतर ।[6]

(ण) हमरे का प्रयोग-

ज्ञान विराग कालकृत करतब हमरे द्विसिर सिर धरिबे हो ।[7]

(त) मेरिऔ का प्रयोग-

मेरिऔ सुधि धाइवी कहु करून कथा चलाई ।[8]

1- गीतावली- 1,58
2- श्रकृष्ण गीतावली- 43
3- विनयपत्रिका- 174
4- वही - 51
5- वही- 79
6- वही- 7
7- श्रीकृष्ण गीतावली- 39
8- विनयपत्रिका- 41

(थ) मेरियै का प्रयोग-

चूक चपलता मेरियै तू बड़ो बड़ाई ।[1]

अधिकरण कारक में प्रयुक्त रूपों के अन्तर्गत मोपर,मोहिपर, मोपै,मोहिपाहीं तथा हम पर उल्लेखनीय हैं । इसके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-

(क) 'मो पर' का प्रयोग-

मो पर कीबे तोहि ओ करि लेहि मियारे ।[2]

सुनि सुग्रीव साँचेहू मो पर फेरयो बदन विलाया ।[3]

(ख) मो पै' का प्रयोग-

लेन असीस सीय आगे करि मो पै सुत बधू न आई ।[4]

(ग) मोरे' का प्रयोग-

जौ तुम तजहु भजै न आन प्रभु यह प्रमानपन गोरे ।[5]

मध्यम पुरुषवाचक सर्वनाम :

कर्ताकारक के अन्तर्गत एकवचन में 'तैं, तू' (कहीं-कहीं तू का अनुनसिक रूप तूँ के आदरसूचक रूप आपके स्थान पर सर्वत्र आपु प्रयुक्त हुआहै । आपु का दूसरा रूप रावरे भी मिल जाताहै । कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं -

---

1- विनयपत्रिका- 35
2- वही- 33
3- गीतावली- 6,7
4- वही- 2,51
5- विनयपत्रिका -112

(क) 'तैं' का प्रयोग-

जे जे तैं निलज किये फूले फिरत पाए ।[1]

(ख) तू का प्रयोग-

तू दयालु दीन हौ तू दानि हौं भिखारी ।[2]

(ग) तू के अनुनासिक रूप तूँ का व्यवहार-

तूँ गरीब को निवाज हौं गरीब तेरो ।[3]

तो को मोसे अति घने मोको एकें तूँ। [4]

(घ) तुम का प्रयोग-

तुम सबके जीवन के जीवन सकल सुमंगलदाई ।[5]

निज घर की बरवात विलोकहु हौ तुम परम सयानी ।[6]

(ङ) तुम्ह का प्रयोग-

तुम्ह सुरतए रघुवंश के देत अभिमत माँगे ।[7]

(च) आपु का प्रयोग-

विनयपत्रिका दीन की बापु ! आपु ही बाँचवो ।[8]

देखिए आपु सुवन सेवा सुख मोहिं पितु को सुख दीजै।[9]

1- विनयपत्रिका- 80
2- वही- 79
3- वही- 78
4- वही- 150
5- गीतावली- 1,16
6- विनयपत्रिका- 5
7- गीतावली- 1,112
8- विनयपत्रिका 277
9- गीतावली- 3,14

(छ) 'रावरे' का प्रयोग-

पै तौलों जौलों रावरे न नेकु नयन फेरे[1]

कर्मकारक के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाले रूपों में तुमहि तोहि, तोहिं, तुम्हहि, तुम्हहि, तोकों, और तुम्ह कहुँ प्रधान रूप से तथा तू और तुम गौण स्रूप से उल्लेखनीय हैं । तू और तुम तो स्पष्टतः कर्ताकारक के रूप हैं जो केवल अर्थ की दृष्टि से कहीं-कहीं कर्म कारक में प्रयुक्त हो गये हैं । उक्त रूपों के उदाहरण प्रस्तुत हैं-

(क) तुमहि का प्रयोग-

तुमहि बिलोकि आन की ऐसी क्यौ कहिहै बननारी ।[2]

देखो देखो बन बन्यो आज उमाकंत

मनो देजन तुमहि आई ऋतु बसन्त ।[3]

तुम अति हित चितइहौ नाथ तन बार बार प्रभु तुमहिं चितैहै ।[4]

(ख) तोहि का प्रयोग-

तुलसिदास प्रभु सरन सबद सुनि अभय करैगें तोहि ।[5]

सुरतरूरू तर तोहि दारिद सताइ हैं ।[6]

(ग) तुम्हहि का प्रयोग-

तौ सों तुम्हहि पत्यात लोग सब सुसुकि सभीत साँचु सो रोये ।[7]

1- श्रीकृष्ण गीतावली- 6
2- विनयपत्रिका 14
3- गीतावली- 5,51
4- गीतावली-6,1
5- विनयपत्रिका -68
6- श्रीकृष्ण गीतावली -11
7- गीतावली-1,25

(घ) तोको का प्रयोग-

चवारि फल त्रिपुरारि तोको दिये करनृप घरनि ।[1]

कौन जाने कोरे तप कौने जोग जाग जय

कान्ह सा सुवन तोको महादेव दियो है ।[2]

(ड) कर्ताकारक रूप तू का कर्मकारक में व्यवहार-

मुँह लाये मूड़हि चढ़ी अंतहु अहिरिनि तू सूधी करि पाई।[3]

(च) कर्ताकारक तुम का कर्मकारक में प्रयोग-

जा कारन पठये तुम माधव सा सोचहु मन माही ।[4]

सम्प्रदान रूपों का निर्माण प्रायः कर्मकारक रूपों की पद्धति पर हुआहै । इनमें तोहि, तोही, तुम्हहि, ताकों, तुम्ह कौ, तथा तुम्ह कहुँ का उल्लेख किया जा सकता है। विशेष ध्यान देने योग्य रूपहै तुम्हहि लागि जो केवल इसी कारक में प्रयुक्त हुआहै । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है -

(क) तोहि का प्रयोग-

तुलसी तोहि विसेषि बुझिये एक प्रतीति प्रीति एकै बल ।[5]

(ख) तोको काप्रयोग-

तोको मोसे अति घने मोको एकै तूँ ।[6]

1- श्रीकृष्णगीतावली- 16

2- वही-8

3- वही-33

4- विनयपत्रिका- 24

5- वही-150

करणकारक के रूपों के अन्तर्गत तोसों, तोहिसों, तुम सों, तुम्ह सों, तुमतें, तुम्हतें, तुम्हसन, तथा तुम्ह पाहीं प्रधान रूपसे उल्लेखनीय हैं। आदरार्थ में प्रयुक्त होने वाले राबरे सों की चर्चा भी इसके साथ की जा सकती है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

(क) तोसों काप्रयोग-

तोसो हौ फिरि फिरि हित सत्य बचन कहत ।[1]

(ख) तुमसौ का प्रयोग-

रामचन्द्र रघुनायक तुम सो हौ विनती केहि भाँति करौ ।[2]

(ग) तुम्ह सौं का प्रयोग-

सहि देव्यों तुम सो कहयसो अब नाकहि
आई कौन दिनहु दिन छीजै ।[4]

(घ) तुम्ह तें काप्रयोग-

तुम्ह तें सुगम सब देव देखिवे को अब
नस हंस किये आमवत जुग पर को ।[5]

अपादान कारक के रूस्प में इतनी अस्प मात्रा में मिलत हैं कि रूप निर्माण की दृष्टि से इनका कोई विशेष महत्व नहीं है ।

सम्बन्ध कारक के अन्तर्गत बहुत अधिक संख्या में रूपां का मिलना स्वाभाविक ही है । इनमें निम्न लिखित रूप उल्लेखनीय है- तुअ, तुव, तोर, तोरा, तोरि,

---

1- विनयपत्रिका 133
2- वही-141
3- श्रीकृष्ण गीतावली- 7
4- गीतावली-1,67
5- विनयपत्रिका 94

तोरी, तोरी, तोरे, तोरें, तेरी, तेरे, तेरो, तिहारी, तिहारे, तिहारो, तुम्हार, तुम्हारा, तुम्हारि, तुमरि, तुम्हारी, तुम्हारे, तुम्हारो,तुम्हारी, तुम्हरे, तुम्हरें, तोहारा, तोहि, तथा तब। उक्त रूपों के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं -

(क) तुव जो कलिकाल प्रबल अति हो तो तुव निदेस तें न्यारो ।[1]

(ख) तोर- प्रनतपाल पन तोर मोर पन जिअउ कमल पद देखे ।[2]

(ग) तोरा- मम हृदय भवन प्रीु तोरा।[3]

(घ) तोरि- काम लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि।[4]

(ड) तोरे- मम समान पुन्यपुज बालक नहि तोरे ।[5]

(च) तेरी- तेरी महिमा तें चलै चिंचिवनी चियाँ रे ।[6]

(छ) तेरे-अबही तें ये सिखे कहा थौ चरित ललित सुत तरे ।[7]

तेरे स्वामी राम से स्वामिनी सिया रे ।[8]

(ज) तेरो- खायो खोंची माँगि मैं तेरो राम लियारे ।[9]

(झ) तिहारी-अब सब साँची कान्ह तिहारी ।[10]

1- विनयपत्रिका- 94
2- वही-113
3- विनयपत्रिका-125
4- वही-158
5- श्रीकृष्णगीतावली- 1.
6- विनयपत्रिका -33
7- विनयपत्रिका- 3
8- वही- 33
9- श्रीकृष्ण गीतावली-33
10- श्रीकृष्ण गीतावली- 6

(ञ) तिहारे- महरि तिहारे पाँव परौं अपनो बुज लीजै ।[1]

(ट) तिहारो- इहै जानि के तुलसी तिहारो जन भयो,

न्यसारो कै गनिबों जहाँ गने गरीब गुलाम- [2]

(ठ) तुम्हारा- चिंतायह मोहि अपारा। अपजस नहिं होय तुम्हारा ।[3]

(ड) तुम्हारि-तुलसिदास सीदति निसि दिन देखत तुम्हारि निठुराई ।[4]

(ढ) तुम्हारी-जद्यपि मृषा सत्य भासैजब लगि नहीं कृपा तुम्हारी ।[5]

(ण) तुम्हारे-जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ।[6]

(त) तुम्हारो-मसक विरंचिव विरंचि मसक सम करहु प्रभाव तुम्हारो ।[7]

(थ) तुम्हरे- नन्द विरोध कियो सुरपति सों सो तुम्हरो बलि पाई । [8]

(द) तोहि- बहुत नात रघुनाथ तोहि मोहि अब न तजे बनि आवै।[9]

(ध) तव- तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुन गन गाई ।[10]

मध्यसम पुरुषवाचक सर्वनाम के आदरार्थक रूप 'आपु' के सम्बन्धकारक रूपों में राउर, राउरि, रावरी, रावरे, रावरें तथा रावरो उल्लेखनीय है। कुछ उदाहरण देखिए-

---

1- विनयपत्रिका- 77
2- वही- 125
3- वही-112
4- वही-120
5- वही-101
6- वही- 94
7- श्रीकृष्ण गीतावली-18
8- विनयपत्रिका- 113
9- वही-41
10-गीतावली- 1,12

(क) रावरी- मेरे विसेषि गति रावरी तुलसी प्रसाद जाके सकल अमंगल

(ख) रावरे- मनहु मुनि बृंद रघुवंस मनिरावरे गुनत गुन आश्रममनि सपरिवारे[2]

राम रायँ विनु रावरे मेरे को हितु साँचो ।[3]

(ग)- बावरो रावरो नाह भवानी ।[4]

माध्यम पुरुष वाचक सर्वनामों के बलात्मक रूप प्रायः हि, हि, और इ, के संयोग से बनाए गये हैं जेसे-

(क) तेरेहि- तेरेहि सुझाए सूझै असुझ सुझाउ सो।[5]

(ख) तेरिही- नीको तुलसीदास को तेरिही निकाई ।[6]

(ग) तेरे ही- तेरे ही बुझाये बुझै अबझ बुझाउसो ।[7]

(घ) रावरेई- सकल विस्वकंदि सकल सुर सेवित ।

अगम निगम कहे रावरेई गुन ग्राम -[8]

अधिकरणकारक के रूप अपादान कारक के रूपों की भाँति ही बहुत अल्प मात्रा में व्यवहृत हुए हैं ।

1- गीतावली- 1,35
2- विनयपत्रिका- 277
3- वही- 5
4- वही- 182
5- वही-35
6- वही- 182
7- वही- 77

अन्य पुरुषवाचक, परवर्ती निश्चयवाचक अथवा नित्य सम्बन्धी सर्वनाम :

इन तीनों सर्वनामों की रूप रचना के सादृश्य के सम्बन्ध में पीछे निर्देश किया जा चुका है । अतः यहाँ पर पुनः उसके विवेचन में न पड़कर विभिन्न कारकों में व्यहृत उनके विविध रूपों के प्रयोग का क्रमशः सोदाहरण विश्लेषण किया जाता है।

कर्ता कारक में प्रमुखतः इसके रूप एकवचन के अन्तर्गत सो, तेइ, या तिहि, सोर, सोई, और 'वह' मिलते हैं । उक्त सभी रूपों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

(क) सोई- अंवरीष हित आगि कृपानिधि सोइ जनम्यो दस बार ।[1]

(ख) सोउ- सोउ साधु सभा भली भाँति मानियसत है ।[2]

कर्ताकारक में इससर्वनाम के जो बहुवचन रूप मिलते हैं वे हैं ते, ति, तिन्ह, उन,उन्ह और वै । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

(क) ते- जिन लगि निप परलोक बिगारयो ते लजात होत ठाढ़ ठाँय ।[3]

(ख) तिन- अपनाए सुग्रीव विभीषन,तिन न तज्यो छल छाउ ।[4]

कहीं-कहीं के लिये तिन्ह का प्रयोग मिलता है, यथा-

तिन्ह सब सोक रोग सब त्यागे ।

(ग) उन- रुचिर रूप आहार वस्य उन पावक लोह न जान्यो ।[6]

(घ) तेइ- तुलसी सुमिरि सुभाव सील सुकृती तेइ जे एहि रंग-रए ।[7]

1- विनय पत्रिका- 98
2- वही-183
3- वही- 83
4- वही- 100
5- वही-127
6- वही- 92
7- गीतावली- 1,43

(ड) तेऊ- भूरि भाग तुलसी तेऊ जे सुनिहै गाइहै वखानिहै ।[1]

(च) ओऊ- जद्यपि मीन पतंग हीनमति मोहिं नहिं पूजहिं ओऊ ।[2]

कर्मकारक के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाले रूप पर्याप्त संख्या में उपलब्ध होते हैं । इनमें सों,सौं, ताहि, ताही, तेहि,तेही,ओही, सोइ, सोई, सोऊ, एकवचन के अन्तर्गत तथा ते तिन्हहि तिनहही, तिन्है तिन्हकहैं, तिन्ह कहुँ, तिन्हहुँ को बहुवचन के अन्तर्गत उल्लेखनीय है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

(क) सो- बिनु सेवासों पालिए सेवक की नाई ।[3]

(ख) ताहिं- ताहि बाँधिबे को धाई ग्वालिनी गोर सहाई,
लै लै आई बाबरी दावरी घर घर तें ।[4]

(ग) तेहि- करतल ताल बजाई ग्वाल जुवतिन तेहि नावच नायायो [5]

(घ) सोइ- ऊधौ हैं बड़े कहै सोइ कीजै ।[6]

(ड) सोई- सुनहे पै सोई सोई जोई जेहि बई है ।[7]

(च) सोऊ- जाहि दीनता कहौ हौदीन देखौ सोऊ । [8]

(छ) ते- जेहि जोगते तेहि भाँति ते पहिराई परिपूरन किये ।[9]

1- गीतावली- 1,78
2- विनयपत्रिका -92
3- वही- 35
4- श्रीकृष्णगीतावली- 17
5- विनयपत्रिका-98
6- श्रीकृष्णगीतावली- 46
7- गीतावली-1,84
8- विनयपत्रिका-78
9- गीतावली- 1,5

(ज) तिन्हहि- मिलहि जोगी जरठ तिन्हहि दिखाउ निरगुन खाति [1]

(झ) तिनहु को- प्रेमलखि कृष्ण कियसे आपने तिनहु को ।[2]

सम्प्रदान कारक रूस्पों के अनतर्गत विशेष रूप से ताहि, ताही, ताको, ताकहें, तेहिलागि, तेहिलागि, ताहि,लागे, एक वचन में और तिन्ह कह औरतिन्ह कहु बहुबचन में उल्लेखनीय है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत है -

जो मन जासो बध्यसो ताको सुखादायसक सोई ।[3]

जो जोहि कला कुसल ता कह सोई सुलभ सदा सुखकारी ।[4]

जनि तेहि लागि विदूषहि केही ।[5]

करणकारक के रूस्पों में प्रमुखतः तेहि, तेहि,सन ,तथा ते, एकवन के अनतर्गत और तिन्हहि तथा तिन्ह तें बहुवचवन के अन्तर्गत उल्लेखानीयस है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है -

(क) तेन- तेन ताप्तं हुतं उत्तमेकाखिलं तेन सर्वकुतं कर्मजालं ।[6]

(ख) तिनहि- परम पुनीत संत कोमल चित तिनहि तुमहि बनआई ।[7]

(ग) तिन्हते- हरेउ न चवाप तिन्ह तें जिन्ह सुभटनि कौतुक कुशद उखारे ।[8]

1- श्रीकृष्ण गीतावल- 52
2- विनयपत्रिका - 106
3- विनयपत्रिका-11
4- वही- 167
5- वही-126
6- वही- 46
7- वही- 112
8- गीतावली- 1,66

अपादान कारक में प्रयुक्त रूस्पों की संख्या परिणाम और विविधता दोनों ही द्रष्टियों से कोई विशेषता नहीं रखाती । करण कारक से ही मिलते जुलते कुछ रूपों काव्यवहार मिल जाताहै । यथा-

ताहू ते- ताहू ते परम कठिन जान्यो ससि तज्यो पिता तब भमोव्योमचर ।[1]

सम्बन्धकारक के जिन रूपों का व्यवहार प्रचुरतासे मिलताहै उनमें एकवचवन के अन्तर्गत ताकी,ताके,ताकें, ताको, तासु, तासू, तेहि, ताकर, ताकिर, तेहिकै, तेहि केरी, और वाके और बहुवचन के अनतर्गत उन्हकी, उन्हकै,उन्हकर, तिन्ह की, तिनकी, न्हिकी, तिन्हके, तिन्ह कै, तिन्ह कर, तिन्ह केरी, तिी तिन्ह केरी, तथा तिन्ह केरे । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-

(क) ताकी- ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पवान की ।[2]

(ख) ताके- तुलसी फल ताके चवारयो मनि मरकत पंकजराग [3]

(ग) ताको- ताको लिए राम नाम सबको सुन्दर ढरत ।[4]

(घ) तासु- तुलसी तकु तासु सरन जाते सब लहत ।[5]

(ड) वाके- माके उए बरति अधिक अंग अंग दव

वाके उए मिटति रजनि जनित जरनि ।[6]

(च) उन्हकी- चातक जलद मीनहु ते भोरे समुझत नहि उनकी निठुराई ।[7]

1-श्रीकृष्णगीतावली-31

2- विनयपत्रिका- 30

3-गीतावली- 1,265

4- विनयपत्रिका- 134

5- वही- 133

6- श्रीकृष्ण गीतावली- 30

7- वही- 59

(छ) तिनकी- तिन की गति कासीपति कृपाल [1]

(ज) तिनके- तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे ।[2]

(झ) तिन्हकी- ने रघुवरी चरन चिन्तक तिनहकी गति प्रगट दिखाई।[3]

(ञ) तिनहके- ढिभ राम रूप अनुराग रंग रये हैं ।[4]

(ट) ताहूकेरो- तजे चरन अजहू न मिटत नित बहिकी ताहू केटो ।[5]

अधिकरण कारक के रूपों में ता पर तेहि पर औरतेहि माही एकवचवन के अन्तर्गत तथा तिन्ह पर तिन्ह मह और न्हि महूम बहुवचन के अन्तर्गत व्यवहृत हुएहै । कुछ उदाहरा द्रष्टव्य है ।

(क) तापर- ता परसानुकूल गिरिजा हर राम लषन अरू जानकी ।[6]

(ख) तेहिमाही- रवि कर नीर बसै अति दारून मकर रूप तेहि माही ।[7]

(ग) तिन्ह पर- कीरति कुसल भूति जय रिधि सिधि तिन्ह पर सबै कोहानी ।[8]

निकटवर्ती निश्चयवाचवक सर्वनाम :

कर्ताकारक के अनतर्गत एकवचन में इसके रूप यह, यहु, एहा, एहि, इहै, तथा बहुवचन एवं आदनार्थ में से अथवा ए, इन्ह,एड, इन्हहि औरइन्हही उल्लेखनीयहै ।

कुछ उदहारण प्रस्तुत है।

1- विनयपत्रिका- 13
2- वही, 101
3- गीतावली- 1,1
4- विनयपत्रिका-1,11
5- वही- 30
6-विनयपत्रिका- 87
7- वही-111
8- गीतावली- 1, 4

(क) यह- यह बडि तास दास तुलसी प्रभु नामहु पाप न जारो । [1]

(ख) इहै- इहै फाम फल परम बड़ाईग । [2]

(ग) ये- वरचिव नीर ये तबहि बुझावहि स्वास्थ निपुन अधिक चतुराई ।[3]

(घ) ए- कै ए सदा बसहु इन्ह नयमहि कै ए यसनन जाहु जित ए की ।[4]

(ङ) एउ- एउ देखिहै पिनाक नेकु जेहि नृपति लाल जवर जारे ।[5]

(च) इनहि- विस्वामित हतु पठये नुप इनहि ताछुका मारी ।[6]

(छ) इन्हही- इन्ही ताड़का मारी गौतम की तियसा तारी

भारी ाारी भूरि भट रन विचवालायसे हैं ।[7]

कमकारक के रूस्पों में प्रमुखतः यह एहि, यह, एही, सयाहि, एहि, कहँ, तथाइहै एकवचनके अनतर्गत और ये , ए, इन्हे, इन्हहि, इन्हहि इनको तथा इनको बहुवचन के अनतर्ग महत्वपूर्ण है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत है -

(क) यह- यह विचार तजि कुपथ सुसंगकति चलु संपंथ मिलि भलो साथ। [8]

(ख) पाहि- पाहि कहा मैया मुहलावति गनति कि एक लगरि झगराऊ ।[9]

(ग) इहै- इहै कहयसो सुत वेद चहू।[10]

1-विनयपत्रिका- 94
2- वही- 62
3- श्रीकृष्णगीतावली- 59
4- गीतावली-1,76
5- वही-1,66
6- वही-1,61
7- वही-1,72
8- विनयपत्रिका-84
9- श्रीकृष्ण गीतावली-12
10- विनयपत्रिका- 86

(थ) ये- ये अब लही चतुर चवेरी पै चोखी चवालि चवलाकी ।[1]

(ड) ए- ए जाने बिनु जनक जानियसत करि पन भूप हँकारे ।[2]

(च) इन्हे- मेरे जान इनहे बोलियसे कारन चतुर जनक ठयसो ठाठ इतौरी ।[3]

(छ) इनहहि- बिरचवति इन्हहि विरंचिव भुवन सब सुन्दरता खोजत रितए री ।[4]

(ज7 इनको- इनको बिलगुन मानिये बोलहि व निचवारी ।[5]

सम्प्रदान कारक के रूपों के अन्तर्गत पहि लागिर, एहि लागि, एहि कहँ, ए इन्ह कहँ, उल्खनीय हैं । कुछ उदाहरण प्रस्तुत है -

(क) यहि लागि- भगति ज्ञान वैराग्य सकल साधन यहि लाग उपई ।[6].

(ख) इन्ह के लिये- इन्ह के लिये खेलिबो छाइयो तउ न उबरन पावहि ।[7]

(ग) इनहही को- कल्पा कुल कीरति विजय विस्व की बटोरि,

कैयो करतार इन्हही को निरमई है । [8]

करणकारक रूस्प अपेक्षाकृत कम मात्रा में मिलते हैं ।

अपादान कारक के रूस्पों की संख्या करणकारक रूपों की भाँति बहुत कम है। इनके अनतर्गत एहि ते, उहिते, इनते, तथा इन्ह तें उल्लेखानीय है कुछ उदाहरणहै -

---

1- श्रीकृष्ण गीतावली- 43
2- गीतावली- 1,66
3- वही-1,74
4- वही- 176
5- विनयसपत्रिका-34
6- विनयपत्रिका-119
7- श्रीकृष्ण गीतावली- 4
8- गीतावली- 1, 84

इनते- गनिका कोल किरात आदि कवि इन2ते अधिक बाग को ।[1]

इन्हते- इन्हते लही है मानो धन दामिनि दुति मनसिज भटकत सोने ।[2]

सम्बन्ध कारक के रूस्प अन्य सर्वनाम रूपों की ीाति इससर्वनामके अनतर्गत भी अन्य कारकों की अपेखा अधिक संख्या में व्यहृत हुएहैं । हइनमें प्रमुातः एहि, यकाी, याके, याके, यसाको, उहिकै, और एहिका एक वचन के अन्तर्गत तथा इनकी , इनके, इनको, इन्हके, इन्हकै, बहुवचवन एवं आदरार्थ में उपलब्ध होते हैं ।कुछ उएदाहरण देखियसे ।

(क) याकी- सुनु मैया तेरी सों करौ याकी देवलरनिकी सकुच बेचि सी खाई ।[3]

(ख) याके- याके चरन सरोज कपट तजि जे भजि है मनबाई ।[4]

(ग) इनकी- बैठि इनकी पाति अब सुख चहत मन मतिहीन [5]

(घ) इनके- दुख दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानी ।[6]

(ड) इनको- जानि पुरजन त्रसे धीर दे लषन हँसे,

बल इनको पिनाक नीके नापे जोखे हैं । [7]

(च) इन्हके- इन्ह के विमल गुन गनत पुलकि तनु

सतानंद कौसिक नरेसहि सुनायसे हैं ।[8]

1- विनयपत्रिका- 99
2- गीतावली- 1,54
3- श्रीकृष्कणगीतावली- 1, 54
4- गीतावली-1,13
5- श्रीकृष्ण गीतावली- 55
6- विनयसपत्रिका 5
7- गीतावली- 1,93
8- गीतावली- 1,72

अधिकरण कारक के रूपों में सयामहि, एहि, मह, एहि, क्रा एकवचन के अन्तर्गत और इन महैं का बहुवचन के अन्तर्गत उल्लेख किया जा सकता है । कुछ उदाहरण देखिए -

(क) सयामहि- मेरे कहा थाकु गोरस को नवनिधि मंदिर यसा महि ।[1]

(ख) इनमहा- मद मत्सर अभिमान ज्ञान रिपु इन महैं रहनि अपारो ।[2]

प्रश्नवाचक सर्वनाम :

कर्ताकारक के अन्तर्गत अन्य सर्वनामों की अपेक्षा इस सर्वनाम के रूप्पों की संख्या कही अधिक है इनमें का, को, कौन, कवन, केह, केहि, तथा के विशेष रूप से उल्लेखनीय है । कुछ उदाहरण देखिऐ-

(क) का- केसव कहि नजाइ का कहये ।[3]

(ख) को5 और काहि मागिये को मागिबो रिवारे [4]

(ग) कौन- कौन सुनै अलि की चतुराई ।[5]

(घ) के- कहु के लहे फल रसाल बबुर बीज बपत। [6]

कर्मकारक रूप्पों में विशेषतः का, कहा, काह, काहा, काहि , काही, केहि, और कौन उल्लेखनीय है । यथा

(क) का- तो विनुजगदंब गंगा कलियसुग का करति ।[7]

(ख) कहा- कहा कहै केहि भाति सराहै नहि करतूति नई ।[8]

1-श्रीकृष्ण गीतावली- 5
2- विनयपत्रिका- 117
3- विनयपत्रिका- 11
4- वही -80
5- श्रीकृष्णगीतावली- 51
6- विनयपत्रिका- 130
7- वही-19
8- गीतावली- 1,57

(ग) केहि- बिनु कारन करूनाकर रघुवर केहि केहि मति न दई ।[1]

(घ) कौन- स्वारथहि प्रिय सवारथ कसो काते कौन वेद बखानई ।[2]

सम्प्रदान कारक के प्रमुख रूप केहि लगि, केहि हेतु और केहि हेतु हैं । करणकारक के रूस्प में सम्प्रदान कारक की ही भाँति बहुत अलप मात्रा में उपलब्ध होते हैं क्यों कि इन कारक रूपों के स्थान में प्रायसः ऐसे सर्वनाम मूलक क्रियाविशेषण प्रयुक्त हुएहैं जिनके अन्तर्गत करणकारक काअर्थ निहित रहताहै । इन रूपों में केहि, कासो, काते ताा कापह उल्लेखनीय है । यथा-

केहि- मैं केहि कहौ विपति अति भारी ।[3]

कासों- सहस सिला तें अति जसमति भई है,

कासो कहौ कोने गति पाहनहि दई है ।[4]

काते- स्वारथहि प्रिय स्वारथ सो काते कौन बडढे बखानई ।[5]

अपादानकारके के कोई निश्चित रूप इस सर्वनामेकं में नहीं उपलब्ध होते । उनके स्थानमें की सर्वत्रप्रासय3 सर्वनाममूल क्रियसाविशेषणों का ही व्यवहार हुआहै ।

सम्बन्धकारक के रूप भी इस सर्वनाम में अल्प सर्वनामों की अपेक्षा संख्या में कम है और जो रूस्प मिलते भी हैं उनके अनतर्गत के, का आदि परसर्गो की सहायता से बने हुएस्रूप बहुत अल्पमात्रा में ओ हैं इनमें विशेष रूप से कुछनिम्नाँकित हैं -

---

1- गीतावली- 1, 57
2- विनयपत्रिका- 135
3- वही- 125
4- वही- 181
5- विनयपत्रिका- 135

(क) काके- बूझत जनक नाथ ढोटा दोउ काके हैं ।[1]

(ख) काको5 तह तुलसी से कौन की काको तकियसा रे[2]

काको नाम पहित पावन जग केहि अति दीन पियारे ।[3]

अधिकरण कारक के रूपों में कोई विशेष निश्चित रूप नहीं मिलता ।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम :

कर्ताकारक के अन्तर्गत इसके जिन रूपों का प्रयोग प्रचवुरता के हुआहैउनमें एकवचन के अनतर्गत जो जोई, जेहि, औरजेहि ताा बहुवचवन एवं आररार्थ में जिन औरजिन्ह उल्लेखानीय है । यथा-

(क) जोइ- तुलसिदास महि जीवन मोह रजु नोई बाध्यो सोइ छोरै ।[4]

(ख) जहि- जेहि किये जीव निकाय बस रसहीन दिन दिन प्रति भई ।[5]

(ग) जिन- जिन बाधे सुर असुर नाग नर प्रबल करम की डोरी ।।6

(घ) जिन्ह- मथुराबड़ो नग नागर जह जिन्ह जाहि जदुनाथ पढ़ाये ।[7]

कर्मकारक के अन्तर्गत विशेष रूप से जो जाहि, जाही, जेहि, जेही,जोई, जा तथाजे और जिन्ह उल्लेखानीय है कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-

---

1- गीतावली- 1,62
2- विनयपत्रिका- 33
3- वही-101
4- वही- 102
5- वही-136
6- वही-98
7- श्रीकृष्ण गीतावली- 50

(क) जाही- काम भुअंग उसत जब जाही ।[1]

(ख) जोइ- कामतरू रामनाम जोइ जोइ मागिहै।

तुलसदिास स्वारथपरमारथ न खागिहै ।[2]

(ग) जे- तुसिलदासप्रीु कहौ ते बातें जे कहिं भजे सबरे ।[3]

सम्प्रदान कारक के रूस्पों की भी संख्या कम नही है। कछ प्रमुख रूप प्रस्तुत है-

(क) जाकहँ- जाकहँ सनकादि सीु नारदादि सुक मुनीन्द्र

करत विधि जोग काम क्रोध लोभ जारी ।[4]

(ख) जिन्हहि- सुनै तिन्ह की कौन तुलसी जिन्हहि जीति न झाहर ।[5]

(ग) जिन्ह कह- जिन्ह कह विधि सुगति व लिखी ाव ।[6]

(घ) जिन्ह लागि-जिन लग जिन परलोक विगारसयो तेलजात होत ठाठ ठाये ।[7]

करणकारक के अन्तर्गत जाहि, जेहि, जाते, जाहि, सन जेहि सन जेहि, ते, जाही, सो और जिन्ह तें विशेष रूस्प से ध्यसान देने योग्य है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है

(क) जाहि- जाहि दीनता कहौ हौ दीन देखा सोई।[8]

(ख) जेहि- फिरि गर्भगत आवर्त संसृति चक्र जेहि होई सोइ कियो।[9]

1- विनयपत्रिका- 127
2- वही-70
3- श्रीहकृष्णगीतावली- 3
4- गीतावली- 3
5- श्रीकृष्ण गीतावली- 53
6- विनयपत्रिका-13
7- वही- 83
8- विनयपत्रिका- 78
9- वही-136

(ग) जाते- जाते टूटै भवभेदज्ञान ।[1]

अपादानकारक के रूपों की संख्या अत्यन्त है । एक उदाहरण देखिए-

जाते- तुलसी तकु तासु सरन जाते सब लहत ।[2]

सम्बन्धकारक के रूपों के अनतर्गत तुलसी के काव्यस में जो प्रमुख रूप द्रष्टिगोचवर होतेहैं वे निम्नलिखित हैं-

(क) जासु- जासु भवन अनिमादिक दासी।[3]

(ख) जाकी- जाकी मायसा बसि विरंचिव सिव नाचत पार न पायो ।[4]

(ग) जाके- मूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै
जानै सोइ जाके उर कसककै करके सी ।[5]

(घ) जाकें- जाकें चवरन विरंचि से सिधि पाई संकर हू ।[6]

(ड) जाको- जाको नाम लिए छूटत भवजनम मरन दुख भार।[7]

(च) ज़ेहिके5 जेहि के भवन विमल चिंतामनि सा`कत काँचव बटोरे ।[8]

(छ) जिनके- जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नही निसानी ।[9]

(ज) जिन्हकी- तिन्की छठी मंजुलमठी जग सरस जिन्ह की सरसई ।[10]

1- वही- 64
2- वही-133
3- वही- 6
4- वही-98
5- गीतावली- 1,42
6- विनयपत्रिका- 86
7- वही-98
8- वही-116
9- वही-5
10- गीतावली- 1,5

(झ) जिन्हके- द्विभं रामू रूप अनुराग रंग रचे हैं । [1]

अधिकरण कारक के रूप बहुत कम मात्रा में उपलब्ध हैं ।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम :

कर्ताकारक के अन्तर्गत मुख्यस रूप से निम्नलिखित स्वरूप मिलते हैं -

(क) कोउ- कोउ कह सत्य झू कह कोउ जुगल प्रबल करि मानै ।[2]

(ख) कोई- जलज नयसन गुन अयसन मयन रिपु मीक्षा जान न कोई । [3]

(ग) कोऊ- दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ ।[4]

कर्मकारक के अन्तर्गत काहु, काहू, केही, औरकेहू रूप अत्यन्त अल्पमात्रा में मिलते हैं । सम्पदान कारक के अन्तर्गत काहू को रूप मिलताहै । यथा-

जग सुपिता,सुमातु, सुगुरू सुहित सुभीत

सबाको दाहिनो दीनबन्धु काहूम को न बाग [5]

सम्बन्धा कारक के रूप में निम्नलिखित रूप मिलते हैं -

काहू को- जो अन्याउ करहहि काहू को ते सिसु मोहि न भावहिं ।[6]

काहू केरो- मानत नाहि निगम अनुसासन त्रास न काहूम केरा ।[7]

अपादान और अधिकरण कारक के रूपों काप्रायः अभाव मिलताहै ।

1- गीतावली- 1,11
2- विनयपत्रिका- 111
3- वही- 9
4- वही- 78
5- विनयपत्रिका- 77
6- श्रीकृष्ण गीतावली- 4
7- विनयपत्रिका- 143

निजवाचक सर्वनाम :

कर्ताकारक के रूपों के अन्तर्गत निम्नलिखित रूप द्रष्टिगोचवर होताहै ।

(क) आप- आप पाप को नगर बसावत सहि न सकत पर खोरो ।[1]

(ख) आपु- करहि आपु सिर धरहि आन के बचन विरंचिव हरावहि ।[2]

कर्मकारक के रूपों का प्रयोग अत्पल्य हुआहै 5

सम्प्रदान में केवल आपु तथा करणकारक में आपतु ा प्रयोग हुआ है । अपादान कारक में भी आपते का ही व्यवहार हुआहै । यथ-

(क) सम्प्रदानकारक- महाराज लाज आपु ही निज जाँघ उघारे।[3]

(ख) करणकारक- खग सवरि निसिचर ालु कपि कियसे आपु ते बदते बड़े ।[4]

(ग) अपादान कारक- अधिक आपु तें आपनो सुनि मान सही लौं।[5]

सम्बन्धकारक के रूपों के अनतर्गत निम्नलिखित रूप मिलते हं -

(क) अपनी- तुलसी हित अपनो अपनी दिसि निरूपधि नेम निलाहै ।[6]

(ख) आपनी- करहि अनभले को भलो आपनी भलाई।[7]

ता पीछे यह सिद्धि आपनी जोग कथा विस्तारो। [8]

1- श्रीकृष्णगीतावली- 4
2- विनयपत्रिका- 147
3- वही- 135
4- वही-32
5- वही- 65
6- वही-35
7- श्रीकृष्ण गीतावली- 33
8- विनयपत्रिका- 2

(ग) अपने- सोइ गति मरन काहा अपने पुर देत सदा सिव सबहि समान।[1]

नृत्य करहि नर नदी नारि नर अपने अपने अपने रंग ।[2]

(घ) आपने- जौ गघ कॉच विलोकि सेन जड छाह आपने तनको ।[3]

तुम्हरि कहत आपने समुझत बात सही डर आनी ।[4]

(ड) अपनो- तुलसी हित अपनी अपनी दिसि निरूस्पधि नेम निबाहै।[5]

महरि तिहारे पाप पैरो अपनो ब्रज लीजलै ।[6]

(च) आपनो- अति अपमान विचारि आपनो कोपि सुरेस पठाये ।[7]

(ड) अपनियाँ-तुलसीदास प्रीु देखि मगन भई,

प्रेम विवस कहु सुधि नअपनियाँ [8]

अपनियाँ शब्द में इयाँ, का योग बहुत कुछ गीत की टेक पूर्ति के लिये हुआ है अधिकरणकारक के रूस्पों का व्यवहार कम हुआ है ।

1- गीतावली- 1,2
2- विनयपत्रिका- 90
3- श्रीकृष्ण गीतावली- 47
4- विनयपत्रिका- 137
5- वही-65
6- श्रीकृष्णगीतावली- 7
7- वही-18
8- गीतावली- 1,37

क्रिया:-

तुलसी की भाषा में अनेक बोलियों को रूपों का समावेश होने के कारण उसके अन्तर्गत प्रयुक्त क्रिया रूपों का स्वरूप भी अत्यन्त जटिल एवम् बहुमुखी हो गया है यहाँ हम धातुओं को निर्माण-कला,सहायक क्रिया,संयुक्त क्रिया तथा प्रेरणार्थक क्रिया के रूपों का विधान,क्रियाओं को काल रचना और वाच्य भेद इत्यादि कतिपय सामान्य विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए तुलसी की रचनाओं के अन्तर्गत उपलब्ध क्रिया रूपों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करेंगे ।

धातुओं के निर्माण के सम्बन्ध में तुलसी ने प्रर्याप्त स्वतंत्रता से काम लिया है । यद्यपि यह सत्य है कि उन्होंने प्रायः संस्कृत प्राकृत,अपभ्रंश भाषाओं में परम्परा से प्रयुक्त होने वाली धातुओं का ही मूल अथवा विकृति रूप में व्यवहार किया है तथापि अनेक स्थलों पर संज्ञा और विशेषण .आदि अन्य शब्द भेदों से तथा नादि के अनुकरण पर एक से एक नवीनक्रिया रूपों का गढ़सेना और उन्हें स्वाभाविक प्रवाह के साथ प्रयुक्त कर देना तुलसी की मौलिक प्रतिभा और सूझ के साथ ही उनकी शास्त्रीय प्रौढ़ता का परिचायक है । संक्षेप में हम इन धातुओं का वर्गीकरण निम्नलिखित छः रूपों में करसकते हैं ।

(क) वे धातुएं जो संस्कृत से ग्रहीत हैं और जिनमें केवल कुछ ही स्थलों पर नाम मात्र के लिए विकार आ गया है ।

(ख) वे धातुएं जो न्यूनाधिकांश में प्राकृत अथवा अपभ्रंश की धातुओं से ग्रहीत हैं ।

(ग) वे धातुएं जो ठेठ जनभाषा से प्रवाहित हैं ।

(घ) संस्कृत तत्सम संज्ञाओं अथवा तद्भव संज्ञाओं से बनी हुई धातुएं ।

(च) विशेषणों से भी क्रियाएं बनाई गई हैं,यद्यपि इनकी संख्या संज्ञामूलक क्रिया रूपों से कम है ।

(छ) क्रिया-विशेषणों तथा अन्य शब्दों से बनी हुई धातुओं का प्रयोग सामान्यतः नहीं मिलता परन्त नाद के अनुकरण पर बनी हुई धातुओं का एक भिन्न वर्ग माना जा सकता है ।

सहायक क्रिया :- धातु निर्माण के विषय में विचार करने के पश्चात जब हम तुलसी की भाषा में सहायक क्रियाओं के स्वरूप का विश्लेषण करते हैं तो हमारा ध्यान सर्वप्रथम इस बात पर जाता है कि आधुनिक हिन्दी की साहित्यिक बोली (खड़ी बोली में व्यवहृत सहायक क्रिया रूप 'होना' जिसके रूप विभिन्न अर्थों और कालों के अनुसार भिन्न होते हैं ,तुलसी में भी प्रायः इसी रूप में सुरक्षित हैं ।इतना संकेत कर देना आवश्यक होगा कि तुलसी की भाषा में अवधि और बृज का प्राधान्य होने के कारण उसमें सहायक क्रियाओं का विधान भी प्रायः इन्हीं बोलियों के अनुरूप हुआ है। प्रधानतः इसके दो रूप दृष्टिगोचर होते हैं :-

१) जहाँ पर सहायक क्रिया अपना स्वतंत्र अर्थ रखती है ।

२) जहाँ पर किसी अन्य क्रिया रूप की सहायक मात्र होकर आती है ।

ागे कुछ प्रमुख सहायक क्रियाओं में उपलब्ध विशेषताओं का संक्षिप्त निर्देश किया जा रहा है :-

वर्तमान निश्चयार्थ के अन्तर्गत अन्य पुरूष एक बचन के लिए प्रधानतया है,इह,आहइ,अहे,आही और अहहिं का व्यवहार हुआ है । हैं, और 'आहइ' से मिलते जुलते अन्य रूपों की विभिन्नता,उच्चारणभेद तथा अनुलेखन पद्धति के भेद के परिणामस्वरूप जाननी चाहिए । इस काल में अन्य पुरूष बहुबचन के अन्तर्गत हहिं,होहिं तथा हैं का व्यवहार उल्लेखनीय है ।

दै विद्या लै गये जनकपुर है गुरू संग सुखारी ।।

मध्यम पुरूष के अन्तर्गत हसि,अहसि और अहहू का प्रयोग उल्लेखनीय है । उत्तर पुरूष के अन्तर्गत अहऊँ,अहउँ और हौं का प्रयोग मिलता है । भूत निश्चयार्थ के रूप तुलसी की भाषा में बहुत अल्प मात्रा में प्रयुक्त हुए है । इनमें रहा,रहे,रही,भा,भो,भौ,भइ,भई,के,भै,भईं,भईं आदि रूपों का व्यवहार हुआ है । पत्र-तत्र हुत, और हुतों का प्रयोग भी मिल जाता है । परन्तु इससे व्यापक प्रयोगों के अन्तर्गत नहीं गिना जा सकता । कुछ उदाहरण प्रस्तुत है :-

भो[2] एतो बड़ो अपराध भो न मन बावौं ।[2]

गावत नाचत भो मन भावत सुख सो अवध अधिकानी ।[3]

भौ- खाये बोले खौलें असि चमकत चोखे हैं ।[4]

भई- हरिपद पंकज पाइ अचल भइ कर्म वचन मन हूँ ।[5]

भे- स्वारथ रहित परमारथी कहावत हैं ।

भे सनेह विवस विदेहता बिबाके हैं ।[6]

भये- भये विदेह बिदेह नेह वस देह दसा बिसराये ।[7]

भईं- उमा रमादिक सुरतिय सुनि प्रभुदित भईं ।[8]

हुते- सीवँन चापि सको कोऊ तब जब हुते राम कन्हाई ।[9]

हुतो- हुतो न साँचो सनेह मिट्यो मन को संदेह हरि

परे उधरि संदेशहु ठठई ।[10]

---

1. गीतावली - 1,100, 2. विनय पत्रिका -72. 3. गीतावली - 1,4 4. वही - 1,93
5. विनय पत्रिका -86 6. गीतावली -1,62 7. वही - 1,63 8. श्री कृष्ण गीतावली -32
9. गीतावली-1,4 10. श्री कृष्ण गीतावली - 36.

व्युत्पत्ति:- भा तथा भा से मिलते जुलते उक्त सभी रूपों की व्युत्पप्ति संस्कृत भू से स्पष्ट है,जसे संस्कृत भक्ति,(भूत) प्रा0 भविओ भा/भइ और भे, इसी के विकारी रूप हैं। हुते और हुतों का सम्बन्ध सं0/ भू के भूतकालिक कृदन्त रूप 'भूत ' से है ।

संयुक्त क्रियाएं:- धातुओं के कुछ विशेष कृदन्तों के साथ किसी विशेष अर्थ में कुछ विशेष क्रियाओं के संयोग से जो मिश्रित क्रिया रूप बनते हैं उन्हीं को संयुक्त क्रियाओं की संज्ञा दी गई है । अर्थ की दृष्टि से इनमें सहकारी क्रिया के काल का रूप गौण तथा कृदन्त का रूप प्रधान रहता है । तुलसी की रचनाओं में उपलब्ध संयुक्त क्रियाएं प्राय: क्रियार्थक संज्ञा,पूर्वकालिक,वर्तमानकालिक,भूतकालिक, तथा अपूर्व क्रियाद्योतक कृदन्तों के सहारे बनाई गई हैं । इनका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जा रहा है -

(क) क्रियार्थक संज्ञा के मेल से बनी हुई संयुक्त क्रियाएं - जैसे निम्नांकित पंक्तियों में प्रयुक्त जाना चहहिं,रूँध्यो चहैं,दिबोई भावे,देखिए चहतु हैं, खेलिबो छाँड़ियौ, जाँचन,जाहीं,गयो चहहि, कही चाहौं और दीजे रहनि परयो आदि -

(क) तुलसी दति रूँध्यों चहैं सठ सखि सिहोरे ।[1]
(ख) दीन दयाल दिबोई भावे जाचक सदा सोहाहीं ।2
(ग) इन्ह के लिए खेलिबो ठाँड़यो तऊ न उबरनि पावहिं ।3
(घ) ईस उदार रमापति परिहरि उनत जे जाचन जाहीं ।4
(ड़) जौं बिन जोग जज्ञ व्रत संगम गयो चहहि भव पारहिं ।5
(च) कही चाहों बात मातु अंत तो हों लरिर्क ।6
(छ) तुलसिदास निज भवन द्वार प्रभु दीजे रहन पर्‌यो ।7

(ख) पूर्व कालिक कृदन्त के योग से बनी हुई संयुक्त क्रियाएं जैसे-बोलि जै आए,गालिखि,लै आयऊ,कहौं समझाई,परे कही, चलि गयऊ, पूजि आई आदि । यथा - कुंचित कच सिर मुकुट भाल पर तिलक कहौं समुझाई ।8,ताकी पेज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की ।9

(ग) वर्तमान कालिक कृदन्त के योग से बने हुए रूपों का अनुमान निम्नांकित पंक्तियों में प्रयुक्त कहत बनइ,गवनत भयऊ,बोलत भई,फिरत पाए,बिहँसति आई, चली गॉवतीं से किया जा सकता है-

मूरति कृपालु मंज,माल दे बोलत भई
पूजो मन कामना भवतो बरूबरि के ।[10]
जे जे तैं निहाल किए फूले फिरत पाए ।[11]

---

1. विनय पत्रिका - 8 2. वही ' 4,3. श्री कृष्ण गीतावली-4,4. विनय पत्रिका-4,5. वही-85
6. गीवावली-1,70, 7. विनय पत्रिका -91, 8. वही -62, 9. वही-30, 10. गीवावली-1,70,
11. विनय पत्रिका - 83

(ग) ऐहैं का योग - लेहैं लोचन लाहु सफल लखि ललित मनोहर बेली ।1

(घ) ' हिंगे ' का योग - मेरे बालक केसे थों मग निबहहिगे ।2

मध्यम पुरूष के रूप में :-

इनमा निर्माण जिन विभिन्न प्रत्ययों के सहारे हुआ है उनका निर्देश किया जा रहा है

मध्यम पुरूष एकवचन के रूप में :-

(क) मूल धातु अथवा उसके विकारी रूप के साथ व,बा अथवा बो का योग -

जब सोइबो तात यों हों कहि

नयन मीचि रहे पौढ़ि कन्हाई ।3

(ख) 'ओंगी' प्रत्यय का योग- रहोगी कहोगी तब साँची कही अंबा सिय

गहे पाँव द्वै उठाय माथे हाथ धरिके ।4

मध्यम पुरूष बहुबचन के रूप में :-

इहो का प्रयोग - छगन मगन अँगना खेलिहो मिलि ठुमुक ठुमुक कब हैहौं ।5

उत्तम पुरूष एक बचन के रूप में :-

इहों का योग - सुख नींद कहति आलि आइहों ।6

ऐहों का योग - अब लौं नसानी अब न नसेहौं ।7

'ब' का योग - जानत अर्थ अनर्थ रूप तम कूप पख महिलागे ।8

ऊँगौ तथा ओंगो का योग - महाराज राम पहँ जाउँगो ।9

कबहुँक हों महि रहति रहोंगो ।10

उत्तम पुरूष बहुबचन का प्रयोग बहुत कम हुआ है ।

संभाव्य भविष्यकाल :- इस काल के रूप निर्माण की दृष्टि से वर्तमानकालिक रूपों से बहुत कुछ साम्य रख हें,परन्तु अर्थ की दृष्टि से पर्याप्त भिन्नता होने के कारण इनका अपना अलग महत्व है इनका संक्षिप्त निर्देश किया जा रहा है :-

---

1. गीतावली - 1,8 2. गीतावली - 1,99 3. श्री कृष्णगीतावली - 13, 4. गीतावली - 1,70, 5. गीतावली - 1,8 6. वही - 1,8 7. विनय पत्रिका - 105, 8. वही - 110, 9. गीतावली 10. विनय पत्रिका - 172

अन्य पुरूष एक वचन के रूप :-

' उ ' का योग - एक कहैं कहु होउ सुफल भये ज़ीवन जन्म हमारे ।[1]

' ए ' का योग - जो चित चढ़े नाम महिमा जिन गुनगन पावन पन के ।[2]

' हु ' का योग - कोउ भल कहहु देउ कछु कोऊ ।[3]

अन्य पुरूष बहुवचन के रूप :-

' हु ' का योग - के ए सदा बसहु इन नयनन्हि
कै ए नयन जाहु जित एरी ।[4]

मध्यम पुरूष के रूप :-

' हु' का योग - तुलसिदास प्रभु पथा चाढ़यो जो लेहु निबहि ।[5]

'य ' का योग- तौलों तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपि है ।[6]

उत्तम पुरूष एक बचन के रूप :-

' ओं का योग - सोइ सुख अवध उमगि रह्यो दस दिसि कोन जतन कहों गाई ।[7]

उत्तम पुरूष बहुबचन के रूप :-

यह रूप तुलसी के काव्य में बहुत कम मिलता है ।

परोक्ष विधि काल :- इस काल के रूपों का निर्माण मूल धातु अथवा उसके विकारी रूप के साथ एसि,एसु, एहू,यहु,ब,बी,वि,इबे,और इबो के योग से मध्यम पुरूष में तथा 'हु' ऐं और ओ के योग से अन्य पुरूष में हुआ हे । इस काल में मध्यमपुरूष के रूप ही प्रधान रखते हैं । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हें -

'इबी का योग- बूझिहें सो हे कौन कहिबी नाम दसा जनाइ ।[8]

'इबे' का योग - तुलसी तब के से अजहूँ जानिबे रघुवर नगर बसैया ।[9]

इबो का योग - के गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम ।[10]

हु का योग - असही दुसही मरहु मनहिं मन बैरिन बढ़हु विषाद ।[11]

ऐ का योग - ज्यों-ज्यों तुलसी कृपालु चरन सरन पावे ।[12]

प्रत्यक्ष विधिकाल:- **इस काल** के रूप भी केवल अन्य पुरूष और मध्यम पुरूष में मिलते हें और इनमें की प्रधानतया मध्यमपुरूष के रूपों की है । इसके दो प्रकार के रूप मिलते है- सामान्य रूप और आदर सूचक रूप । सामान्य रूपों का निर्माण निम्नांकित नियमों के अनुसार हुआ

---

1. विनय पत्रिका - 1,72 2. गीतावली - 1,66 3. विनय पत्रिका - 96 4. वही - 119
[illegible] 6. वही - 68 7. गीतावली - 1.1 8. विनय पत्रिका -41 9. गीतावली-

अन्य पुरूष एक वचन के रूप :-

'उ' का योग - एक कहें कहु होउ सुफल भये जीवन जन्म हमारे ।[1]

'ए' का योग - जो चित चढ़े नाम महिमा जिन गुनगन पावन पन के । [2]

'हु' का योग - कोउ भल कहहु देउ कछु कोऊ ।[3]

अन्य पुरूष बहुवचन के रूप :-

'हु' का योग - के ए सदा बसहु इन नयनन्हि
कै ए नयन जाहु जित एरी ।[4]

मध्यम पुरूष के रूप :-

'हु' का योग -तुलसिदास प्रभु पथा चाढ़यो जो लेहु निबहि ।[5]

'य' का योग- तौलों तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपि है ।[6]

उत्तम पुरूष एक बचन के रूप :-

'ओं' का योग - सोइ सुख अवध उमगि रह्यो दस दिसि कौन जतन कहों गाई ।[7]

उत्तम पुरूष बहुबचन के रूप :-

यह रूप तुलसी के काव्य में बहुत कम मिलता है ।

परोक्ष विधि काल :- इस काल के रूपों का निर्माण मूल धातु अथवा उसके विकारी रूप के साथ एसि,एसु, एहू,यहु,ब,बी,वि,इबे,ओर इबो के योग से मध्यम पुरूष में तथा 'हु' ऐं ओर ओ के योग से अन्य पुरूष में हुआ हे । इस काल में मध्यमपुरूष के रूप ही प्रधान रखते हैं । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हें -

'इबी' का योग- बूझिहें सो हे कौन कहिबी नाम दसा जनाइ ।[8]

'इबे' का योग - तुलसी तब के से अजहूँ जानिबे रघुवर नगर बसैया । [9]

इबो का योग - के गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम ।[10]

हु का योग - असही दुसही मरहु मनहिं मन बैरिन बढ़हु विषाद ।[11]

ऐ का योग - ज्यों-ज्यों तुलसी कृपालु चरन सरन पावे । [12]

प्रत्यक्ष विधिकाल:- **इस काल** के रूप भी केवल अन्य पुरूष और मध्यम पुरूष में मिलते हें और इनमें की प्रधानतया मध्यमपुरूष के रूपों की है । इसके दो प्रकार के रूप मिलते है- सामान्य रूप ओर आदर सूचक रूप । सामान्य रूपों का निर्माण निम्नांकित नियमों के अनुसार हुआ

---

1. विनय पत्रिका - 1,72 2. गीतावली - 1,66 3.विनय पत्रिका - 96 4.वही - 119
5. वही - 108 6. वही - 68 7. गीतावली - 1,1 8. विनय पत्रिका -41 9.गीतावली-
[illegible] 77 11. गीतावली - 12 12. विनय पत्रिका - 79.

एक वचनरूप :-

(क) मूल धातु के अंतिम अक्षर को उकारान्त अथवा ऊकारान्त करके । यथा -

जागु जागु जीव जड़ जो है जग जमिनी ।[1]

(ख) मूल धातु के अंतिम अक्षर को इकारान्त करके -

एकहि साधन सब रिधि सिधि रे । [2]

(ग) मूल धातु के साथ 'ए' का योग - जागु जागु जीव जड़ जो है जग जामिनी ।3

(घ) 'ओ' का योग - देखो देखो बन बन्यो उमाकांत । [4]

(ङ) ओ का योग - नेकु सुमुखि चित साइ चितौरी ।5

(च) हु का योग - निज घर की बरबात बिलोकहु हो तुम परम सघानी । [6]

बहुबचन रूप:-

'हू' के योग से बना रूप -

चरन बंदि बिनवौं सब काहू । देहु राम पद नेह निबाहू ।[7]

आदर सूचक रूपों का निर्माण इन नियमों के आधार पर हुआ है -

मूल धातु के साथ ' इय ' का योग - जगिय राम छठी सजनी रजनी रूचिर निहारि । [8]

मूल धातु के साथ 'इए' का योग - यह अधिकार सौंपिये औरहिं भीख भली हें जानी [9]

तुलसी की भाषा में प्राप्त किया रूपों की काल रचना के विश्लेषण से हमें उनकी दो प्रमुख विशिष्ट प्रवृत्तियों का पता चलता है जो भाषा विज्ञान एवं व्याकरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है -

(1) विभिन्न कालों में प्रयुक्त क्रिया रूपों की संयोगात्मकता जो संस्कृत और प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओं में वर्तमान थी, परन्तु जो आधुनिक साहित्यिक हिन्दी में लुप्त प्राय: हो गयी ।

(2) एक ही प्रकार के प्रत्ययों के योग से बने हुए रूपों को अविकृत रूप में ही विभिन्न कालो में प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति, जो प्रयोग की दृष्टि से तो उपयोगिता एवं व्यापकता की द्योतक है किन्तु जो प्रयोग की दृष्टि से जटिलता एवं अस्पष्टता की उत्पादक हो गयी है । बात यह है कि एक ही प्रकार के अनेक रूप विभिन्न कालों में परस्पर इतने घुल मिल गये हैं कि उनकी पृथक सत्ता खोज लेना कठिन हो जाता है ।

---

1. विनय पत्रिका - 73, 2. वही - 66, 3. वही - 73 4 वही - 14 5. गीतावली 1,75 . 6. विनय पत्रिका - 5 7. वही - 36, 8. गीतावली - 1,5 9. विनय पत्रिका - 9

(घ) भूत कालिक कृदन्तों के योग से बनी हुई संयुक्त क्रियाओं के रूप अपेक्षाकृत कम मात्रा में मिलते है ।

(च) अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्तों के योग से बने हुए इन रूपों का व्यवहार भी कम मिलता है । इन क्रियाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वही बातें लागू समझनी चाहिए जो कृदन्तों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में लागू होती है ।

प्रेरणार्थक क्रिया :- हिन्दी में सामान्यरूप से प्रेरणार्थक क्रिया रूपों का निर्माण मूल धातु में 'आ' और 'ब' प्रत्पयों के योग से होता है । अकर्मक धातुओं मे आ लगाने से धातु सकर्मक हो जाती है अतः ऐसी धातुओं के प्रेरणार्थक रूप 'ब' लगाकर बनाये जाते हैं जैस- करना से कराना और करवाना,तथा जलना से जलाना और जलवाना । तुलसी की भाषा में भी बहुद्या इन्हीं नियमों का अनुसरण किया गया हैं । इतना अवश्य है कि काल रचना की विविध रूपता के कारण इनके कई रूपान्तर उपलब्ध होते हैं । संक्षेप में तुलसी की शब्दावली में उपलब्ध प्रेरणार्थक क्रियाओं का विश्लेषण निम्नांकित वर्गों में रखकर किया जा सकता है :-

(क) मूल धातु के प्रथम अकारान्त अक्षर को दीर्घ स्तरान्त करके बनाये हुए रूप । उदाहरणार्थ तरना से तारना और सजना से साजना। एक उदाहरण दृष्टव्य है -

तो तुलसिहिं तारिहौ बिप्र ज्यौं दसन तोरि जगमगन के ।[1]

(ख) मूल धातु के प्रथम अक्षर के अन्त में उच्चरित होने वाले 'इ' को 'ए' में रूपान्तरित करके बनाए हुए मेटब जैसे रूपों का भी प्रयोग हुआ है जिसे प्रेरणार्थक रूप देने में मिट का मेट हो गया ।

(ग) मूल धातु के प्रथम अक्षर के अन्त में आने वाले 'ऊ' को 'ओ' में परिवर्तित करके बनाए हुए रूप । जैसे सोपहिं और बारहिं ।

(घ) मूल धातु का प्रथम अक्षर यदि आकारान्त हो तो उसे अकारान्त करके तथा धातु के अंत में आने अक्षर को अकारान्त से आकारान्त करके बनाये हुए रूप जैसे- 'नचायो' शब्द जो 'नाच' धातु से बना है ।

(च) मूल धातु के अन्त में आने वाले अक्षर को आकारान्त करने के पूर्व ही उस धातु के प्रथम अक्षर को ईकारान्त से इकारान्त करके बनाये गये रूप जैसः- 'सिखाए'और जितावहि शब्द जो सीख और जीत धातुओं से बने हैं ।

(छ) मूल धातु के अन्त में 'वा' का योग करके बनाये हुए रूप । यथा- 'करवावा' जो 'कर' धातु से बनाया गया है ।

1- विनय पत्रिका-96

इन सब रूपों का निर्माण प्रायः परम्परा के अनुकूल ही हुआ है । अतः इनमें हमें उतनी नवीनता एवम् मौलिकता नहीं दृष्टिगोचर होती जितनी उन प्रेरणार्थक रूपों में जिनका निर्माण तुलसी ने मूल धातु के साथ 'श' अथवा 'आश' प्रत्यय का योग करके किया है । जैसे- देखरावा और बैठारो -

खग-गनिका - गज व्याध-पाँति जहँ तहँ हौं हूँ बेठारो ।[1]

आधुनिक खड़ी बोली के दिखलाना,बैठालना आदि प्रेरणार्थक क्रिया रूपों से उक्त रूपों का साम्य विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है । प्रायः इन सभी रूपों की संस्कृति के 'णिव' प्रत्यय के योग से बनने वाले प्रेरणार्थक रूपों से है ।

काल रचना :- विभिन्न कालों की विशेषताओं का निर्दिष्ट विभाजन जैसा आज कल की खड़ी बोली के व्याकरण में सम्भव हो सका है वैसा तुलसी की क्रियाओं के सम्बन्ध में असम्भव है । विभिन्न प्रत्यों के योग से क्रियारूपों को विधान इतनी विशाल संख्या में मिलता है कि उनकी काल रचना का रूप स्थिर करने में प्रर्याप्त कठिनाई उपस्थित हो जाती है । तथापि विश्लेषण की सुविधा के लिए हम निम्नलिखित कालों का आधार ग्रहण कर सकते हैं क्योंकि इन्हीं का व्यवहार तुलसी की शब्दावली में मिलता है - सामान्य वर्तमान,संभाव्य वर्तमान, सामान्य भूत, आसन्न भूत, पूर्ण भूत, अपूर्ण भूत, संदिग्ध भूत, हेतु हेतु मदभूत, सामान्य भविष्य, संभाव्य भविष्य , प्रत्यक्ष विधि और परोक्ष विधि ।

सामान्य वर्तमानः- के रूप अन्य पुरूष के अन्तर्गत प्रायः मूल धातु में इ, ई, ऐ, और 'त' प्रत्ययों के योग से एक वचन में और हिं,हीं,तथा ऐ के योग से बहुवचन बनाये गये हैं । लिंग भेद अधिक नहीं मिलता । केवल 'त' प्रत्यय का स्त्रीलिंग में ति' और 'ती' हो जाता है । अन्य सारे रूप सामान्यतः दोना लिंगों में आते हैं । हिं,हीं, और ए प्रत्ययों का योग कहीं आदरार्थ एकवचन रूपों के साथ भी हुआ है । कहीं -कहीं केवल मूल धातु ही प्रयुक्त हो गयी है कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

एकवचन रूप- (क) 'इ' का योग - तुलसी जागें तें जाइ ताप तिहूँ ताय रे ।[2]

(ख) छंद सुविधार्थ 'इ' के स्थान में 'ई' बन्द का योग -

---

1. विनय पत्रिका - 94 , 2. विनय पत्रिका - 73

अपूर्ण भूतकाल के रूप तुलसी के काव्य में बहुत कम मिलते हैं । यथा-

चाटत रहेउँ स्वान पातरि ज्यों कबहूँ न पेट भर्यो ।[1]

संदिग्ध भूतकाल के रूप भी तुलसी के काव्य में बहुत कम मिलते हैं । हेतु-हेतु मद्‌भूत काल के रूपों का प्रयोग तुलसी के काव्य में बहुत अधिक हुआ है कुछ उदाहरण प्रस्तुत है-

ते का योग- जौ पै हरि जन के अवगुज कहते ।2

तो का योग - न तरू प्रभू प्रताप उतरू चढ़ाइ चाप,

देतो पै देखाइ बल फल पापमई है ।3

सामान्य भविष्य काल:-

इस काल के रूप तुलसी की शब्दावली के अन्तर्गत विविध रूपता और प्रयोग बाहुल्य की दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं इस काल के रूपों का निर्माण जिन विविध प्रत्यों के योग से हुआ है उनका संक्षिप्त निर्देश प्रस्तुत है ।

अन्य पुरूष एकबचन के रूप में:-

(क) मूल धातु के साथ 'इहि' के योग से बने रूप -

सुर नर मुनि कर अभय दनुज

हति हरिहि धरनि गरू आई ।4

(ख) 'ईहै' का योग - ताकि है तमकि ताकी ओर को ।[5]

(ग) ' इहे' का योग आदरार्थ कर्ता रूप का द्योतक हे जैसे -

सानुज गज समाज बिरजि हैं राम पिनाक चढ़ाइ कै ।[6]

(घ) ' एहें' का योग - हवेहे विष भोजन जो सुधा सानि खायगो ।[7]

(ड़) आदरार्थ हिंगे का योग - राम अहेरे चलहिंगे जब गज रथ बाजि सँवारि ।[8]

(च) ' इगी' का योग - तुलसी त्यों-त्यों होइबी गरूई ज्यों-ज्यों कामरि भीजे ।[9]

(छ) ' एगो ' प्रत्यय का योग - तुलसी परमेश्वर न सहैगो हम अवलनि सब सही है ।[10]

अन्य पुरूष बहुबचन के रूप में -

(क) ' इहें का योग - जुगुति चूमि बघारिबे की समुझि हें न गँवरि ।[11]

(ख) ' इहिं ' क ायोग - उबओ न्हाहु गुहों चोटिया बलि,

देखि ालो बर करिहिं बड़ाइ ।[12]

---

1. विनाय पत्रािका - 226, वही - 97, 3. गीताावली - 1,83, 4.वही-1,13
5.विनय पत्रिका - 31, 6. गीतावली - 1,68,7.विनय पत्रिका -68, 8. गीतावली - 1,19 9. श्रीकृष्ण गीतावी - 8. 10. वही -42, 11. वही - 53, 12. वही- 13

स्वारथहिं प्रिय स्वारथ सो काते कौन बेढ़ बखानई ।1

(ग) 'त' का योग - मॉंगत तुलसीदास कर जोरे ।2

(घ) छन्द पूर्ति की सुविधा के लिए 'ति' का 'ती' भी हो गया है -

जानकीस की कृपा जगावती सुजान जीव

जागि त्यागी मूढ़तानुराग श्री रहे ।3

(ङ) 'हिं' को ही छन्द सुविधार्थ कही-कहीं 'हीं' कर दिया गया है । यथा-

देखि खिलौना किलकहीं पद पानि बिलोचन लोल ।4

(च) 'ऐं' का योग - कहैं गाधिनंदन मुदित रघुनंदन सों,

नृप गति अगह गिरा न जाति गही है ।5

रोटी सूगा नीके राखैं आगे हू को वेद भाषैं,

भलो ह्वै हैं तेरो, ताते आनंद लहत हौं ।6

(छ) केवल मूल धातु का सामान्य वर्तमान कालिक रूपों में प्रयोग । जैसे- सूझ,जान,और सोह ।

एकवचन रूपों के पश्चात, बहुवचन रूपों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं जिनमें लगभग उन्हीं सारे प्रत्ययों का उपयोग किया गया है जिनका उपर्युक्त एकवचन रूपों में व्यवहार हुआ है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

हिं का योग - अष्ट सिद्धि नव निद्ध भूति सब भपति भवन कमाहिं ।7

ऐं का योग - तुलसी गलिन भीर दरसन लगि लोग टिनि अवरोहें ।8

'त' का योग- त्रिभुवन तिहूँ काल बिदित बदत बेद चारी ।9

मुनि किन्नर गंधर्व सराहत बिथके हैं बिबुध बिमान ।10

केवल मूल धातु अथवा उसके 'उ' से युक्त रूप का व्यवहार -

करि मुनि मनुज सुरासुर सेवा ।11

सामान्य वर्तमान काल के रूप मध्यम पुरूष के अन्तर्गत दोनों लिंगों में एकबचन में मूलधातु के साथ सि,सी,हि,ही,हु,हू,'त' और 'औ' के योग से तथा बहुबचन में प्रायः हु और 'हू' के योग से बनाये गये हैं । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

---

1. वही-135, 2. वही - 1, 3. वही -74, 4. गीतावली -1,19, 5.गीतावली-1,85, 6. विनय-पत्रिका -76, 7. गीतावली - 1,2, 8. वही - 1,76, 9. विनय पत्रिका-78, 10. गीतावली - 1,2
11. विनय पत्रिका - 2

(क) 'सि' का योग - ईस सीस बससि त्रिपथ लससि नभ पताल धरनि ।[1]

(ख) 'त' का योग - रूचरि रसना तू राम राम क्यों न रटत ।[2]

तुम्ह सुर तरू रघुवंश के दते अभिमत माँगे ।[3]

(ग) 'औं' का योग - खौंटो खरो रावरो हौं रावरी सौं रावरे सों

झूठ क्यों कहौं गोर जानौ सब ही के मन की ।[4]

सामान्य वर्तमान काल में उत्तर पुरूष के रूप एकबचन के अन्तर्गत मूल धातु के साथ उँ,ऊँ, औं,'त' औरति' के योग से तथा आदरार्थ एवं बहुबचन में हिं अथवा हीं के योग से बनाये गये हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

(क) उँ का योग - करूनामय उदार कीरति बलि जाउँ हरहू निज माया ।[5]

(ख) औं का योग - गोरस हानि सहौं न कहौं कछु महि बृजवास बसेरे ।[6]

(ब) 'त' का योग - हौं समुझत साई-द्रोहि की गति छार-छिपा रे ।[7]

तो सो हौं फिर-फिर हित सत्य बचन कहत ।[8]

(घ) ति का योग- तुम सकुचत कतर हौं ही नीके जानति

नद नंदन हो निपट करी सठई ।[9]

(च) हि के योग से बना हुआ आदराथ रूप -

इन्ह के लिए खेलिबों छाँड़यौ तऊन डबरनि पावहिं ।[10]

संभाव्य वर्तमान :- **इसके** रूप तुलसी की शब्दावली में केवल कुछ स्थलों पर ही उपलब्ध होते हैं

जेसे -जानौ तथा होइ ।

वर्तमान काल के इन रूपों में व्यवहृत त, ति, और ती से युक्त रूपों का सम्बन्ध संस्कृत के वर्तमान कालिक कृदन्त रूपों से हे ।

सामान्य भूत काल :- **इस** काल के रूप तुलसी की भाषा में जितनी बड़ी संख्या तथा जितनी विभिन्नता. के साथ उपलब्ध होते हैं उतने और किसी काल के नहीं । इनका निर्माण जिन प्रत्यों के योग से हुआ है उनका निर्देश सोदाहरण किया जा रहा हे ।

अन्य पुरूष एकवचन रूप :- कुछ उदाहरण दृष्टव्य है ।

(क) मूल धातु के साथ 'अ' का योग - जिन कहँ विधि सुगति न लिखी भाल ।[11]

(ख) मूल धातु के साथ 'ए' का योग - कुल गुरू तिय के बचन कमनीय सुनि ।

सुधि भये बचन जे सुने मुनिवर तें ।[12]

---

1. वही - 20, 2. वही - 129, 3. गीवावली - 1,12, 4. विनय पत्रिका 75, 5. वही - 9
6. वही - 3, 7. वही -33, 8. - वही - 133, 9. श्री कृष्णगीतावली ' 36, 10. वही -
11. विनय पत्रिका -13, 12. श्री कृष्ण गीतावली- 17

(ग) मूल धातु के साथ 'यो' का योग - देखो देखो बन बन्धो आजु, उमाकंत ।[1]

भूप सदसि सब नृप बिलोकी प्रभु राखु कह्यो नर नारी ।[2]

(घ) मूल धातु के साथ 'ओ' का योग- तुलसी अजहूँ सुमिरि रघुनाथहिं तरो गयंद जाके अर्द्ध नाँय ।[3]

(ङ) मूल धातु के विकारी रूप के साथ न्हि' का योग -
कीन्हि वेद विधि सोक रीति नृप मंदिन परम हुलास ।[4]

(च) मूल धातु के विकारी रूप के साथ 'न्हे' अथवा न्हें का प्रयोग -

निरखि निहाल निमिष महँ कीन्हें ।[5]

(छ) मूल धातु के विकारी रूप के साथ न्हेउ का योग -

हवे पसन्न दीन्हेउ सिव पद निज ।[6]

अन्य पुरूष बहुबचन के रूप :-

(क) मूल धातु के साथ 'ई' का योग -

विस्वामित्र हेतु पठये नृप इन्हहिं ताड़का मारी ।[7]

(ख) 'ए कायोग - गज रथ बरजि बाहिनी बाहन सबनि सँ वारे साज ।[8]

(ग) ओ का योग - हौं नाहिं अधम सभीत दीन किहौं बेदन मृषा पुकारो ।[9]

(घ) यो का योग - पहिराई जयमाल जानकी जुवतिन्ह मंगल गायो ।[10]

मध्यम पुरूष एक वचन के रूप -

(क) मूल धातु अथवा उसके विकारी रूपके साथ 'आ' का योग -

केहि करनी जन जनि के सनमान किया रे ।[11]

(ख) मूल धातु के साथ ' ई ' का योग - ताहि बाँधिबे को धाई ग्वालिनि गोर सहाई ।

ले लै आई बावरी दाँवरी घर-घर ते ।[12]

(ग) ए का योग - जो हम तजे पाइगौं मोहन गृह आए दे गारी ।[13]

(घ) ' ओ' का योग - काहें ते हरि मोहिं बिसारों ।[14]

(ङ) मूलधातु अथवा उसके बिकारी रूप के साथ न,न्ह,न्हा,न्हि,न्हीं, न्हे, तथा न्हों का प्रयोग -

---

1. विनय पत्रिका -14, 2. वही - 93, 3. वही - 83, 4. गीतावली-1,2, 5. विनय पत्रिका -6, 6. वही - 7, 7. गीतावली-1,61 8. वही - 1,2 9. विनय पत्रिका - 94, 10. गीतावली-1,91 11. श्रीकृष्ण गीतावली- 17, 12. वही - 6, 13. विनय पत्रिका-94, 14. वही - 78,

पाहन पसु विहप बिहंग अपने करि लीन्हें ।।
हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों ।2

मध्यम पुरूष बहुबचन के रूप:-

इन रूपों के प्रयोग तुलसी के काव्य में बहुत कम मात्रा में मिलते हैं ।

उत्तम पुरूष एकबचन के रूप में:-

सामान्य भूतकाल में इन रूपों का निर्माण प्रायः दोनों लिंगों में ही मूल धातु अथवा उसके विकारी रूप में आ,ई,ए,ओ,इउँ,एउँ,यो,यों,न्ह,न्हि,न्ही,न्हे आदि के योग से हुआ है कुछ उदाहरण प्रस्तुत है:-

(क) आ का योग - नाहिन कहु अवगुप तुम्हार अपराध मोर में पाना ।3

(ख) ई का योग- लोकरीति, देखी सुनी व्याकुल नर-नारी ।4

(ग) 'ए' का योग - गॉव बसत बामदेव मैं कब हूँ न निहोरे ।5

(घ) ' ओ ' का योग - नहिन नगर परत मो कहँ डर जदपि हौं अति हारो ।6

(ड़) ' यो ' का योग - तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयो नकबानी ।7

उत्तरम पुरूष बहुवचन के रूप -

पुल्लिंग में प्रयाः मूल धातु के साथ आ,ई,ई,ए,एउ,और इन्ह के योग से बनाये गये हैं।'ई' का योग देखिए - सुनत समुझत कहत हम सब भई अति अप्रबीन ।8

आसन्न भूत काल :- सामान्यतः केवल पुल्लिंग अन्य पुरूष और मध्यम पुरूष के एकवचन में तथा उत्तम पुरूष के दोनों वचनों में इस काल के कुछ रूप मिलते हैं यह रूप प्रायः सामन्य भूतकाल क रूपों से साम्य रखते हुए भी अर्थ में भिन्नता रखते हैं । उदाहरण के लिए - मूल धातु क साथ ' ई ' का योग तथा उसके साथ-साथ सहायक क्रिया 'है' का प्रयोग देखिए -

भई हैं प्रकट अति दिव्य देह थरि मानों त्रिभुवन छवि छवनि ।9

करी है रहि बालक की सी केलि ।10

पूर्ण भूतकाल -के क्रिया रूप भी बहुत न्यून मात्रा में उपलब्ध होते हैं इनका प्रयोग केवल अन्य रूप पुल्लिंग एकबचन और बहुबचन,मध्यम पुरूष पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग एकबचन तथा उत्तर पुरूष पुल्लिंग एवम् स्त्रीलिंग एकबचन के कर्ता रूपों के साथ हुआ हे । इन रूपों के निर्माण में मूल धातु के अथवा उसके विकारी रूप के साथ प्रयुक्त होने वाले प्रमुख प्रत्यय आ,एउ,यउ,एहु,इहु,न्ह,न्हा और न्हीं रूप मिलते हैं ।

---

1. विनय पत्रिका -78, 2. वही ' 102, 3. वही- 114, 4. वही - 34, 5. वही- 8, 6. वही-94
7. वही- 5, 8. श्रीकृष्ण गीतावलर- 55 9. गीतावली-1,56, 10. श्री कृष्ण गीतावली- 6

अव्यय :-

हिन्दी व्याकरण के अन्तर्गत अव्यय प्रमुखतः चार वर्गों में विभिक्त किये गये है :-
1.क्रिया विशेषण 2. समुच्चय बोधक 3. सम्बन्ध सूचक 4. विस्मयादि बोधक ।
क्रमशः इसी के आधार पर तुलसी की भाषा में आये हुए प्रमुख अव्यय रूपों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है -

﴾1﴿ क्रिया विशेषण - अर्थ की दृष्टि से इनके भी पाँच विभाग हो सकते है - स्थानवाचक,कालवाचक रीति वाचक,दिशावाचक तथा कारण वाचक । लगभग इन सभी प्रकार के क्रिया विशेषणों के रूपों का निर्वाह तुलसी - काव्य में उपलब्ध है ।

स्थान वाचक- क्रिया विशेषण के इस रूप का व्यवहार तुलसी के काव्य में देखा जा सकता है । इसके अन्तर्गत इहाँ,उहाँ, जहँ,तहँ,जहवाँ,तहवाँ,कहाँ,कतहुँ,भीतर बाहरे, अनत, इरि और निअर विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

कालवाचक:- कालवाचक क्रिया विशेषणों के अन्तर्गत प्रधानतः निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयुक्त अब,कब,जब,तब,आजु,कालिह,परों,नरों,जहिया,तहिया,तुरत,तुरंत,बेगि,और नित उल्लेखनीय है -

जब ते ब्रज तजि गये कन्हाई ।[1]

तब ते बिरह रवि उदति एक रस सखि बिछुरनि वृष पाई ।[2]

देखु सखि आजु रघुनाथ सोभा बनी ।[3]

रीतिवाचक:-रीतिवाचक क्रिया विशेषणों के रूपों में 'स ' के योग से बने हुए अस,कस,तस,से, में अन्त होने वाले जेसे- तेसे,केसे,सी,में अन्त होने वाली जैसे ऐसी,जैसी, कैसी, तैसी तथा 'भी में अन्त होने वाली जैसे इमि,जिमि किमि, उल्लेखनीय है । कुछ उदाहरण देखिए -

असन बसन पसु बस्तु विविध विधि सब मनि महँ रह जेसे ।[4]

सरग नरक चर अचर लोक बहु बसत मध्य मन तेसे ।[5]

कैसे पितु मातु कैसे ते प्रिय परिजन है ।[6]

तुमहिं त्रिलोकि आन की ऐसी क्यों कहिहै नर नारी ।[7]

दिशावाचक:-क्रिया विशेषण के जो रूप तुलसी की भाषा में बहुलता से व्यवहृत हुए हैं उनमें - इत,उत,आगे,पीछे, अगहुउ, सामुहें,दाहिन,बाएं,आदि उल्लेखनीय है ।

करणवाचक:- इसके अन्तर्मत मुख्यतः कत,किन,और काहे रूप उल्लेखनीय है । यथा-

---

1.श्री कृष्णगीतावली - 24, 2. वही - 29, 3. गीतावली - 7,5, 4. विनय पत्रिका - 124, 5. वही - 124, 6.गीतावली - 2,26, 7. श्री कृष्णगीतावली -6,

तौ कत विप्रव्याथ गनिकहुँ तारेहु कछु रही सगाइं ।[1]
काहे को वचन कहत सँवरि । 2

उपर्युक्त प्रमुख क्रियाविशेषणों के अतिरिक्त कुछ अन्य क्रिया विशेषण रूप भी स्फुट रूपा के अन्तर्गत लिए जा सकते हैं जिसका प्रयोग तुलसी की रचनाओं में व्यापक रूप से हुआ है इन्हें किसी निर्दिष्ट वर्ग में रखना कठिन हे । इनमें न,जनि,नाहीं,नाहिन,अवसि और बरिआई प्रमुख हैं । यथा -

तदपि हमहिं त्यागहु जसि रघुपति,दीनबन्धु,दयालु मेरे बारे ।[3]

राम भद्र मोहिं आपनो सोच है अरू नाहीं । [4]

घटत न तेज चलत नाहिन रथ रहयो उर नभ पर छाई । [5]

सत्रु मित्र मघ्यस्थ तीन ये मन कीन्हें बरि आई । [6]

(2)समुच्चय बोधकः- समुच्चय बोधक अव्यय के अनेक रूप तुलसी की शब्दावली में आये हैं। जिनमें अरू,बरू,बरूक,किट,नत,नतरू,जानु,किधौं,कैधौं,मनहु,मानहु, जदपि, और तदपि आदि विशेष उल्लेखनीय है । कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

बरूमन कियो बहुत हित मेरो बारहिं बार काम दवलाई । 7

जौ प्रपंच परिनाम प्रेम फिर अनुचित आचरिबे हो । [8]

जौपे कृपा रघुपति कृपाल की बेर और के कहा सेरे ।[9]

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहहिंगे ।[10]

तदपि न तजत स्वान अज खर ज्यों फिरत विषय अनुरागे । [11]

सम्बन्ध सूचक अव्ययः- इसके अन्तर्गत बिनु,बिना और लगि उल्लेखनीय है । यथा -

जबि लगि में दीन दयालु तें में न दास तें स्वामी । [12]

तब लगि जो दुख सहेउँ कहेउँ नहिं ।

जदपि अन्तरयामी । [13]

विस्मयादि बोधकः- इन रूपों के अन्तर्गत प्रमुखतः अहो,अहह,आह,दइअ,और हा,हा ध्यान देने योग्य है ।

1.विनय पत्रिका - 112, 2. श्री कृष्ण गीतावली - 53, 3. गीतावली - 2,2. 4. विनय-पत्रिका-150, 5. श्री कृष्ण गीतावली '29, 6.विनय पत्रिका -124, 7.श्री कृष्ण गीतावली -59, 8.वही-39, 9. विनय पत्रिका -137,10.गीतावली-1,97, 11. विनय पत्रिका -117, 12.वही-11 13.वही- 113.

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि अन्य शब्द रूपों की भाँति अव्यय की तुलसी की भाषा विधान में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं ।

पंचम अध्याय

(ध्वनि विश्लेषण)

(क) ब्रजभाषा : नामकरण , क्षेत्र एवं स्वरूप :

ब्रजभाषा हिन्दी भूभाग की प्राचीन और मुख्य भाषा है । यहाँ तक कि कुछ समय तक यह भारतवर्ष के बड़े खेत्र की राष्ट्रभाषा भी थी। 'ब्रज ' का संस्कृत तत्सम रूप 'ब्रज' है, जिसके मूल में संस्कृत धातु 'ब्रज' (जाना) है । भिन्न भिन्न कालों में 'ब्रज' शब्द का व्यवहार परिवर्तित होता रहा है । इसका सर्वप्रथम प्रयसोग ऋग्वेद संहिता में दृष्टिगोचर होता है परन्तु यहाँ इस शब्द का प्रयोग दोरों का चारागाह या बाड़े अथवा पशु-समूह के अर्थो में हुआ है । हरिवशं पुराण तथा भागवतदि परौणिक साहित्य में भी इस शब्द का प्रयोग कृष्ण के पिता नन्द के मथुरा के निकटस्थ ब्रज अर्थात् गोष्ठ विशेष के अर्थ में ही हुआ है।[1] मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में तद्भव रूप ब्रज अथवा ब्रज निश्चय ही मथुरा के चारों ओर के प्रदेश के अर्थ में मिलता है । इस प्रदेश की भाषा के लिये मध्यकालीन हिन्दी लेखकों के द्वारा केवल 'भाषा' अथवा 'भाखा' शब्द ही था प्रयोग होता था । यह प्रयोग केवल ब्रज क्षेत्र की भाषा के लिये ही सीमित नहीं थ, बल्कि हिन्दी की अन्य साहित्यिक बोलियों के लिये भी प्रयुक्त होता था।[2]

निश्चित रूप से इस ब्रजभाषा को ही डिंगल भाषा के विरूद्ध पिंगल कहा जाता था। हिन्दी भाषा -प्रेमी एवं उसके इतिहास को जानने वालों को यह विदित ही होगा कि पृथ्वीराज चौहान के समय से भी पूर्व यह पिंगल साहित्य का माध्सयम बन चुकी थी तथा इसका विकास शौरसैनी अपभ्रंश से हुआ है । इस ब्रजभाषा को ही उर्दू लेखकों

1- 'तद ब्रजस्थानमथिकम् शुशुभे काननावृतम्' (हरिवंश पुराण)

2- धीरेन्द्र वर्मा- ब्रजभाष, पृ0 16-17.

ने 'भाषा' के नाम से अभिहित किया । 'भाषा' का स्पष्टीकरण करते हुए लल्लूलाल जी ने लिखा है - 'भाखा संस्कृत शब्द है, जिसका मूलार्थ सामान्य भाषा से है, किन्तु अब इसका प्रयोग नरवानी या हिन्दुओं की जीवित भाषा से लिया जाता है। विशेषकर 'भाषा' ब्रजप्रदेश और ग्वालियसर में बोली जाती है । ब्रज दिल्ली और आगरे के बीच में एक जिला है।[1] मुख्यतः ब्रज प्रदेश में बोने जाने के कारण शुरू में 'भाषा' कहलाने वाली भाषा ब्रजभाषा ब्रजभाषा के नाम से अभिहित हुई । 'ब्रजभाषा' शब्द का स्पष्ट प्रयोग भिखादीदास ने किया-

'भाषा ब्रजभाषा रुचिर कहै सुमति सब कोय ।

मिले संस्कृत परस्यो पै अति सुगम जो होय ।।'[2]

इस प्रकार प्रारम्भ में प्राकृताभास अपभ्रंश का बोध कराने वाली 'भाषा' कालान्तर में 'ब्रजभाषा' के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी ।

ब्रजभाषा एकविस्तृत क्षेत्र की भाषा थी, यही कारण है कि साहित्य के माध्यम के रूप में इसे दूर-दूर तक सम्मान मिला । यह शौरसेनी प्राकृत की वंशज है । शौरसेनी प्राकृत प्राचीन भारत में मध्यदेश[3] अथवा अन्तर्वेद कहे जाने वाले भूखाण्ड की भाषा थी । यह अन्तर्वेद प्रदेश गंगा और सरस्वती (पंजाब) के बीच स्थित था तथा अनेक जिलों में विभाजित था। इन्हीं जनपदों में से एक या सूरसेन, जिसकी भाषा शौरसेनी प्राकृत

1- जनरल प्रिन्सिपिल्स आफ इन्फ्लेक्सनल एण्ड कन्जुगेशन इन दी ब्रजभाषा, 1811, भूमिका से।

2- काव्य निर्णय, 1/14

3- Madhyadesh- The country bounded by the river Saraswati in Kurukshetra, Allahabad, The Himalayan and Vindhya, the anterveda was included in Madhya-desh- The Geographical Dictionary of Ancient and mediaeval India, 1927.

थी, जिससे ब्रजभाषा उत्पन्न हुई । संस्कृत और प्राकृत काल की तुलनामें अपभ्रंश काल का शूरसेन प्रदेश काफी विस्तृत था। पश्चिमी भारत का एक बहुत बड़ा हिस्सा-राजस्थान, गुजरात, मालवा आदि भी इसी प्रदेश में आकर विलीन हो गये थे । शौरसेनी अपभ्रंश प्रदेश ब्रजभाषा काल में क्रमशः पूर्व की ओर हट आया था, उसका कारण यह था कि इसी शौरसेनी अपभ्रंश से निस्सृत ब्रजभाषा का प्रदेश ब्रजमण्डल बन गया था। पिंगल के समय तक ब्रजभषा का प्रयोग राजस्थान तक अवश्य रहा होगा।

वर्तमान समय में इसकी विलासभूमि ब्रजमण्डल [1] है। यहाँ ब्रजमण्डल से अभिप्राय इस समय के मथुरा, वृन्दावन के चारों ओर का वह क्षेत्र है जो 'चौरासी कोस' के रूप में प्रसिद्ध है । यही श्रीकृष्ण और कथा की लीलाओं से संबंधित अनेक पावन स्थल व सुन्दर धाम हैं । इसी ब्रजमण्डल में 'ब्रज'नामक वह स्थान भी है जो प्राचीन काल में 'गोकुल' अथवा 'महावन' कहा जाताथा। गोकुल मथुरा शहर के निकट यमुना के उस पार स्थित एक गाँव है। कालान्तर में गोकुल के अतिरिक्त वृन्दावन और उसके आस-पास के गाँव भी ब्रज अथवा ब्रजक्षेत्र में ही विलीन समझे जाने लगे । आज इसका प्रयोग केवल ब्रजमण्डल तक ही सीमित नहीं है अपितु इसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक हो गया है। इसके क्षेत्र के सम्बन्धा में यह प्राचीन दोहा बहुत प्रसिद्ध है-

'इत बरहद उत सोनहट, उस सूरसेन को गाँव ।
ब्रज चौरासी कोस में, मथुरा मण्डल धाम ।।'[2]

1- The Braj Mandal almost exactly coincides with the modern District of Mathura, if we exclude the Eastern corner comprising 'Sadabad' and portion of 'Mahavan' which are added in the District in the year 1832- Linguistic Survey of India, Vol.9, 1916, P. 69.

2- ब्रजभारती, चैत्र, 1999, वि0पृ0- 25

अर्थात ब्रजमण्डल के एक ओर की सीमा 'वर' नामक स्थान है जो अलीगढ़ जिले का एक कस्बाहै,दूसरी ओर सोननदी है जिसकी सीमा गुड़गाँव तक है तथा तीसरी तरफ सूरसेन का गाँव है जो यमुना नदी के किनारे स्थिति वर्तमान आगरा तहसील का बटेश्वर नामक गाँव है। वस्तुतः प्रोक्त दोहे की ध्यानपूर्वक देखने से यही ज्ञात होता है कि ब्रज में चौरासी कोस में मथुरामण्डल है जो धाम है । ब्रज बड़ा क्षेत्र है उसमें चौरासी कोस का मथुरा मण्डल है । मिर्जा खाँ[3] ने भी चौरासी कोस की भूमि को ब्रज स्वीकार किया है, जिसका केन्द्र मथुरा है । परन्तु , वर्तमान में ये प्राचीन सीमाएं टूट चुकी हैं । लिंगिविष्टक सर्व ' में इसके क्षेत्र विस्तार के सम्बन्ध में लिखा है कि - ' यदि मथुरा को केन्द्र मान लिया जाय तो ब्रजभाषा दक्षिणमें जिला आगरा, भरतपुर रियासत के अधिकांश भाग, करौली और धौतपुर रियासत के पश्चिमी भाग और जयपुर रिसायत के पूर्वी भाग में, उत्तर में गुड़गाँव जिले के पूर्वी भाग में, उत्तर-पूर्व में दोआब,बुलन्दशहर,अलीगढ़, एटा, मैनपुरी गंगा के उस पार बदायूँ बरेली और नैनीताल के परगनों में बोली जाती है।[1]

डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा ने ग्रियर्सन द्वारा ब्रजक्षेत्र के अन्तर्गत नैनीताल से तराई भाग को सम्मिलित किये जाने की आलोवचना की है । उनका मत है कि -'नैनीताल तराई की मंडियों के निवासी प्राय: खाड़ीबोली क्षेत्र के हैं और तराई के अन्य भागों में वे कुमायसूँनी अथवा भूटिया हैं, जो जाड़ों में पहाड़ों से नीचे उतर कर अस्थाई रूप से वहाँ रहते

---

1. Braj is the name of country in India eightyfour pas round, with its centre at Mathura which is quite well known district on 195 b(Boll) he adds Gwalior to the tarritories in which 'Bhakha' is spoken, The word eighty is later insertion.'

2- लिंगिविस्टिक सर्वे आफ इंडिया-भाग-1,खण्ड-1, पृ0-70-319.

हैं , इसलिये यही ठीक होगा कि ब्रजभाषा क्षेत्र में नैनीताल के तराई भाग को सम्मिलित न किया जाय ।[2] इनके अनुसार ब्रजक्षेत्र के अन्तर्गत-' उत्तर प्रदेश के मथुरा, अलीगढ़, आगरा, बुलन्दशहर, एटा, मैनपुरी, बदायूँ तथा बरेली के लिये पंजाब के गुडगाँव जिले की पूर्वी पट्टी राजस्थन में भरतपुर, धौलपुर,करौली तथा जयपुर का पूर्वी भाग, मध्यभारत में ग्वालियर का पश्चिमी भाग [2] आते हैं । उत्तर तथा दक्षिण में हिन्दी की दो अन्य पश्चिमी बोलियों अर्थात् खड़ी बोली तथा बुन्देली से आधुनिक ब्रजभाषा का क्षेत्र आच्छादित है । इसके पूर्व में पूर्वी बोल अवधी तथा पश्चिम में राजस्थानी की दो पूर्वी बोलियों अर्थात् मेघावी और जयपुरी का क्षेत्र है । आधुनिक ब्रजभाषा लगभग एक करोड़ तेइस लाख जनता के द्वारा बोली जाती है, और लगभग 38000 वर्ग मील के क्षेत्र में फैली हुई है।[3]

यह तो निश्चित है कि अठारहवीं शताब्दी [4] से पूर्व ब्रजभाषा का उल्लेख नहीं मिलता । ब्रज या ब्रजभूमि की बोली की ब्रजभाषा के नाम से प्रसिद्ध हुई जो कभी भाषा, कभी मध्यदेशी,कभी अन्तर्वेदी,कभी पिंगल तथा कभी ग्वालियरी आदि संज्ञाओं से सुशोभित होती रही । मथुरा या शूरसेन प्रदेश प्रारम्भ में ब्रजप्रदेश कहलाता था। ब्रज श्रीकृष्ण के समय में ही एक निश्चित भूभाग था जिसके अधिपतिनन्द थे । कालान्तरमें ब्रज और मथुरा दोनों पर्याय हो गये तथा 'ब्रज' शब्द भाषा के साथ सम्पृक्त होकर अपनी परम्परा के निर्माण में तन्नद्व हो गया ।

1- ब्रजभाषा-पृ0 33.

2- वही, पृ0- 33.

3- वही, पृ0- 33.

4- भिखारीदास-काव्य निर्णय (1746 ई0) अध्याय-1, छन्द- 14,16.

जहाँ तक इसके स्वरूप का प्रश्न है, इस संबंध में डॉ0 भाण्डारकर का कहनाहै कि ब्रजभाषा का जन्म शौनसेनी अपभ्रंश की अपनी जन्मभूमि (शूरसेन प्रदेश) में हुआ । उनके अनुसार -'छठी -सातवीं शताब्दी के आस-पास अपभ्रंश का जन्म उस प्रदेश में हुआ जहाँ आजकल ब्रजभाषा बोली जाती है ।'[1] मध्यदेशीय शोरसेनी अपभ्रंश हेमचन्द्राचार्य युग में सम्पूर्ण उत्तर भारत में पूर्ण प्रतिष्ठित हो चुकी थी । डॉ0 चाटुर्ज्या के विचार से - 'नवी से बारहवीं' शताब्दी के काल में परिनिष्ठित अपभ्रंश राजपूत राजाओं की प्रतिष्ठा और प्रभाव के कारण, जिनके दरबारों में इसी शौरसेनी की परवर्ती या उसी पर आधृध भषाएं व्यवहृत होती थी और जिसे चारणों ने समृद्ध और शक्ति सम्पन्न बनाया था, पश्चिम में पंजाब और गुजरात से लेकर पूरब में समूचे आर्य भारत में प्रचलित हो गयी। सम्भवतः यह उस काल की राष्ट्रभाषा मानी जाती थी ।[2] यही शौरसेनी की ब्रजभाषा की वंशज थी । अपने शोध प्रबन्ध में डॉ0 शिव प्रसाद सिंह [3] पे इसे अत्यन्त प्रमाणिकता के साथ सिद्ध किया है कि - 1000 ईस्वी के आस-पास शौरसेनी अपभ्रंश की अपनी जन्मभूमि में जिस ब्रजभाषा का उदय हुआ,आरम्भ में उसके सिर पर साहित्यिक अपभ्रंश की छायसा थी और रक्त में शौरसेनी भाषाओं की परम्परा तथा अन्य सामाजिक तत्वों का ओज और बल था। यह भाषा चौदहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश बहुत संज्ञा शब्दों और प्राचीन काव्य-प्रयोगों के आवरणों से ढँकी रहने के कारण परवर्ती ब्रजभाषा से भिन्न प्रतीत होती है परन्तु भाषा-वैज्ञानिक कसौटी पर वह निस्सन्देह उसी का पूर्वरूप सिद्ध

1- About the 6th and 7th century, the Apabhransa was developed in the country in which the Brijbhasha prevails in modern time- Wilson Philological lectures, p.301.

2- ऑरिजन एण्ड डेवलपमेन्ट आफ बंगाली लैग्वेज, पृ0- 113

3- सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य ।

होती है ।[1] डॉ0 सत्येन्द्र जी ब्रजभाषा के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि 1000 ईस्वी के लगभग की ब्रजभाषा शौनसेनी अपभ्रंश की गोंद में खेलती हुई बालिका के समान है, 1400 ईस्वी के लगभग की ब्रजभाषा अपभ्रंश की ऊँगली पकड़ कर चल रही है और सूरदास के समय की ब्रजभाषा पूर्णतः अपने पैर पर खड़ी है तथा दूसरी भाषाओं को प्रभावित करने वाली है ।

गुजरात के जैन आचार्य सन् 1088-1172) के व्याकरण में उदाहृत पश्चिमी अपभ्रंश के प्रचलित साहित्य के कुछ उदाहरणों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि उस काल की भाषा हिन्दी के ही निकट थी।[2] इसे हम ब्रजभाषा की भूमिका कह सकते हैं। हेमचन्द्र के अपभ्रंश की सम्भवतः सभी ध्वनियाँ ब्रजभाषा में विद्यमान हैं । क्रिया का सबसे महत्वपूर्ण रूप भूतकाल का निष्ठा रूप होनाहै जो ब्रजभाषा की प्रमुख ऐतिहासिक विशेषता है, हिन्दी के सभी बोलियों में अपनी ओकारान्त या औकारान्त विशिष्टता के कारण भिन्न प्रतीत होती है । हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में उद्वत अपभ्रंश के दोहों की भाषा में भी भूतकाल के इसी रूप (चल्यौ, गयौ, कहयौ आदि) का प्रयोग किया है । इसी तरह अपभ्रंश में सामान्य वर्तमान तिडन्त रूपों का ब्रजभाषा में पूर्ण एवं सरल विकसित रूप दृष्टिगोचर होताहै। हेमचन्द्र के व्याकरण के अपभ्रंश दोहों की भाषा वाक्य-गठन की दृष्टि से ब्रज के अति सन्निकट जान पड़ती है । ब्रजभाषा के इस विकसित स्वरूप की व्याख्या इसी प्रकारकरते हुए डॉ0 चाटुर्ज्या ने कहा है कि -'ब्रजभाषा पुरानी शौरसेनी भाषा की सबसे महत्वपूर्ण और शुद्ध प्रतिनिधि है, हेम व्याकरण के अपभ्रंश दोहों की

1- सूरपूर्व भूमिका , डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0- ख

2- भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ0- 178-79

भाषा की पूर्व पीठिका है ।'[1]

ब्रजभाषा का प्रसार व प्रीाव उसके प्रदेश की पूर्ववर्तिनी भाषाओं की भांति ही व्यापक था । यह 16वीं से 18 वीं शती तक सम्पूर्ण उत्तरापथ की काव्य भाषा के रूस्प में प्रतिष्ठित हो गयी । इसी संबंध में डॉ0 नगेन्द्र ने अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि -' ब्रजभाषा अपने समय में अत्यन्त व्यापक भाषा रही है, उसका क्षेत्र ब्रज के चौरासी कोस तक तो कहने भर को ही था। उसका प्रसार इतना व्यापक था कि ?
आस-पास की अनेक बोलियों का अस्तित्व लोप ही हो गया था। उत्तरपूर्व में कन्नौजी, दक्षिणी मे बुन्देलखण्डी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व न रख पायी और लगभग ब्रजभाषाकी रूपान्तर मात्र बन गयी। इन सबको ब्रजभाषा ने अपने अन्दर समाहित कर लिया । कन्नौजी तथा बुन्देलखण्डी में भूतकाल के ' यौ ' के स्थान पर 'औ' (गऔ, दऔ) ड के स्थान पर हमेशा 'ह' तथा बुन्देलखण्डी में कुछ सर्वनामों में अनुस्वार के लगाने आदि विशेषताओं को ब्रजभाषा द्वारा सहज रूप में ग्रहण कर लेने के कारण इसका स्वतन्त्र रूप ही नष्ट हो गया । दरअसल, तीन शताब्दियों तक उत्तर भारत की साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित ब्रजभाषा का स्वरूप इतना विशद एवं व्यापक हो गया था कि ब्रिज की बोली का आधार होने के बाबजूद भी वाह्य प्रभावों के कारण वह अत्यन्त विनम्र एवं व्यापक हो गयी थी । अनेक भाषाओं के शब्दो से उसका शब्द-भण्डार सम्पन्न था तथा व्याकरण भी पूर्ण व्यापक हो गया था। यही कारण है कि अपनी समीपवर्ती बोलियों के अलावा अवधी के रूपों को भी ग्रहण करने में यह पूर्ण स्वतन्त्र दिखायी पड़ती है ।

---

1. "The dilect of Braj is most Important in the sense most faithful representative of Saurseni speech. The Apbhransa versus Quoted in the Prakrit Grammer of Hemchandra (1018-1117AD) are in saurseni speech which represent pre-modern stage of western Hindi-' (Origin and Development of the Bengali language, P. 11.

ब्रज की बोली और साहित्यिक भाषा में आंशिक भिन्नता स्वाभाविक ही है क्योंकि कुछ ऐसे शब्द होते हैं जो सामान्य तौर पर तो बोलचाल में प्रयुक्त होते हैं परन्तु उनके लिखित एवं साहित्यिक रूप में कुछ अन्तर होता है । उदाहरण के लिये हम 'कूँ' शब्द को ले सकते हैं , जो बोलचाल का शब्द है परन्तु , साहित्य में इसका प्रयोग बिल्कुल नहीं है,तथा यह साहित्यिक भाषा में 'कूँ' की जगह कौं, को हो गया है । साहित्यिक ब्रजभाषा संस्कृत तथा अन्य भाषाओं से भी पूर्णतः प्रभावित है । इसमें दूसरी भाषाओं के प्रयोग के समय ब्रजभाषा के व्याकरण और उसके उच्चारण पर विशेष ध्यान दिया गया है । ब्रजभाषा की इसी प्रवृत्ति का विवेचन करते हुए भिखारी दास ने लिखा है -

'भाषा ब्रजभाषा रुचिर, कहै सुमति सब कोय।
मिलै संस्कृत पारस्यौ, पै अति सुगम जो होय ।।'[1]

इस प्रकार ब्रजभाषा में दूसरी भाषाओं के केवल उन्हीं शब्दों को अपनाया है जो बोल-चाल में अत्यन्त लोकप्रिय थे तथा ब्रजभाषा की लोच-लचक तथा माधुर्य आदि गुणों की रक्षा करने में पूर्णतः समर्थ दिखायी पड़ते थे । संक्षेप में दूसरी भाषाओं के शब्दों को व्याकरण के साँचे में ढालकर ही प्रयोग में लाया गया है।

1- काव्य निर्णय- 1/14.

,भाषा का व्यसाकरणिक स्वरूप

।〗 ब्रजभाषा का सामान्य व्याकरण :

व्याकरण वह शास्त्र है जिसमें भाषा के अंग प्रत्यंगों का पूर्ण विवेचन किया जाता है। व्याकरण के द्वारा ही हम भाषा को शुद्ध लिखना और बोलना सीखते हैं । भाषा प्रधान होती है जबकि व्याकरण उसका अनुगामी होता है । मनुष्य जिस रूप में और जिस प्रकार बोलता है । वही शुद्ध है तथा उसी रूप के तात्विक विवेचनको ही व्याकरण कहा जाता है । इस प्रकार भाषा के अनुरूप ही व्याकरण का निर्माण होता है न कि व्याकरण के अनुरूप भाषा का । सभी भाषाओं का एक निश्चित व्सयाकरण होता है और उसी आधार पर वह भाषा फलती-फूलती है । इसी प्रकार ब्रजभाषा का भी अपना स्वतन्त्र व्याकरण है जो संक्षेप में इस प्रकार है -

संज्ञा :

ब्रजभाषा में प्राय: अकारान्त, इकरान्त और इकारान्त संज्ञाए स्त्रीलिंग ही होती हैं । कुछ पुल्लिंग उदाहरण इसके अपवाद हैं । अकारान्त संज्ञाएं पुल्लिंग होने पर अकारान्त हो जाती हैं जबकि उकारान्त संज्ञाए हमेशा पुल्लिंग ही होती है । उकार बहुला प्रवृत्ति के कारण अकारान्त शब्द भी उकारान्त हो जाते हैं ।

यद्यपि साहितियक ब्रजभाषा में ओकारान्त संज्ञाएं भी मिलती है परन्तु वर्तमान बोलचाल की भाषा में तो व्यक्तिवाद नामों के ही उदाहरण प्राप्त होते हैं । खड़ी बोली की आकारान्त संज्ञाएं ब्रज़भाषा में ओकारान्त हो जाती हैं । ब्रजभाषा की प्रमुख विशेषता

ही औकारान्त है । इसकी प्रधान प्रवृत्ति में स्वरान्त की अधिकता होती है न कि व्यंजनातक की । यही कारण है कि अंत में प्रायसः 'इ' (चवारि 'ड (पागलु) अथवा 'औ' (खोटो) आदि स्वर उच्चारित होते हैं ।

लिंग :

ब्रजभाषा में प्रत्येक संज्ञा या तो पुल्लिंग होती है या स्त्रीलिंग । प्राणहीन वस्तुओं की घेतक संज्ञाएं भी इन्हीं में से किसी कोटि में रखी जायेगी । ऐसी संज्ञाओं में प्रत्यय के सहयोग से सहगामी स्त्रीलिंग रूप बनाये जाते हैं । जैसे- ग्वाल से ग्वालिनि, गरीब से गरीबिन, हाथी से हथिनी आदि । इसी प्रकार विदेशी शब्दों का लिंगहीन संज्ञाएं अनिवार्य रूप से इन्हीं दो लिंगों में से किसी एक के अनतर्गत रख ली जाती है । हिन्दी में लिंग निर्णय [1] एक जटिल समस्या होने के बाबजूद ऐसा नहीं है कि इसमें कुछ नियम ही नहों । लिंगों का निर्णय शब्द के अर्थ तथा उसके रूपों के आधार पर किया जाता है। कभी-कभी अनियमित रूप से पुल्लिंग संज्ञाओं से ही स्त्रीलिंग संज्ञाएं बना ली जाती है। जैसे -पुल्लिंग 'भैया' से स्त्रीलिंग में ।

ब्रजभाषा में ई, नी, आनी, इन, इनि, इनी, इया, आइन, अटी, डी, आदि प्रत्ययों के द्वारा प्राणिवाचवक संज्ञाओं को स्त्रीलिंग में परिवर्तित कर दिया जाता है। जैसे -'देव' से देवी, मोर से मोरनी, देवर से देवरानी, चमार से चमारिन, था ग्वाल से ग्वालिनि आदि ।

अकारान्त को इकारान्त में परिवर्तित करके भी ब्रजभाषा में स्त्रीलिंग बनाया जाताहै। जैसे- 'छोरा' से डारि ।

1-डा0 हरदेव बाहरी, हिन्दी में लिंग विचार-हिन्दी अनुशीलन,वर्ष 2 अंक 3 संवत् 2006

ही औकारान्त है । इसकी प्रधान प्रवृत्ति में स्वरान्त की अधिकता होती है न कि व्यंजनातक की । यही कारण है कि अंत में प्रायसः 'इ' (चवारि 'ड (पागलु) अथवा 'औ' (खोटो) आदि स्वर उच्चारित होते हैं ।

लिंग :

ब्रजभाषा में प्रत्येक संज्ञा या तो पुल्लिंग होती है या स्त्रीलिंग । प्राणहीन वस्तुओं की घेतक संज्ञाएं भी इन्हीं में से किसी कोटि में रखी जायेगी । ऐसी संज्ञाओं में प्रत्यय के सहयोग से सहगामी स्त्रीलिंग रूप बनाये जाते हैं । जैसे- ग्वाल से ग्वालिनि, गरीब से गरीबिन, हाथी से हथिनी आदि । इसी प्रकार विदेशी शब्दों का लिंगहीन संज्ञाएं अनिवार्य रूप से इन्हीं दो लिंगों में से किसी एक के अनतर्गत रखा ली जाती है । हिन्दी में लिंग निर्णय [1] एक जटिल समस्या होने के बाबजूद ऐसा नहीं है कि इसमें कुछ नियम ही नहों । लिंगों का निर्णय शब्द के अर्थ तथा उसके रूपों के आधार पर किया जाता है। कभी-कभी अनियमित रूप से पुल्लिंग संज्ञाओं से ही स्त्रीलिंग संज्ञाएं बना ली जाती है। जैसे -पुल्लिंग 'भैया' से स्त्रीलिंग में ।

ब्रजभाषा में ई, नी, आनी, इन, इनि, इनी, इया, आइन, अटी, डी, आदि प्रत्ययों के द्वारा प्राणिवाचवक संज्ञाओं को स्त्रीलिंग में परिवर्तित कर दिया जाता है। जैसे -'देव' से देवी, मोर से मोरनी, देवर से देवरानी, चमार से चमारिन, था ग्वाल से ग्वालिनि आदि ।

अकारान्त को इकारान्त में परिवर्तित करके भी ब्रजभाषा में स्त्रीलिंग बनाया जाताहै। जैसे- 'छोरा' से डारि ।

1-डा0 हरदेव बाहरी, हिन्दी में लिंग विचार-हिन्दी अनुशीलन,वर्ष 2 अंक 3 संवत् 2006

वचन :-

ब्रजभाषा में दो वचन होते है । एक वचन और बहुवचन । आदरार्थक विशेषण तथा क्रिया के बहुवचन रूप भी एकवचन संज्ञा के साथ ही व्यवहृत होते हैं । औकारान्त को छोड़कर मूलरूप एक वचन तथा बहुतवचन में कोई भिन्नता नहीं होती । जैसे-

पुल्लिंग एक छोरा (एक वचन (छो (बहुवचन (

स्त्रीलिंग एक रानी (एकवचन(द्वै रानी (बहुवचन(

जब कि आकारान्त में भिन्नता होती है -

कांटा (एक वचन(काटे (बहुवचन(

नारी (एकवचन(नारे (बहुवचन(

ब्रजभाषा में संयोगात्मक विकृत रूपों में 'ऐ' प्रत्यय जोड़कर एक वचन बनाये जाते हैं । जैसे- 'पूत' से पूतए तथा छोरा से छोराऐ इत्यादि ।

ब्रज में मूलरूप एक वचन प्राय: आकारान्त से औकारान्त हो जाता है । जैसे- नाड़ा का नाड़ौ, माथा का माथौ, परन्तु कभी-कभी यसे आकारान्त ही बने रहते हैं। जैसे - रास्ता का रत्ता । ब्रजभाषा में न, नु, न्नें प्रतयय लगाकर विकृत रूप बहुवचन बनाया जाताहै । जैसे -पुल्लिंग छोरा से छोरन या छोरानु या छोरान्नें ।

स्त्रीलिंग रानी से रानिन । स्त्रीलिंग सौतिसे सौतन ।

लघुवाची तथा हीनतावाची स्त्रीलिंग के बहुवचन में अनुनासिकता का प्रयोग होता है। यसथा- कुतिया से कुतियाँ ।

विभक्तियाँ एवं कारक :

ब्रजभाषा में निम्नलिखित कारकीय परसर्गो का प्रयोग होता है-

कर्ता कारक-ने

कर्म कारक- को, कौ, कौं, कौं, कूं, कुँ, हिं, कहें ।

करण कारक - से, सौं, सौं, ते, तैं ।

सम्प्रदान कारक- को,कों, कौ, कौं, कूँ,कुँ, हिं ।

अपादान कारक- से ,सों,सौं, ते, तैं ।

सम्बन्ध कारक- को, कों,के, कैं, कैं, की ।

अधिकरणकारक- में,मैं, मो, पै, पर , माँहि, माँझ,मह, मधि।

इसके अलावा कुछ संयुक्त परसर्ग भी प्रयुक्त होते हैं । यथ-

में ते- बकस में ते किताब निकारि लाओ ।

पै ते- खाट पै ते रोटी उठाय ले ।

कै नै - राम कै नै कई ।

परसर्गो के समानकुछ अन्य शब्द भी ब्रजभाषा में प्रयुक्त होते हैं । जैसे- आगे, दिनभर, बीच, ढिंग, हित, लगि, करि, लौ, लौं, निकट, प्रति, प्रयंत, संग, सहित, से, सम, समेत, ताई, तन, तर, आदि ।

सर्वनामः

संज्ञा के बदले बोले जाने वाले शब्दों को सर्वनाम कहते हैं । ब्रजभाषा के सर्वनामों में खड़ीबोली की अपेखा अधिक रूपान्तर मिलताहै । ब्रजभाषा में प्रयुक्त होने

वाले मुख्य सर्वनाम निम्नलिखित हैं-

पुरुष वाचक उत्तम पुरुष- मैं, हों, हौं, हूँ, मो, मौ, हम ।

मध्यम पुरुष-तू, तूँ, तैं, तें, तो, तुम ।

अन्यस पुरुष तथा निश्चयवाचक- यह , एहि, या, यसे, इन, वह, सा, वा, ता, तेहि, वे, ते, उन, तिन ।

निज वाचक- आप, आपु, आपुन ।

सम्बन्ध वाचक- जो, जौन, जा, जे, जिन ।

प्रश्नवाचक- कौन, को, का, किन ।

अनिश्चयवाचक- कोऊ, कोय, काहें, कोइ,कहु, कहूँ, कू, एक, एकनि, सब, सबन, और औरन

क्रिया :

ब्रजभाषा की मूल क्रिया में क्रिया के रूप की दृष्टि से कोई विशेषता नहीं परिलक्षित होती है । ब्रजभाषा की क्रियाएं अधिकांशतः नो, न, और बो, से अंत होने वाली होती हैं । उदाहरणार्थ -

दीनों, लीनो , करनो आदि नो से

आवन, गवन,क लेन, देन, आदि न से

निहारिबो,बिगारिबो,झिझकारिबो आदि बो से अन्त होने वाली क्रियाएं हैं ।

ब्रजभाषा की क्रियाओं में तरह-तरह के प्रत्ययों को जोड़कर एक ही अर्थ को प्रकट करने वाले अनेक शब्दों का निर्माण कियाजाता है । भूतकालिक कृदन्त के

सृजन हेतु पुल्लिंग एक वचन में ओ, औ, यो, यौ, इन चार प्रत्ययों का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिये कीनो, कीनौ, कियो, कियौ आदि । आज्ञार्थ क्रियायें खड़ी बोली में जहाँ अपने मूल रूप में प्रयुक्त होती है वहीं ब्रजभाषा में इयौ प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे-

तुम जाना का तुम जइयो ।

ब्रजभाषा की सहायक क्रियसाओं में भी अनेक रूप भेद दृष्टिगोचर होते हैं जैसे-

वर्तमान काल - उत्तम पुरुष में - हां, हों, हूँ, हैं,

मध्यम पुरुष में- है, हौ

अन्यपुरुष में- है, अहै, अहहि, हैं, अहें, अहहिं

भूतकाल- उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष में -हो, हे, हतो, हुतो, हुतौ, हतो, हते, हुते, ही, हुती, हती, हीं, हुती ।

भविष्यकाल- उत्तम पुरुष में- हवेहों, होइहौं,हवेह,होइहैं,

मध्यम पुरुष में- हवैहै, होइहै, हवैहौ

अन्य पुरुष में- हवैहे, होइहै, होयगो, हवैयगो, होहुगे,होहिंगे,होंयगे,होयगी, हवैहे । आदि रूप प्रयुक्त होते हैं ।

विशेषण :

जिन शब्दों के माध्यम से गुण परिमाण या संख्या आदि की दृष्टि से किसी की विशेषता प्रकट की जाती है, उसे विशेषण कहा जाता है । ब्रजभाषा में विशेषण का रूप संख्या विशेष्य के साथ परिवर्तित होता रहता है । विशेषण संज्ञा के लिंग प्रभाव से

प्रभावित होते रहते हैं । यहाँ तक कि कभी-कभी विशेषण का प्रयोग करके ही विवादास्पद शब्द का लिंग निर्णय किया जाता है ।

ब्रजभाषा में औकारान्त विशेषण संज्ञा के अनुरूप ही मिलते हैं। यथा- सकरौ, चौरौ, चाट्टौ, मोटौ, घनौ, तीखौ, फीकौ आदि । 'ए' प्रत्यय से अन्त होने वाले ओकारान्त विशेषणों का परिवर्तित रूप गुण विस्तार के रूप में संज्ञा के साथ मूल रूप बहुवचन, विकृत रूप एक वचन तथा विकृत रूप बहुवचवन में प्रयुक्त होता है। जैसे-

कारो कुत्ता आत् है ।

कारे कुत्ता आत् है ।

कारे मदन से कह देओ ।

कर्म के समान प्रयोग किये गये ऐसे विशेषणों में उपर्युक्त परिवर्तित रूप केवल मूल बहुवचन संज्ञा के साथ ही व्यवहृत होता है । यथा-

बो आदमी गोरौ है ।

बे आदमी गोरे हैं ।

बा आदमी को कारो कहत हैं ।

उन आदमिन को कारो बताउत् हैं।

ऐसे विशेषणों में कोई परिवर्तन नहीं होता जो व्यंजनान्त होते हैं । जैसे-

सफते ईट है ।

सफेद ईटें है ।

सफेद ईट का टुकड़ा है ।

सफेद ईटन का टुकड़ा ।

इस प्रकार विशेषण के तीन वर्ग किये जा सकते हैं -

1) मूलरूप तथा विकृत रूप परिवर्तित होते रहते हैं तथा लिंग के प्रभाव से प्रभावित भी होते हैं । जैसे -

मूल- औ विकृत -ए स्त्रीलिंग -ई

नीकौ नीके नीकी

2) मूलरूप एकवचवन में उकारान्त तथा बहुवचन में अकारान्त प्रयुक्त होता है। यथा-

सुन्दर सुन्दर सुन्दर

कभी-कभी विशेषण एक वचन में उकारान्त नहीं रहता ।

3) प्रथम रूप की भाँति ही आकारान्त रूप भी परिवर्तित हो जाता है। जैसे-

सादा सादे सादी

ब्रजभाषा में विशेषण के साथ पर प्रत्ययों का भी प्रयोग होता है । जैसे-

सब और ते के योग से - सबते हुस्यारू ।

तुलनात्मक रूप दर्शाने हेतु ते का प्रयोग किया जाता है । जैसे - कुत्ता से हुस्यार बिल्ली ।

ब्रजभाषा में वाला प्रत्यय के योग से घरबारौ (घरवाला) तथा क्रिया में प्रत्यय के योग से पिअक्कड़ या पियक्कड़ (पीना+अक्कड़) आदि रूप भी बनते हैं । इसी प्रकार प्रत्ययों के संयोग से अन्य शब्द भी निर्मित किये जाते हैं ।

ब्रजभाषा में कुछ विदेशी विशेषण भी प्रयुक्त होते हैं । जैसे- मुफ्त का मुफ्त या मुफ्त ।

अव्यय :

अविकारी रूप अर्थात जिनमें कोई विकार उत्पन्न न हो, अव्यय कहलाते हैं । व्याकरणानुसार अव्यय के चार प्रकार है- क्रिया विशेषण, समुच्चयबोधक, सम्बन्ध सूचक तथा विस्मयादिबोधक ।

क्रिया विशेषण :

जिस अव्यय के द्वारा क्रिया की विशेषता जानी जाय उसे क्रिया विशेषण अव्यय कहते हैं । ब्रजभाषा में क्रिया विशेषणों के रूप का निर्माण सर्वनाम, विशेषण या क्रिया विशेषणों के ही आधार पर हुआ है । सर्वनाम मूलक क्रिया विशेषण निम्नोंकित हैं-

कालवाचवक- अब, अबै, जन, जवै, जो, ल्यो, जौ, तक, तब, तबै, तौ, तक, तउ, तौ,लौ, कब, कबै, तथा ही के यसोग से अब+ही = अभी, अबहिं, अबई ।

स्थानवाचक: इतै,हियां,हियन, यॉं, म्वा,जॉं,न्यसॉं,बिते,बुआ,हुआन,बॉं, बॉं,मॉं,म्हां, हवॉं,तितै,तहॉं,जितै, जहॉं, किते।

दिशावाचक: इत,उत,बित, कित, तिंि ।

रीतिवाचक: न्यसौ,न्यूँ,नी,नु,ज्यों,जैसे,तैसे,तैले,कैसे ।

2- **कालवाचक**

प्रमुख कालवाचक क्रिया विशेषण निम्नलिखित हैं । आज ,आजु, आजु,अब, आगे, आगें, कल, काल, परसौं, तरसौ, नरसौं, तड़के, भोर, तुर्त, फुर्त, नाट, तुरत, तुत्त, झट्ट, फट्ट, अगार, पिहार ।

3- **स्थानवाचक:**

जौरे (झौरे), आगैं, धौरे, पीछें (पछार), अगार, आगै, माऊँ, नजदीक, पल्लंग, उल्लंग, समुही, सामने ।

4- **रीतिवाचक:**

बिरकुल्ल, इकिल्लौ, न्यौ, होलै, जोतै ।

5- **निषेधवाचक:**

न, नही, नॉय, नई, नॉई, ना, नि, मति ।

6- **कारणवाचक:**

चवौ, कहा, काए, कूँ ।

7- **परिमाणवाचक:**

कहु, नैक, नैकु, थारौ,ख तनक, भौतु, जादा, अकट्ठे, सबु, सबेरे, सगरे, सिगरे।

8- **क्रिया विशेषण-वाक्यांश (आवृत्ति मूलक)**

कालवाचक: बेरि-बेरि, फिरि-फिरि, घरी-घरी, कैऊ पोत, रोजु-रोजु, इतने खान, अब-तब,कबऊ, जब, कबऊ, जबऊ, जब , कबऊल, पौलई ।

स्थानवाचक: चारयौ ओर, ज्हाँ-त्हाँ, कहू,कहूँ,कहूँ के कहूँ , चाँइ, जा, इत, अत, इत, बि, घाँय, ताई, जाँ-ताँ ।

रीतिवाचक: चाँय, जैसी, जैसे, तैसे, हौले-हौले, कैसे-कैसे,एसई, ऐसे ,जातरेतें, जोर जोरसे ।

समुच्चय बोधक अव्यय:

ब्रजभाषा में विभाजक समुच्च बोधक अव्ययों में के , कैतौ, चाँय-चाँय नाँप, तौ, विरोधवाचक में- पै लेकिन निमित्तवाचक में तो तौ, पै तब उद्देश्यवाचक में

जौ,जौ,कहूँ व्याख्यावाचक में तातै,तासै,ताते,तौ, तासों, संकेतवाचक में-चॉय तथा विषयवाचक समुच्चबोधक अव्ययों में कि, अब, अकि, के आदि अव्यय मुख्यस हैं ।

निश्चय बोधक अव्यय :

इसके अन्तर्गत समेतार्थक में- मैं, ऊँ, तथा केवलार्थक में बेइ,हम, तेई, ऐसीई, देखात ई आदि अव्यय आते हैं ।

मनोभाव वाचक अव्यय :

वे अव्यय मनोभावाचवक कहलाते हैं जिनका सम्बन्ध वाक्य से नहीं रहता बल्कि इनके माध्यम से वक्ता केवल हर्ष, कोशादि भाव को प्रकट करते हैं । बृजभाषा में ऐसे अव्यय निम्नलिखित है -

आहा । आह। ऊह। हा हा। दइया रे। बाप रे। राम राम। ओहो।

ए। ऐ। हॉ हॉ। भला। हिः हट। अरे। दूर। धिक्। थू थू। रे। आदि ।

गोस्वामी जी तुलसी दास जितने ही बड़े कवि है उतने ही बड़े भाषा शिल्पी और भाषा विदों अतः उनकी रचनाओं में विवधि भाषाओं की शब्दावली ही नहीं, उनको प्रस्तुत करने के लिये ध्वनियसों का भी प्रयोग हुआहै ।ध्वनि प्रयोग के अन्तर्गत तुलसी के साहित्य में निम्नलिखित ध्वनियाँ मिलती हैं -

स्वरः

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, (रि) , ए, ऐ, ऍ, ओ, औ, औ,

संयुक्तास्वरः

व्यंजनः

क ख ग घ ड

च छ ज झ ञ

ट ठ ड ढ ण

त थ द ध न

प फ ब भ म

य र ल व

न्ह म्ह ड़ ढ़ ल्ह

ष, स ह

परम्परागत रूप से ये स्वरऔर व्यंजन तुलसी की विवेच्य रचनाओं में मिलते हैं किनतु शब्द ीद में इनमें ध्वनि परिवर्तन भी हुआ है । प्रमुख परिवर्तन इस प्रकारहै -

(ऋ) तुलसी की रचनाओं में अधिकांशतः ऋ के स्थान पर (रि) का प्रयोग मिलता है । इसके बावजूद कही-कहीं (ऋ) का प्रयोग सुरक्षित है , यथा-

ऋषिराज राजा आजु जनक समान को (गी- 1/86)

अनुमासिकताः

तुलसी के काव्य मूल स्वरों के स्थान पर अनुनासिकता पाई जाती है, जिसके कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है -

अ- बहुविधि अहकत लोक फिरौ ।

आ काहे को बचन कहत सँवारी (कृ0- 53)

इ आली हौ इन्हहि बुझावौ कैसे 2/86

ई बिनु पानही गमन फल भोजन भूमि समन तरू छाही (गी-1/10)

उ राजकुँवर दोउ (गी-2/16)

ऊ ध्यान अगम विसहू भेट्यों उठि (वि-135)

ओ हौ तो नहि त्यागो (वि 177)

औ कहा जाउ कासौ कहौ (वि 179)

ए भरि अंक भेंट्यो सजल (वि 135)

ऐ राम सनेही सों तैं न सनेह कियो (वि 135)

स्वरागम :

तुलसी की रचनाओं में अनुनासिकता के साथ स्वराभाव की प्रवृत्ति भी मिलती है । क्रिया-रूपों में नउ स्वरों का आगत अधिक हुआहै । स्वरागम के अन्तर्गत उन्होंने संयसुैक्त स्वरों का प्रयोग भी बहुलता से किया हे । स्वरागम के कुछ उदाहरण इस प्रकारहै-

अन्हवाइकै (गी -1/10), अन्हवैया (गी-1/9)

व्यंजन:

तुलसी की विवेच्य रचनाओं में अनुमासिक ध्वनियों में अनुसार का ही प्रयोग कियागयाहै । ण के स्थान पर सर्वत्र न का प्रयोग मिलताहै । गोस्वामी जी की इन रचनाओं में ल्ह का प्रयोग अधि कमिलता है । यथ-

छरू छबीलो छगमनमगन मेरे कहति मल्हाई मल्हाँ ।[1]

श के स्थान पर स, स, के स्थान पर च्छ य के स्थान पर ज व के स्थानपर तुलसी की सभी रचनाओं में मिलताहै।

श	स	शील सील 7गी- 1/1} शुचि -सुचि {गी-1/1} शंक-संक {गी-1/2}
ष	ख-	सुषमा-सुखमा{गी-1/2} लवन {गी-1/9} हरखी
क्ष	छ	रक्षा-रच्छा {गी-18}, दक्ष -दच्छ, क्षमा -छमा
य	ज	जुगल {गी- 1/16} यव-जव {गी-1/2}, जोजन
व	ब	विधि-बिधि{गी-1/7}, बिधु {गी-1/9}, बेगि {गी- 1/12}
ष	शस	शेष-सेष ोषन [2] दूषन {वि-9}

ध्वनि परिवर्तन:

उपर्युक्त शब्दों में विवेच्य रचनाओं में उच्चारणगत परिवर्तन का उल्लेख कियागया है । उच्चारण के साथ ही ऐसे बहुत से शब्द है जिनमें नियमबद्ध परिवर्तन हुआ है । नियम बद्धता का आशय ह`ऐसा परिवर्तन जिनमें तत्सम से तुलसी तक ध्वनि परिवर्तन की पूरी प्रक्रिया मिलती है । ऐसे शब्दों का विवरण इस प्रकार है ।

1) तत्सम शब्दों में स्तरभक्ति - मूरति [3],आरति [4] कीरति धम करम संकलप

2- संयुक्ताक्षर -- क्ष के स्थान पर कही च्छ कही क्ख और कही छ मिलताहै ।

3- अनुनासिकिता -- अनुनासिकता के लिये तुलसी ने ड. त्र ण के स्थान पर सर्वत्र अनुसार का प्रयोग कियाहै यह प्रवृत्ति ब्रजभाषा औरअवधी क`अन्य कवियों में भी पाई जाती है । यथा-

ड पंक[1], अंक [2], निषग [3]

त्र कंजल पुज मंजु गुजारे[4] अंजन[5] रंजन[6]

ण सिखंड, मंडन [7]

न सुन्दर[8] कुदुक[9] चवंदन [10]

तत्सम शब्दावली में यथवत रहाहै अन्यत्र ण का न प्रयोग मिलता है यथा- तरणि कलाण वरूणाग्नि (वि-10), विष्णु (वि-10) चवरणारविन्द(वि-12) करूणाकरं (वि-12) निर्गुा (वि-12) किरण(वि-16) ण का न करूनाकंद (वि10), रेनु (वि-13), वि-15), हरनि (वि-19) तुलसी की रचनाओं में ऐसे बहुत से शब्द हैं जिनमें या और न दोनों का प्रयोग मिलताहै करूणा करूनाकल्याण कल्यान हरिणी हरिनी, हरण-हरन रावण रावन ह के पूर्व नासिक्य व्यंजन की स्थति में मानस में ह का उच्चरण घ हो गयसा है -

सिंहासन -सिंधासन सिंहनाद-सिंघनाद पर विवेच्य रचवनाओं में ह बना हुआहै यथा- हुआ है यथा- सीय सहित आसीन सिंहसन [11]

---

1) के लि अंक तनु रेनु पंक जनु प्रकटत चरित चोरोये (गी-1/56)

2) अंग अंग अगनित अनंग छवि (गी-2215)

3- कर सर धनु कटि निषंस (गी-2/16)

4) सरनि बिकसित कंज पुज अकारनन्दबार मंजुतर मधुर मधुकर अंजारे 7गी- 1/13

5) नयन मंजु अंजन सुम खंजन) गी-1/32

म्ह/ न्ह/ ध्वनियसा म और न के महाप्राण के रूस्प में तुलसी साहित्य में महतव पूर्ण है इनमें न्ह का प्रयोग को गोस्वामी ज की सीाि रनाओं के विशेष रूप से मिलताहै ।

म्हा- कुम्हिलैहे कुम्हड़े (वि-239), तुम्हहि (वि-3/6)

न्हा- इनहहि (वि0-200), वि-102), कीन्हों (वि-102), लीन्है (गी-2/4), नयनन्हि (गी-1/78), अन्हवाई (कृ- 13), जिन्ह 7गी- 3/6), खनिन्ह (गी- 3/6),

ड/ड़/ढ/ढ़/ शब्द के मध्य में ड का ड़ और ढ का ढ मिलताहै केवल अनुस्वार होने पर ही उ का प्रयोग शब्द मध्य में हुआ है ।

ड डग्यसो 7गी- 1/89)

ड अनुस्वार के साथ- दो दंड (गी-1/89),

ड ड़ बड़े 7गी-1/78), ताड़का (गी-1/67), पावड़े (गी- 1/61)

ढ ढोटा (गी- 1/64)

ढ़ चढ़ावौ (गी- 1/89), बढ़ाई (गी- 1/61), ठाढ़े (गी- 1/43)

श के स्थान पर स का प्रयोग-

ब्रज और अवधी को सामान्य विशेषता के स्थान पर स का प्रयोग है । तुलसी की रचनाओं में सर्वत्र यह प्रवृत्ति मिलती है ।

संभु सेस सादर[1] सिंगार [2] सीाासील[3] सुरेस [4]

(ब) का शब्दादि में ब- बिपुल (गी-1/74) बीर (गी- 1/74) बिक्स (गी- 1/67)

बिबुध (गी-1/14), बानी (गी-1/4),

1- सारद सेस सीाु निसिबास चितत रूप (गी-1/108

2- सुखमासार सिंगार सर कर(गी-1/107

3- सीाा सील सनेह सोहावन (गी-1/107

4- आपनो कोदि सुरेस पठाए (कृ0- 18)

दीर्घाकरण:

बेलि बेली (गी-18), चारी (गी- 1/22), सेतु (वि-38), हेतु (वि-38), रामगुणगाथ गाता (वि-39), किरण केतु (वि-40), विराधार (वि-43), निवाजा(वि-43) समाजा (वि-44), राया (वि- 47),

सरलीकरण- लोकप (गी-42), भाग (वि-1/2), ठहरण (गी-1/4), गलानी (गी-1/4), पियासी (गी-1/8), जनम (गी-1/9), निरधन(वि-37) ।

अनुनासिकी करण: बाँह 7गी 1/26), अहंकार (वि-13)

संयुक्ताक्षर को पूर्णता -

मुकुता (गी- 1/2), रतन(गी- 1/2), अदसरा (गी-1/3),

द्वित्तीकरण- ललाट-लल्लाट (वि-11)

य वा ई प्रयोग - उपाय-उपाई (वि-127)

अब का औ - औमुज औसत (वि-107)

प्रयुक्त ध्वनियों का वर्गीकरण :

प्रयत्न	प्राणत्व	द्वयोष्ठ्य	दन्त्य	वर्त्स्य	तालव्य	मूर्धन्य	कंठ्य	स्वरयंत्र
स्पर्श	अल्पप्राण	प ब	त द		च ज	ट ड	क ग	
	महाप्राण	फ भ	श ध		छ झ	ठ ढ	ख घ	
नासिक्य	अल्पप्राण	म	न	भ	ण	ड.		
	महाप्राण	म्ह	न्ह					

पाशिर्वक	अल्प प्राण		ल्			
	महाप्राण					
लुण्ठित	अल्पप्राण		र्			
	महाप्राण					
उत्क्षिप्त	अल्पप्राण			ड़्		
	महाप्राण			ढ़्		
संघर्षी	अल्पप्राण		स्	श	ष	
	महाप्राण					ह्
अर्धस्तर		व		य्		

उपर्युक्त तालिका में प्रस्तुत ध्वनियों में ड़्. त्र ण ध्वनियाँ न के अनतर्गत व्यवहृत हुयी हं। श तथा ण काप्रयोग केवल तत्सम शब्दों में ही हुआहै।

प्रयोग स्थितियाँ:

।)	कंठ्य	आदि	मध्य अंत	
	क-	केशव	मकर	लोक
ख-	खोरि	निरखत	सिख	
	ग-	गरम	आगम	कुरम
	घ-	घरो	रघुपति	अघ

तालव्य:

च-	चरन	सवोचत	सकुचि
छ-	छीके	बिछोही	कछु
ज-	जुबजी	गरजति	लीजै
झ-	झुलावौ	खिझाई	रीझि

मूर्धन्य-

ट-	अरै	बाटिकनि	कोटि
ठ-	ठोकि	उठहु	सुठि
ड-	डोल्यसो	लाडिले	कोदंड
ढ	ढोटा	पढ़त	गाढ़े

दन्त्य:

त-	तन	चौतनी	कीरति
थ	थाके	बिथारे	नाथ
द	देह	मदन	प्रमोद
ध	धुनि	मधुर	विधि

द्वयोष्ठ्य:

प	पुलक	परसपर	जपि
फ-	फरनि	सुफल	तलफ
ब-	बगरे	अनुबर्दान	सुकबि
भ-	भँवर	भमरी	गरभ

म	महिमा	कामतरू	राम
न-	नयन	कनक	रावन
र-	रखवारे	नरेसठौर	
ल-	ललित	ललित	फूल
स-	सुमुखि	किसोर	सारस
ह-	हेरी	मनोहर	दहे
व ब	बिबरन	कोबिद	कबि
य ज	जव	मरजाद	

व उ चाव-वचाउ दुराउ (गी-5)रनभाउ(गी-6/12),

य और व का प्रयसोग गोस्वामी जी ने स्वर और व्यंजन दोनो रूपों में किया है । इसीलिये ये विवेच्य रचनाओं में अर्द्धस्वर माने गये हैं -

स्वर-संयोग-

अ ई निरमई 7गी-1/96),लई (गी- 1/96), सरसई (गी-1/96), सुचिवतई (गी- 1/96), निलजई (वि- 25), रई वि- 252), बई(वि- 252), हई(वि- 252), के प्रयोग अवधी रचनाओं में अधिक मिलते हैं । इसके विपरीत विवेच्य रचनाओं में आ के साथ ऊ का संयोग अधिक है।

आई- आई (गी-3/6), नाई (गी-2:6), लुगाई (वि-35), बरिआई (वि-35), निकाई(वि-35),

आउ उपाउ (गी- 7/24), चाउ (गी-7/24), गाउ (गी- 7/24), बनाउ (गी-7:24), अवाउ (वि-100), सखाउ (वि-100), पछताउ (वि-100), चरचवाउ (वि-100), पसाउ (वि-100),

आए- अन्हवाए (गी-1/26) जेवाए (कृ- 1/13),

इअ- अमिअ (गी- 1/28)

इआ पिआस (गी- 2/78)

उकारान्त की प्रवृत्ति :

तुलसी की सभी रचनाओं में अकारान्त का उकारान्त करने की प्रवृत्ति अवधी औरब्रजभाषा के नियम के रूपमें पाई जाती है । यह प्रवृत्ति कहीं5कहीं तत्सम शब्दों के रूप में परिवर्तन में भी व्याप्त है-

तनु 7गी- 1/57), पगु (गी- 1/60), आजु (गी-1/67), लाहु (गी-1/79), कुपालु (वि-1/25), खारू (वि-255), देहु (वि-255), दयालु (वि-255), हितु (वि-254),कृतु (वि-255), धृतु (वि-255), रोषु (कृ-11)

1- गी-2/62
2- गी-1/73
3- गी51/72
4- गी-1/18
5- गी-1/8
6- गी-7/3
7- गी-1/74
8- गी-1/74
9- गी-1/69
10-11- गी- 1/73

ओकारान्त - विवेच्य रचनाओं में आकारानत शब्दों के ओकारान्त की प्रवृत्ति भी मिलती है -दूजो द्धवि- 254) भरासो (वि- 254) धोया (वि- 245), शेयो (वि- 245), सोयो (वि-245), हियसो (गी-1/79),

ओका औ-- नवाबों नवावों (गी- 1/89

समग्र रूप से कहाजाताहै कि गोस्वामी तुसीदास की भाषा में ध्वनिकी दृष्टि से अनेक परिवर्तन हुएहैं तत्सम शब्दों की बहुलता के बाबजूद गोस्वामी जी ने संसकृत शब्दों के तत्सम रूपका किंचिवत धवनि परिवर्तनकरके हिन्दी करण कर दियाहै । इसप्रकार हिन्दी के शब्द कोश में तत्सम और अर्द्व तत्सम दो शब्द रूप प्रस्तुत हुएहैं। उनके तद्भव रूप भी तुलसी ने प्रयुक्त किए हैं । इस तरह तत्सम तद्भव और अर्द्धतत्सम रूपों में शब्द कोशीय विस्तार की दृष्टि से तुलसी का विशेष महत्व है ।

षष्ठ अध्याय

शब्द सौन्दर्य :

शब्द का अर्थ है ध्वनि करना अर्थात जो सुनायी पड़े वही शब्द है । इस तरह शब्द दो प्रकार के होते हैं ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक/ ध्वन्यात्मक शब्द वे हैं जो किसी भी रूप में ध्वनित होकर वर्ण कुहरों में प्रविष्ट होते हैं लेकिन वे कुछ सोचने पर समझने की स्थिति नहीं लाते- जैसे मोटर की आवाज, बा दल की आवाज किसी चवीज का गिरना घण्टे की आवाज आदि । वर्णात्मक शब्द उन्हें कहते हैं जिसमें ध्वनियों में कुछ संकेत होते हैं जो भाव या विराम शब्द करने वाले से शब्द सुनने वाले तक पहुचाते हैं । वर्णात्मक शब्दों में अर्थ प्रतीति आवश्यक मानी गयी है । महर्षि पन्त जी ने कहा है-

प्रतीत पदार्थ को लोके ध्वनिः शब्द इत्युच्यते [महाभाष्य]

जिन शब्दों में अर्थ-प्रतीति की क्षमता होती है वही काव्य के क्षेत्र में शब्द कहलाते हैं इसे ही शब्द की शक्ति कहा जाता है । ये शक्तियाँ भी तीव्र प्रकार की होती है । अभिधा ,लक्षणा और व्यंजना ।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । वह प्रारम्भ से ही चिन्तन शील रहाहै । चिन्तन के साथ कलात्मकता की मानव मात्र की प्रवृत्ति रही है । अतः चमत्कार तथा रमणीयसता मानव मस्तिष्क को आदिम युग में वत्ति है सभ्यता के विकास के साथ रमणीतयसा चमत्कार और विदग्धता की प्रवृत्ति मनुष्य के मन में विकसित होती गयी । इस क्रम में सबसे पहले तो अभिधा का ही जन्म हुआ किन्तु चमत्कार की प्रवृत्ति ने वाच्यार्थ में अन्य अर्थो की उद्भावना की और अभिधाके साथ भिन्न अर्थो का प्रयोग भी बढ़ा। इससे

शब्द की शक्ति विकसित हुयसी । इसे ही शब्द की लक्षणाशक्ति कहा गया विदग्धता की प्रवृत्ति बढ़ने के साथ शब्द में लक्ष्यार्थ और वाच्यार्थ से भी आगे अर्थ चेतना की क्षमता व ज्ञान हुआ । जब शब्द के वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भी आगे प्रतीयमान तक अर्थ द्योतन कियसा तो शब्द की एक नयसी शक्ति व्यंजनाका विकास हुआ । यह व्यंजना सहृदय जन की संतुष्टि में सहायसक हुयी । अर्थात शब्द ने मर्म को समझने के लियसे सहृदयता को कसौटी मानागया । व्यंजना के शब्द को श्रोता,वक्ता, देश, काल और परिसिथिति के परिप्रक्ष्य में ही समझा जा सकत है ।

शब्द शक्ति के विवरण के साथ रमणीयसता भी आीय । भाषा का क्षेत्र विस्तारतो हुआ ही साहित्य का विकास भी प्रारम्भ हुआ । सहृदयसजन संबंध रचवना के लिये जिस प्रतीयसमान अर्थ की प्रतीति आवश्यक मानी गयी उसके लिये रमणीयसार्थ प्रतिपउदक शब्द को वाक्य के लिये आवश्यक माना गया । इस प्रकार अर्थ रमणीयता के साथ शब्द रमणीयसता पर बल दिया जाने लगा ।शब्द रमणीयसता के लिये शब्द के अनेक रूपों का विकास हुआ। इसप्रकार शब्द को कलात्मक रूपमें प्रयसोग करने की प्रवृत्ति इतनी बढ़ी कि शब्दालंकारों की योजना तक होने लगी । इस तरह मात्र भावों और विचारों को पहुँचाने वाले शब्दों के प्रयोग की चारूता भी महत्वपूर्ण हो गयी ।

काव्य में इस रमणीय शब्द योजना का विशेष महत्व है वही शब्द सामान्यस बोलचवाल में जितना प्रभाव शाली नहिीं होता कवि के हाथ में आकर कई गुण अधिक प्राथ व्यंजक हो जाताहै और यह अर्थ व्यंजकता इतनी गहरी होती है कि अन्य शब्द उसका विकल्प तक नहीं प्रस्तुत कर पाता। शब्द चमत्कार की यह प्रवृत्ति या तो मानव मात्रा में होती है पर कवि में धिक होती है कवि यदि श्रेष्ठ हो तो वह सामान्य शब्दों

को ही ऐसा संस्कार दे देताहै कि वे अपनी नई झाकिया प्रस्तुत करने लगते हैं । गोस्वामी तुलसी दास महाकवि थे । अतः उनके शब्द नियोजन में यह दृष्टि सर्वत्र मिलती है । विवेच्य रचनाओं में रसानुकूल शब्द योजना के लिये उनहोंने जो प्रयोग किये हैं उनसे साधारण शब्द भी दिव्यसता को प्राप्त हो गया है इसके लिये कुशल कविजो नियोजन करते हैं उनसे गोस्वामी जी शब्द योजना को परीक्षितकरने पर प्रतीत होता है कि वे भाषा संस्कारऔर भाषा चमत्कार में विशेष रूप से सफल रहे हैं । इसदृष्टि से विवेच्य रनाओं की शबदाली का अध्ययन इस रूप में किया जा सकता है।

(क) शब्द आवृत्ति :

शबद आवृत्ति काव्यस में दो रूपों में पायी जाती है- वर्ण आवृत्ति और दूसरा पूरे शब्द या पद की आवृत्ति विवेच्य रचनाओं में दोनों प्रकार की आवृत्ति मिल जाती है।

वर्णावृत्तिः

1- केहरि कंध काम करि करवर बिपुल बाहु बल मारी ।[1]

2- सहस समूह सुबरहु सरिल खाल समर सूरमर मारे ।[2]

3- सुनि सानन्द सराहि सपरिजन बारहि बार विहारे ।[3]

4- ईसमि दिगीसनि जोगीसनि मुनीसनिहूँ । [4]

5- मानमद मदन भत्सर मनोरथ मथन मोह अंभोधि-मंदर-मनस्वी।[5]

1- गी- 1/16
2- गी- 1/60
3- गीं- 1/67
4- वि०प० 246
5- वि०प० 55

भूरिभूषण अनुमंत भगवन्त भव भजन भयद भुवनेश भारी ।

भावनातीत भववंद्य भवभक्तहित भूमिउद्धरण भूधारण धारी ।।

वरद वनदाा बागीश विश्वातमा विरज वैकुण्ठ मंदिर बिहारी ।

व्यापकं व्योम वंदारू वामन विभो ब्रम्ह विद ब्रम्ह चिंतापहारी ।

सहज सुन्द सुमुख शुभ सर्वदा शुद्ध सर्वज्ञ स्वच्छन्दचारी ।

सर्वकृत सर्वभृत सर्वानि सर्वहित सत्य संकल्प कल्पान्कारी।

नित्य निमेहि निर्गुण निरंजन निजानन्द निर्वाण निर्वाणपता।

निर्भ्रानन्द निःकंप निसीम निर्युक्त निरूस्पाधि निर्मम विधाता।[1]

पद की आवृत्ति :

1- आछे आछे पीछे बीछे बिछौनी बिछाइकै ।[2]

2- ललित ललित लघु लघु धनतु सार।[3]

3- खेलिदखेल सुखेलनि हारे ।

उतरि उतरि चवुचुकारि तंरगनि सादर जाइ जोहारे ।[4]

4- कंदुक कलि कुसल हय चढ़ि चवढ़ि मन कसि कसि होंकि होंकि खाये[5]

वर्ण सन्निधि एवं पदावृन्ति की दृष्टि से गोस्वामी जी के शब्द शिल्पी स्वरूप का उद्घाटन गीतावली के इस छन्द से होता है :-

---

1- वि0प0 56
2- गी 1/84
3- गी-1/43
4- गी-1/46
5- गी-1/45

छोटी छोटी गोड़ियाँ अँगुरिया छबीली छोटी

नख जोति मोती मानो कमल दलनि पर ।

ललित आगन खेलैं ठुमुक ठुमुक चलै।

झुझुन झुझुनु पाय पैजनी मृदु मुखर ।।

किंकिनी मलि कटि हाटक जटित मनि

मंजु कर कंजकिन पहुचिया रूचिरता ।।

पिसयरी झीनी झगुली सावरे सरीर खुली

बालक दामिनि ओढी मानो बारे बारिधिर

उर बद्यानहा कंठ कठुला झडूले केश,

मेढ़ी लटकन मसिबिन्दु मुनि मन हर ।

अंजन रंजित नैन चित चौरे चितवनि,

मुख सोभापार वारौ अमित असमसर ।।

चुटकी बजावती नचावती कौसल्यामाता,

बालकेलि गाविति ल्हावति सप्रेम-भर।

किलकि किलकि हँसै द्वै द्वै दंतुरिया ब

तुलसी के मन वसै तोतरे बचन बार

विनयपत्रिका में द्विरूक्तियों का प्रयोग भी शब्द सौन्दर्य को बढ़ाताहै-

राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे ।[1]

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे ।[2]

राम राम राम राम राम राम राम जपत ।[3]

राम कीराम राम ीराम ीराम रमु रमु रमु राम कीराम रमजपु जीहा।[4]

नाद-सौन्दर्य :

झिल्लि झाँझ झरना उफ नव मृदंभ निसान ।[1]

डोलत डाँगर डाँग ।[6]

झारना झरत झिंग झिंग झिंग जलतरंगिनी ।[3]

चरया चरिनि सो चरचवी ।[4]

वाग्वैदग्ध्य :

तुलसी अपने वाकचातुर्य का उपयोग विशेष परिसीतियों में विशेषढंग से और विशेष मात्रा में करते हैं जो उनकी अभिरूचि तथा अधिकार की व्यापकताका द्योतक है । इनमें से कुछ प्रमुख विशेषताओं परप्रकाश डालने वाली बातों का संक्षिप्त उल्लेख कियाजाता है ।

वाकृचातुर्य के खेत्र में चित्रॉकन वर्णन, हास्य, व्यंग्य, विरोध, खीझ,विस्मय तथा आत्मविश्वासआदि विभिन्न विषयों एवं भावों को अधिकाधिक सजीवन एवं प्रभावशाली रूपमें उपस्थितत करने के अभिप्राय से किए गये प्रयोग लियसे जा सकतेह ैं उनमें सबसे अधिक ध्यानदेने योग्यस बात यह है कि इन प्रयोगों में कविकी दृष्टि किसी वस्तुसिति को पाठकों के लिये अधिकाधिक स्पष्ट एवं सुबोध बनाने पर ही अधिक जानपड़ती है न कि उनको अपनी हवाई छलाँग से चकाचौंध अथवा स्तंभित कर देन` की ओर । वैसे तो ऐसे बहुत से प्रयोगों का शास्त्रीय विधान भी मिलताहै जिनका संकेत पीछे शब्दशक्तियों के

1- गी- 2/47
2- वही
3- वही 2/43
4- वही- 7/27

उपयोग के सूचक स्थलों से बहुत कुछ मिल जाताहै किन्तु यहाँ पर हमारा अभिप्राय केवल ऐसे ही प्रयोगों से है जिनमं चमत्कारको काव्यशास्त्रीय लक्षणों से सर्व्था अपरिचिवत सामान्यस पाठक अथवा श्रोता भी ग्रहण कर लेता है।

चित्रांकन में उपलब्ध वाकचवातुर्य का जो रूस्प दृष्टिगोचवर होताहै,उसके भीतर उन प्रसंगों में व्यवहृत प्रयोग आते हैं जहाँ पर कवि किसी पात्र देश अथवा दाताकी रूपरेखा प्रस्तुत करने के उद्देश्य से कोमल अथवा उग्र रमणीय अथवा भयसानक प्रीााव की सृष्टि करने वाली शब्दावली कासहारा ले ताहै । वातावरण की विभिन्नता के अनुसार इस शब्दावली में भी परिवर्तन दिखाई पड़ताहै ।

छोटी छोटी गोडिया छबीली छोटी, नख ज्योति मोती मानो कमल दलनिपर।
ललित आगन खालै ठुमुक ठुमुक चवलै झुझुनु झुझुनु पायस पैजनी मृदुमुखा।।
किंकिनी कहित कटि हाटक जटित मनि,मंजु कर अंजनिपहुँचियाँ रूचिरता।।
पियसरी झिनी झगुली साँवरे सरीर खुल बालक दामिनि ओढ़े मानो बारे बारधिर
उर बनघ्नहाकंठ कठुला झडूले केस,मेढ़ी लटकनि मसि बिन्दु मुनिमनहर।।
अंजन रंजित नैघ्न चित चारै चितवनि मुख शोाा पर वारौ अमित असम सर
चुटकी बजावती नचावती कौसल्यामाता ,बालकेलि गावति मळलावति सुप्रेमभर।।
किलकि किलकिहसे द्वै द्वै दुतुरियालसै तुलसी के मन बेसे तोतरे बचन बर[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रयुक्त ठुमुक-ठुमुक, पहुचिया,झीनी झंगुली, बघनहा, कटुला मेढ़ी, अंजन, चुटकी बजावती नचावती मळलावति,किलकि-किलकि तथा द्वै द्वै दंतुरिया इत्यादि टेढ़े अक्षरों वाले अंशों में गृहस्थ परिवार के सरल एवं वासल्यपरक बोल-

---

1- जी-1/30

चाल की जिस सरल शब्दावली को जड़कर तुलसी ने अपने चित्राकन में प्राण फूके हैं वह उनके वाकचवातुर्य की ही द्योतक है ।

यह तो एक सरल एवं कोमल वातावरण के चित्रांकन में व्यवहृत शब्दावली में निहित वाकचातुर्य का उदाहरण हुआ । अब एक उग्र एवं भयानक परिस्थिति के चित्रांकन में जिस प्रकार के प्रयोगों का समोवश करके तुलसी प्रीाव वर्द्धन का प्रयत्न करते हैं उसमें हनुमान जी के विकट रूप का चित्रण प्रयुक्त पंक्तियों में द्रष्टव्य है।

जयति जय वज्र तनु दसन नख मुख विकट चंद मुख दंड तरू सैल मानी।

समर तैलिक यंत्र तिल तमीचवर निकर पेरि डारे सुभट घालि घानी ।।

जयति दसकंठ घटकरन वादिरनाद बदन कारनकालनेमि हंता ।

अघट घटनासुघर सुघर विघन विकट भूमि पाताल जल मगन गंगा।।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रयसुक्त वज्र तनु, विट,भुज ,चन्द्रीाुज,दण्ड अघट घटना सुघट, सुघट विघटन विकट आदि प्रयोगों में जिस उग्रता और भयानकता काचित्रण है वह देखते ही बनता है।

गीतावली के अन्तर्गत राम वनवास के अवसर पर संभंत के प्रति जब कि वे राम को बिना साथ लिए हुए उनहें वन में पहुचवाकर लौट आए है मरवासन्ना दशरथ की निम्नाकि उक्ति से उनकी मनस्थिति भी व्यंजना अभिप्रेत है।-

सुनि सुमंत कि आनि संनदर सुअन सहित जिआउ ।

दास तुलसी नतरूं मोको मरण अमियस पिआउ ।।[2]

1- वि- 25

2- गी- 2/50

यहाँ पर मरण अमिय दशरथ के यि ऐसी परिस्थिति में जीवन की अपेक्षा मरजही अधिक सुखदायक होने से यहाँ पर मरण को ही उनके लिये अमृत कहा गया है के व्यंजक प्रयोग के साथ साथ दशरथ की वियोग वेदना की तीव्रता भी द्रष्टव्य है।

वनवासी राम के वियोग में दुखित कौशल्या के निम्नलिखित शब्द इसप्रकार है-

हाथ मीहजिवो हाथ रहयो ।

पतिसुर पुर सियराम लखन बन, सुनि ब्रतभरत गहयो।

हौ रहि घर मसाण पावक ज्यों मरिबोई मृतक दह्यो ।।[1]

यहाँ पर कौशल्या द्वारा यह उक्ति कि मैने रमजानकी अग्नि के समान मृत्यु को ही मृतक बनाकर जला दियाहै अतः मेरा मरण ही अब सीव नहीं व्यंग्य रूप में कितनीगहरी भाव तीव्रता को व्यक्त करती है ।

हासय और विनोद का रूप कही-कहीं ठेठ ग्रामीण शब्दों अथवा वाक्यों की विशिष्ट योजना के भीतर भी देखने को मिलता है ।इनमें प्रसंग के गम्भीर रहते हुए भी हास्य का एक हल्का सा आभास दे देना तुलसी के वाकचातुर्य्स का ही द्योतक है । उदाहरणार्थ खसम भयसे और पूतभये भाय के प्रयोग-

सिलाछोरहुक्त अहिल्या भई दिव्य देह,मुन पेखो पारस के बंकरूह पाय के।

राम नेप्रसाद गुरू गौतम खसम भयसे।रावेरहु सतानंद पूतभये मायके ।।[2]

व्यसंग्य से संबंधित शब्दावली के विश्लेषण में जाने के पूर्व इतना निर्देश आवश्यक होगा कि तुलसी में हास्य और विनोद की प्रवृत्ति जितनी है उससे कहीं अधिक

1- गी- 2/84

2- गी- 1/65

मात्रा में व्यंग्य के द्वारा अपनी बातें कहने की अभिरूचि दृष्टिगोचर होती है इस प्रवृत्ति अथवा अभिवृत्ति के पीछे प्रायः दो ही कारण हो सकते हैं एक तो किसी ऐसी विशेष परिस्थित का आगमन , जिसमें कोई बात सीधे ढग से कहने में अशिष्ट लगती और इसलिये उसे टेऐ मेढ़े शब्दों या वाक्यों में प्रस्तुत करनाही अधिक प्रसंगानुकूल हो । दूसरे यसह कि अपने अभिप्राय के प्रकाशनमें किसी बात का सरल औरअकटिल रूप कदाचित उतनी प्रीाव सृष्टि करने में असमर्थ जानपड़ता हो इनदो परिस्थितियों के अभाव में यदि कही-कहीं ऐसी व्यंग्यमयी भावा के दर्शनहोते हैं तो उसे व्यसक्तिगत अभिरूचि का परिणाम कहना चाहिये । तुलसी में इसप्रकार के प्रयोग अपेक्षाकृत बहुत अल्प संख्या में मिलेगे । साथही यह भी स्पष्ट कर देना उचिवत होगा कि व्यंग्य का अधिकांश तो लक्षणा और व्यंजनानामक शब्द शक्तियों के ही अंताति आ जाता है प्रस्तुत उदाहरणमें व्यंग्यका सामान्यस भरण कईप्रयुक्त हुआ है ।

तपतीरथ उपवास दान मख, जेहि जो रूचे करो सो ।

पाएहि पै जानिबो करमफल, भरि भरि वेद परोसो ।[1]

उपालंभ की व्यंजनाकरने वाले प्रयोगों के अनतर्गत तुलसी ने स्वयं अपने आराध्य के प्रति तथा अन्य पात्रों के परस्पर दिये गये उपालीा का चित्र खींचते हुए विचित्र ढंग से शब्दावली का व्यपहार किया है ।

तुलसी ने अपने आराध्य 'राम' के प्रति अपनी जिन अल्हड़ उक्तियों द्वारा नाना प्रकारके उपालंभ दिये हैं उनकी सूक्ष्मता और रोचकता निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है

- केसव कारन कौन गोसाई ।

जहि अपराघ असाधु जानि मोहि तजेहु अज्ञ की नाई ।।

परम पुनीत संत कोमल चित तिनहि तुमहि बनि आई ।

तौ कत पिप्र व्याध गनिभहि तारेहु कहु रही समाई ।।
जद्यपि नाथ उचिवत न होत अस प्रीु सों करौं ढिठाई ।
तुलसदिास सीदत निसिदिन देखत तुम्हारि निठुराई ।।[1]
वह तुलसिदास सुनु रामा लूटहिं तसकर तव धामा।
चिवता यसह मोहि अपारा । अपज्स नहि होई तुम्हारा।।[2]
मेरे बासंगहु न पूजि है द्वै गए हैं होने खल जेते ।
हौ अवलौ करतूति तिहारिथ चितवत हुतो न रावरे चेते ।
अब तुलसी पूतरो बाँधिहै सहि न जात मो पैपरिहास एते ।।[3]
तुलसी कही है साँची रेख बार बार खाँची,
ढी किये नाम महिमा की नाव बोरिहो ।[4]

उपर्युक्त पंक्तियों में व्यवहृत शब्दावली के अन्तर्गत जिन भावनाओं का प्रकाशन तुलसी ने कियाहे वे और सीधे ढंग से भी व्यक्त की जा सकती थी किन्तु शब्दों और वाक्यों के जिन विशेष रूपों के प्रयोग में कवि का वाकचवातुर्यप्रकट हुआ है, उसके अभाव में उक्ति की रोचवकता एवं प्रभावात्मकता दोनों ही समाप्त हो जाती ।

श्री कृष्ण गीतावली के अनतर्गत श्रीकृष्ण को यशोदा के प्रति और गोपियों की उद्दव के प्रति दी गई उपालंभोक्तियाँ ली जा सकती है जो किसी बात में भी सूरदास व मंददास आदि कृष्णभक्ति कवियों की अपेक्षा किसी प्रकार भी कम प्रीावशाली नहीं किया जा सकती उनके विशेष विवेचन में न जाकर केवल एकाध उदाहरण देकर ही हम संतोष करेंगे । टेढ़े अक्षरों वाले अंश विशेष रूप से ध्यान देने यसोग्य है -

---

1- वि-192
2- वि-125
3- वि-282
4- वि-258

या ब्रज में लटिका घने हौं ही अन्याई ।

मुँह लाये गूड़िहि चवढ़ी अंतहु आहिरिन तू सूधी करि पाई ।[1]

धान को गांव पमार ते जानिय ज्ञान विषसय मन मोरे ।

तुलसी अधिक बहेन रहै रस मूलरि को सो फल फोरे ।[2]

फल अहिलै ही लदयो ब्रजबासिन्ह अब साधन उपदेसन आए ।

तुलसी अलि अजहु नहिं बूझत कौनहेतु नन्दलाल पठाए ।।[3]

मुँह लाए मुड़हि चढ़ी में बालकृष्ण की यशोदा के प्रति तथा शेष रेखांकित अक्षरों वालें अंशों में व्यर्थ में ज्ञानोपदेश करने वाले उद्दव के प्रति भक्त गोपिकाओं का उपाकंभ विद्यमानहै -

लोकोक्तियाँ और मुहावरे :

किसी रचनाकार की भाषा प्रयोग क्षमता का परिचय रचना में आयी शब्दावली के साथ लोकप्रचलित कहावतों और मुहावरों क`प्रयोग से भी मिलताहै । लोकोक्तियों औरमुहावरों क`प्रयोग से भाषा में चारूता तो आती ही है अर्थोदघटन क्षमता भी बढ़ जाती है । इसके साथ ही लोकजीवन से रचनाकार के जुड़ाव की परख भी होती है गोस्वामी तुलसीदास अपने युग और समाज के सजग पारिखी और समन्वसय के लिये सचेष्ट लोकनायक थे लोकनायक वही हो सकता है जिसे अन्याय सामाजिक जीवनके संदर्भो के ज्ञान के साथ हरवर्ग की भषा में पैठ हो । क्यों कि भाषा के माध्यम से किसी भी वर्ग

1- श्री कृ0 8
2- श्रीकृ0 44
3- श्री कृ0 50

के साथ पैठ सहज में ही हो जाती है । वर्गीय भाषा की पहचान मुहावरों और लोकोक्तियो ं से होती है । लोकोक्तियाँ उस समाज की सामान्यीकृत भावनाओं के आधार पर निर्मित होती है । गोस्वामी तुलसीदास ने विराट जीवनानुभव से उनको जाना और निर्मित भी किया है लोकोक्तियों और मुहावरों की दृष्टि से उनकी क्षमता का परिचय नीचवे तालिकामें दिया जा रहा है -

विनयपत्रिका में प्रयुक्त लोकोक्तियाँ और मुहावरे

1) तुलसी परोसो त्यागि मांगे कूर कौर रे (66)

2) कहै को राउरोर रे (69)

3) बेचे खोटोदाम न मिलै (7।

4) हाथी स्वान लेवादेई (75)

5) मीजो गुरूपीठ (76)

6) बाह गहि (76)

7) सिरधुनि धुनिपछितात मीजिकर (83)

8) मीजिहाथ (84)

9) सर खानतहि जनम सिरावो (88)

10) टूटत अति आतुर द्ध90)

11) परसत परवारोदफारो (94)

12) दसन तोरि जगगमनके (96)

13) रेनु की रज बटत (129)

14) दांत पीसि (139)

15) चढ़त सिर ऊपर (139)

16) कुम्हड़े की जई (139)

17) कहौ कौन मुहलाइके (148)

18) मन मारे (147)

19) जाघु उघारे (147)

20) जारे छल छाती (157)

21) दई पीठ (149)

22) परयो न छठी(155)

23) लाज अचवईघोरि (158)

24) यह अवतार बीते का पुनिके पछिताये (201)

25) कोढ में की खाजु (219)

26) सावन के आघहि ज्यो सूझत रंग हरो (226)

27) चाटत रहयो स्वान पाती ज्यो कबहु न पेट भरो (226)

28) एक गाँठि कइ फेरे (27)

29) भौतुआ भौर को (29)

30) बूभयौ राम बनी ताँति (233)

31) डासत ही गई बीति निसा सब कबहुन नाथ नीद भरि सोयो (245)

32) मूड़ चढ़े (249)

33) तुलसी कही है साची बार बार देखखाँची (258)

34) दियो छाती पबि (259)

35) छैहौ माखी घीय की (262)

36) ऊसर कैसो वीरसो (264)

37) कलपरै (264)

38) चवीन्हो वचोर जिय मारिहै (266)

39) पेट खलायो (276)

40) मूँड मारि (276)

कृष्ण गीतावली

1) मुह लाए मूजहि चढ़ी (8)

2) भलो न भूमि पर सादर छीबो (9)

3) ठगौरी लाई (8)

4) बायसनो दियो धर नीके (10)

5) हैहै कींच कोठिला धोए (11)

6) जल बूडत अवलम्ब फेन कौ (33)

7) गाड़े भली उखारे अनुचित (40)

8) कहरौ है पछोरन छूछो (43)

9) स्रमजेहै गगन कूप खनिखोर (44)

10) धान को गांव पयार ते जानिय (44)

11) गूलरि को सो फल फोरे (44)

12) पाहनो पसीजै (45)

13) सिर धरि लीजै (46)

14) तुलसी त्यों त्यों होइमी गसई ज्यो ज्यो कामरि भजै (46)

15) पूछ सों प्रेम विरोध सीग सो (49)

16) मेनके दसन कुलिस के मोदक कहत सुनत बौराई (51)

17) आक दुहन तुम कछो (51)

मुहावरे और लोकोक्तियाँ :

गीतावली में अनेक स्थानों पर लोक-कजीवन की सफल और सटीक अभिव्यक्ति हुई है । इसका मुख्य श्रेय लोक-व्यवहार में प्रयुक्त, लोक की भाषा के ही मुहावरे, लोकोक्ति और कहावतों का प्रभावी प्रयोग है। मुहावरा और लोकोक्ति के प्रयोग में कवि का मुख्य उद्देश्य गागर में सागर भरने वाली प्रवृत्ति रहती है । इनसे जीवन-सत्य की सजीव झाँकी व्यंजित हो जाती है। मुहावरे, लोकोक्तियाँ और कहावतें वास्तव में जन-जीवन का नीति शास्त्र है । इनमें मानवीय चिन्तन परम्परा से सघन होता आया है। इनके द्वारा सांसारिक व्यवहारपटुता,और सामान्य व्यवहार-बुद्धि का परिचय प्राप्त होता है। मुहावरे,लोकोक्ति आदि अर्थ-गौरव को तो संचित करते ही हैं, इनकी ध्वनि और व्यंजना भी बड़ी मार्मिक होती है । शब्द शक्ति का विस्तार इन मुहावरों तथा लोकोक्ति प्रधान काव्य-रचना के माध्यसम से सम्भव है । वास्तव में ये लोक-जीवन की सूत्र-शैली के अन्तर्गत आते हैं। गीतावली में पग-पग पर मुहावरे, लोकोक्तियों और कहावतों का प्रयोग हुआ । जिनके द्वारा बड़ी सफलता से तुलसी ने लोक-जीवन की अन्तः सलिला भावना को व्यंजनात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया है। गीतावली के अर्थ-व्यंजना प्रधान मुहावरे एवं लोकोक्तियों का यहाँ संग्रह किया गया है ।

मुहावरात्मक भाषा के प्रयोग से भाषा की शक्ति चमत्कार पूर्ण होकर पाठक या श्रोता तक पहुँचती है । मुहावरे और कहावतों में मस्तिष्क को प्रभावित करने वाली शक्ति विद्यमान रहती है। ये भाषा के लाक्षणिक प्रयोगों से युक्त होते हैं जिनके बल पर व्यंजना और ध्वनि का क्षेत्र विस्तृत होता है। गीतावली में प्रयुक्त मुहावरे, लोकोक्तियों तथा कहावतों का संग्रह प्रस्तुत है :-

गीतावली के मुहावरे , लोकोक्तियाँ और कहावतें :

असही दुसही मरहु मनहि मन, वैरिन बढ़हु विषाद । 1/2-10

विधि भयसो दाहिनो । 1/2-17

अनायास पाइहै जनमफल । 1/9-5

ऐसे सुख जोग विधि विरच्यो न बियो है। 1/10-4

तेसे फल पावत जैसे सुबीज बयसे हैं । 1/11-2

परत दृष्टि दुष्ट तीके । 1/12-2

रघुबर बालकेलि संतन की सुीम सुभद सुर गैया । 1/20-3

सखि बचन सुनि कौसिला लखि सुढर पासे ढरनि ।

लेति भरि-भरि अंक सैतति पैंत जनु दुहु करनि । 1/28-4

चहत सुर सुरपति भयो,सरपति भये चवहै तरनि । 1/28-5

तुलसिदास जे रसिक न यहि रस ते नर जड़ जीवत जग जाये । 1/33-7

बपुष वारिद वरषि छवि जल हरहु लोचन प्यास। 1/40-2

देखि नर-नारि रहें ज्यों कुरंग दियरे । 1/43-3

जोहे जिय आवति सनेह की सरक सी ।

जानै सोई जाके उर कसकै करक सी । 1/44-2

मन कसि कसि ठोंकि ठोंकि खाये । 1/45-2

भयो प्रथम गनती में अवतें हौं जहँ लौ साधु समाज । 1/49-1

डरपत हौं साँचे सनेह -बस 1/50-2

पुलक भषि अवलोकि अमित छबि, उर न समाति प्रेम की भीर। 1/54-2

कृपा सुधा सिंचि बिबुध बेलि ज्यों फिरि सुख फरनि फरी ।/57-2

जो चलि हैं रघुनाथ पयादेहि, सिला न रहिहिं अवनी ।/58-2

प्रानहूते प्यारे लागे बिनु पहिचाने है।

मेरे मन माने राउ निपट सयाने हैं ।/61/3-4

बिहंसि चितै तिरछौहै ।/62-4

नर-नारिन नयननि अयन दये ।

तुलसिदास प्रभु देखि लोग सब जनक समान भयसे ।/63-5

सुख के निधान पाये, हिय के पिधान लाये ,

ठगके-से लाडू खाये, प्रेम मधु छाके हैं ।/64-2

भे सनेह बिबस विदेहता बिवाके हैं ।/64-2

सील सुधा के अगारे, सुखमा के पारावार पावत न पैरि-पैरि थाके हैं ।/64-3

जिय -जियस जीरत सगाई ।/65-4

सरन को समरथ तुलसिहु ताके हैं ।/64-4

हमहिं सुरतरूस सिवधनु भौ ।/66-4

सूखि गये गात हैं पतौआ भये बाय के ।/67-2

एउ देखिहैं पिन कु नेकु जेहि नृपति लाज ज्वर जारे ।/68-4

सोचत सत्य सनेह बिबस निसि नृपहि गनत गये तारे ।/68-6

मनहु मघा जल उमगि उदधि चले नीद नद नारे ।/68-7

चलदलको सो पात करै चित चर को ।/69-3

कहिबे को जोग न मैं बातें सी बनाई है ।/71-3

तसो मन भये जाकी जैसिये सगाई है । 1/71-4

मनहू को मन मोहै उपमा को कोहै 1/82-2

जनक बचन छुए विरवा लजारू के-से वीर रहे सकल सकुचि सिर नाइकै ।

1/84-9

बड़े ही समाज आजु राजनर्नि की जात पति हाँकि आँक एक ही पिनाक छीनि लई है 1/85-1

बेद मरजाद मानो हेतुवाद हुई है 1/86-3

लुनिहै पे सोईई जोई जेहि बईहै 1/86-5

सुनि रघुवीर की बचन रचना की रीति,भयो मिथलेस मानो दीपक विहान को। 2/88-4

भूमि भाल भ्राजत , न चलत सो ज्यों विरंचि को आँकु ।

धमुन तोरे सोइ बरै जानकी, राउ होई कि राँकु 1/89-3

का वापुरा पिनाकु, मेलि गुन मंदर मेरू नवाबौ 1/89-8

कहा भौ चढ़ाए चाप, ब्याह है है बड़े खाए 1/95-1

कुलहिं लजावै बाल बालिस बजावै गाल,

कैधो कूर कालबस,तमकि त्रिदोषे है 1/95-2

कुँवर चढ़ाई भौंहिं, अब को विलोकै सोहैं,

जहँ तहँ भे अचेत खेतके से धोखे हैं ।

देखो नर-नारि कहैं, साग खाई जाए माइ,

बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोखे हैं 1/95-3

तबके देखैया, तबके लोगनि भले,

अबके सुनैया साधु तुलसिहु तोषे हैं 1/95-3

ऋषि नृप सीस ठगौरी-सी डारी । 1/100-1

बादि बीर-जननी-जीवन जग, छत्रि जाति गति भारी 1/100-3

चवतुर नारि चितवहि तृन तोरी 1/105-6

रूप प्रेम परिमिति नपरत कहि, बिथकि रही मति मौने 1/107-2

निरखहि नारि-निकर विदेहपुर निमि नृप की मरजाई मिटाई 1/108-2

बरिस कोटि लगि अचवल होउ अहिबाता 1/110-2

तुलसीदास देव मायाबस कठिन कुटिलता ठानी 2/1-4

नृपति नारिबस सरबस होर 2/2-2

एक कहै, वन जोग जानकी । विधिबड़ विषम बली ।

तुलसी कुलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि दली 2/10-3

अजहु अवनि विदरत दरार मिस सो अवसर सुधि कीन्हें 2/12-2

अनुराग ताग पोउ 2/16-3

कृपिन ज्यसो सनेह सा हियसे सुगेह गोउ 2/16-3

चारु चितवनि चतुर लेति चित पोही 2/18-3

रत्यो रची विधि जो छोलत छवि छूटी 2/21-1

लोचन सिसुन्ह देहु अमिय घूटी 2/21-2

सोभा सुधा पिए करि अंखिया दोनी 2/22-2

धन्य ते, जे मीन से अवधि अंबु आय है 2/86-2

पुनि कहँ यह सोभ कहँ लोचन देह गेह संसार 2/29-5

जे निहारि बिनु गाहकहूम आपने आपने मन मोल बिनु बीके है । 2/30

नर नारि बिनु छर छरिगे ।

बिय नैन सर सोभा सुधा भरिगे 2/32-1

जोते बिनु बए बिनु निफन निराए बिनु,

सुकृत सुखेत सुख सालि फूलि फरिगे 2/32-2

भली भाँति भले पैंत, भले पाँसे परिगे 2/32-4

असन अजीरन को समुझि तिलक तज्यो,

विपिन गवनु भले भूखे को सुनाजु भो 2/33-2

सिरिस सुमन सुकुमारि 2/34-4

उत कीन्हीं पीठि, इतको सुडीठि भई है 3/34-4

सोभा देखवैया बिनु वित्त ही बिकै है 2/37-2

बिनु प्रयास परीं प्रेम सही 2/38-3

बचन कुभामिनी के भूपहि क्यों भाए.

हाय !हाय ! राय बाम विधि भरमाये 2/39-4

उधारिहै तुलसीहू से जन, जिन जानि के गरीबी गाढ़ी गही है।

प्यार परसपर पिपूष प्रेम पान की 2/44-3

तुलसिदास वह समय कहे तें लागति प्रीति सिखी सी 2/52-4

तदपि न मिटत दाह या उरको,विधि जो भयो विपरीता 2/53-2

मुएहु न मिटैगो मेरी मानसिक पछिताउ 2/57-1

दास तुलसी नतरू भाको मरन अमिय पिआउ 2/57-4

टूजि तारो गगन मग ज्यो होत छिन छिन छीन 2/58-3

दिनकर बंस पिा दसरथ से राम लषन से भाई ।

जननी । तू जननी ? तौ कहा कहौ, विधि केहि खोरि न लाई 2/60-2

ईस अजस मेरा हरि है 2/60-4

विष बारूनी बंधु कहियत बिधु । नातो मिटत न धोए 2/61-2

जननी । जगमें यसा मुखकी कहाँ यकालिमा ध्वैहा 2/61-2

गहि न जाति रसना काहू की कहौ जाहि जोइ सूझै 2/62-3

मोकौ आज विधाता बावौ 2/63-3

सकल सराहत एक भरत जग जनमि सुलाहु लहो है 2/64-4

विधि को न बसाइ उजारो ? 2/66-2

मौगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो 2/66-5

बदन करम को कारो 2/67-2

जनु तक्यो तड़ाग तुषित गज घोर घाम के लागे 2/68-3

बनवासी पुरलोग, महामुनि किए हैं काठके से कोरि 2/70-3

बोले बचन विनीत उचिवत हित करूना रसहि निचोरि 2/70-3

मेरा जीवन जानिय ऐसोई, जियै जैसो अहि, जासु गई मनि फनकी 2/71-3

निज कर खाल खौचिव या तनुते जौ पितु पग पानही करावौ 2/72-2

भजन हीन नरदेह वृथा खर स्वान फेरूकी नाई 2/74-4

काहे को मानत हानि हिये हौ 2/75-1

तुम्हसे तुम्हहि नाथ मोको मोसे जन तुमको बहुतरे 2/76-2

जनमि कैकयी कोखि कृपानिधि । क्यसो कछु चपरि कहौगो 2/77-1

भए न है न होहिंगे कबहूँ भुवन भरत से भाई 2/79-4

तुलसी तेहि सनमुख बिनु विषय ठगिनि ठगति 2/82-3

लगे तरून्न तन दौन 2/83-2

हाथ मीजिबो हाथ रह्यसो 2/84-1

हौ रहि घर मसान पावक ज्यों मरिबोइ मृतक दह्यो 2/84-2

मोहि कहा सजनी समुझावति हौ तिन्ह की महतारी 2/85-2

जिन्हके मन मगमन भए हैं रस सगुन,

तिन्ह के लेखो अगुन कुकुति कवनि 3/5-4

बार-बार कर मीजि सीस धुनि गीधराज पछिताई 3/12-4

सहि न सक्यौ सो कठिन विधाता बड़ो पछु आजुहि भान्यौ 3/13-2

तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहो 3/13-4

है सपना विधि कैधौ सति भाउ 3/17-4

लघु भाग भाजन उदधि उमग्यो लाभ सुख चित चायके ।

सो जननि ज्यसो आदरी सानुज राम भूखे भायके 3/17-4

बालक सुमित्रा कौसिला के पाहुने फल साग के 3/17-6

स्वामि दसा लखि लषन सखा कपि,

पिघले हैं आँच माठ मानो घिय के 4/1-2

चुके अवसर मनहु सुजनहि सुजन सनमुख होइ 5/5-4

लंका करहु सघन घमोइ 5/5-7

पीतम बिरह तौ सनेह सरबसु सुत ।

औसर को चूकिबो सरिस न हानि 5/7-2

जग विधि अधीन 5/8-3

तुलसिदास सो स्वामि न सूझ्यो नयन बीस मंदिर के-से मोखे 5/12-5

ता रिपुसों पर भूमि रारि रन जीहवन मरन सुथलतो 5/13-4

मीचतें नीच लगी अमरता, छल को न बल को निरखि थल परूष प्रेम पायो

5/15-3

यह सनेह सरबस समौ तुलसी रसना रूखी,

ताहीतें परत गायसो । 5/15-4

पावक न होइ जातुधान बेनु वन में 5/23-3

चहै मेरू उड़न बड़ी बयारि बही है 5/24-2

देखो काल कौतुक पिपीलकनि पंख लागो 5/24-2

माया जीवन जग जाल सुााउ करम-काल,

सबको सासकु सबमैं सब जामै 5/25-2

मतो नाथ सोइ जातें भले परिनामै 5/25-3

चवल्यो सुरतरू ताकि तजि घोर घामैं 5-25-4

रोष किये दोष सहें समुझें भलाई है 5/26-2

राम की सरन जाहि सुदिनु न हेरै 5/27-2

रंग लूटिबेको मानो मनिगन ढेरै 5/27-3

भइ कूवर की लात, विधाता राखी बात बनाइकै 5/28-3

गई बहोर ओर निरबाहक साजक बिगरे साज के 5/29-2

नाहिन मोहि और कतहूँ कछु जैसे काग जहाज के 5/29-2

सपनो सो अपनो न कछू लखि लालच न लोभाऊगी 5/30-3

रोटिहा रावरो विनु मोहही बिकाउँगी 5/30-4

तुलसी मुदि दूत भयो मानहु अमिय लाहु माँगत म[illegible] 5/31-3

बाँह पगार द्वार तेरे तैं समय न कबहूँ फिरि गए 5/32-3

दसमुख तत्यो दूध माखी ज्यों आपु काढि साढ़ी लई 5/37-2

भावत कछु कछु और भई 5/38-2

तुलसी काको नाम जपत जग जगती जामति बिनु बई 5/38-5

कोउ उलटो कोउ सूधो जपि भए राजहंस बायस तनै 5/40-3

हुतो ललात कृसगात खात खरि मोद पाइ कोदी कनै 5/40-4

पुनि पुनि भुजाउठाई कहतहौ सकल सभा पतिआउ ।

नहि कोउ प्रिय मोहि दास सम कपट प्रीति बहि जाउ 5/45-4

जो तहिहहै भुज बीस घोर निशि ऐसा को त्रिभुवन में जायो 6/3-4

पावहुगे निज करम जनित फल भले ठौर हठि बैर बढ़ायो 6/4-3

ओर निवाहि भली विधि भायप चल्यौ लषन सो भाई 6/6।

है है कहा विभीषन की गति रही सोच भरि छाती 6/7-3

तुलसिदास विद्यो अकास सो कैसे कै जात सिया`हे 7/10-4

भरत कहा बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै ।

सोभा सुख दति लाहु भूपकहा, केवल कांति मोल हीरै 6/15-2

भरत गति लखि मातु सब रहि ज्यों गुड़ी बिनु वाय 6/14-3

दूध भात की दीनी दैहों सोने चवौच मढ़ैहो 6/19-2

सीस उघारि दिवाई घाहै 7/13-6

दसमुख बिबस तिलोक लोकपित विकल बिनाए नाक चनाहै 7/13-7

पालिबे असिधार ब्रत प्रिय प्रेम पाल सुभाउ 7/25-3

चले तुलसी पालि सेवक धरम अवधि अघाई 7/27-5

हौ सिखि लेउ वन रिषि रीति बसि दिन चारि 7/29-1

पालबी सब तापसनि ज्यो राजधरम बिचारि 7/29-3

होत हठि मोहि दाहिनो दिन दैव दारून दाय 7/31-3

ऐसे हू थल बामता बड़ि वाम विधि की बानि 7/32-2

आलसिन्ह की देवसरि सिय सेहयहु मन मानि 7/32-3

आँच पय उपुनात सींचवत सलिल ज्यो सकुचाई 7/36-4

सप्तम् अध्याय

सांस्कृतिक अध्ययन

किसी कवि की भाषा में व्यवहृत शब्दावली के भीतर निहित तत्कालीन समाज और संस्कृति की खोज का प्रयत्न आधुनिक साहित्यिक समालोवचना के ही नही, वरन् ऐतिहासिक परम्परा की दानबीन के क्षेत्रमें भी एक विशिष्ट वैज्ञानिक महत्व रखाता है।

तुलसी की भाषा की पृष्ठभूमि और तुलसी द्वारा मान्य एवं प्रतिपादित सांस्कृतिक विचारधारा की पृष्ठभूमि के सापेक्षित संबंध की ओर ध्यान देने पर कई ऐसे रहस्यों का उद्घाटन होता हे, जो प्रस्तुत विषयस की आधारभूत परिस्थितियों को समझने में बड़े सहायक सिद्ध होगें । भाषा की पृष्ठभूमि पूर्वकालीन और समकालीन कवियों तथा सामान्य व्यक्तियों की भाषात्मक प्रवृत्तियों के अध्ययन से तथा सांस्कृतिक विचार और सामान्य व्यक्तियों की भाषत्मक प्रवृत्तियों के अध्ययन से तथा सांस्कृतिक विचारधारा की पृष्ठभूमि पूर्ववर्ती एवं समकालीन समाज में प्रचलित व्यापक सांसकृतिक मान्यताओं के सिंहावलोकन से भांति समझली जा सकती है । इस सम्बन्ध में विवेचन में जाने से पूर्व इतना और निर्देश कर देना आवश्यक है कि तुलसी के समक्ष भाषा और संस्कृत दोनों के क्षेत्र में अनेकानेक जटिल समस्याएं पनप चवुकी थी जो परिस्थिति को बड़ा ही अनिश्चिवत तथा अभियंत्रित रूप प्रदानकर रही थी । कई अंशो में दोनों की सामान्य परिस्थिति में इस प्रकार का साम्य होने के कारण उसयुग के सभी कवियों एवं समाजसुधारकों को अपने विचारों के प्रकाशन का साम्य चुनते समय भाषा के सांसकृतिक दृष्टिकोण को भी महत्व

देनाएक प्रकार से स्वाभावित तथा आवश्यक सा बन गया था।

तुलसी क पूर्व उत्तर भारत का जन-समुदायस सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा ही अव्यवस्थित रूस्पग्रहण कर चुका था। एक ओर तो कट्टर और एकांगी दृष्टिकोण रखाने वाले विदेशी व्यसक्ति अपनी अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओं के न्यूनाधिक प्रचार पर बल दे रहे थे और दूसरी ओर दरबार तथा जनता दोनों के भीतर के कवि एवं सुधारक के रूस्प में प्रसिद्ध व्यक्ति एक प्रकार के समन्वय का रूख अपना कर चल रहे थे । जहाँ तक सामान्य जनता के विभिन्न वर्गो से सम्बन्धित सामाजिक एवं सांस्कृतिक संकेतों का सम्बन्ध है , उनका अधिक स्पष्ट प्रामाणिक एवं व्यापक स्वस्रूप हमें दूसरी कोटि के व्यक्तियों द्वारा व्यवहृत भाषा के अन्तर्गत मिलेगा क्यों कि उनकी भाषा लोक संसकृति के क्षेत्र को कहीं अधिक निकट से स्पर्श करती है। इनमें भी दो दृष्टिकोण विद्यमान है । एक तो कबीर और जायसी जेसे जन कवियों की भाषा है जो जैसी जनता के भीतर प्रचलित थी लगभग उसी रूस्प में ग्रहण कर ली गयी थी और दूसरी ओर तुलसी और रहीम जैसे कवि भी मिलते हैं,जिन्होंने सर्वत्र भाषा का सर्वथा टेठरूपहीन ग्रहण करके कतिपय सामायिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समस्याओं के समाधान को दृष्टि में रखाते हुए उसमें पर्याप्त परिष्कार एवं व्यवहृत वैविध्यस लाने का प्रयत्न किया था।

विश्लेषण की सुविधा की दृष्टि से विचार करें, तो तुलसी में प्रमुखातया संस्कृत दो रूप उपलब्ध होते हैं जिन्हें शास्त्रीय और लौकिक इन दो वर्गो में रखा जा सकता है । प्रथम वर्ग के अन्तर्गत वैदिक तथा पौराणिक संसकृति और दूसरे के अन्तर्गत जनता की घरेलू संस्कृति अथवा लोक संसकृति के विवरण आते हैं। शास्त्रीय संस्कृति का स्वरूप घरेलू तथा अन्य प्राचीन संसकृत साहित्य ग्रन्थों के अध्सययन एवं मनन के परिणाम स्वस्रूप प्राय: परम्परागत रूप में और परम्परागत शब्दावली के ही द्वारा अंकित हुआ है । इसी प्रकार घरेलू लोकसंस्कृति से सम्बं

इसी प्रकार घरेलू लोकसंस्कृति से सम्बन्धित प्रसगों के भीतर प्राचीन एवं परम्परागत तथा सामयिक अंशों काएक साथ समावेश मिलताहै । इनमें तुलसी की भाषा में उपलब्ध सांस्कृतिक निष्कर्षो के अन्वेषण में लोकसंस्कृति का सामयिक अंश विशेष उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है क्यों कि इन्हीं के यि तुलसी के अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक अनुभवों एवं दृष्टिकोणों की छाया स्पष्टतर रूप में विद्यमान है । साथ ही सामाजिक और सांस्कृतिक संकेतों के इस मिश्रित एवं जटिल रूप की ओर ध्यान दिलाने का एक यह भी आशय है कि तुलसी की भाषा में उपलब्ध शब्दावली के आधार पर इस दिशा में निर्धारित निष्कर्षो की सर्वांशेन पूर्णएवं अंतिम नहीं कहा जा सकता । अतएव इन निष्कर्षो को बहुत स्थूल रूस्प में नहीं ग्रहण करना चाहिये यद्यपि यथा सम्भव आगामी विवेचन और विश्लेषण के अन्तर्गत संतुलित दृष्टिकोण अपनाने का प्रयतन किया जायेगा ।

संस्कृति साहित्यक जो स्वरूप तुलसी की रचनाओं में प्रयुक्त शब्दावली के अन्तर्गत मिलता है, उसके पीछे प्रमुखतसया दो प्रभाव स्पष्ट है एक तो वेद,आरण्यक और उपनिषद आदिमें सुरक्षित वैदिक संसकृति का और दूसरे रामायण, महाभारत और विशेषकर श्री मदभागवत एवं अन्य पुराणों में अभिव्सयंजित पौराणिक संस्कृति का और दूसरे रामायण महाभारत और विशेष कर श्रीमद्भागवत एवं अन्य पुराणों में अभिव्यंजित पौराणिक संस्कृति का अपने कावसय के वर्ण्य विषय का क्षेत्र और आधार प्रधानतः वैदिक न होकर पौराणिक होने के कारण तुलसी में दूसरे प्रकार के प्रभाव का बाहुल्यस स्वाभाविक ही था वैदिक और पैराणिक विश्वास प्रणाली का जो समन्वय तुलसी की विचारधारामें अधिक हुआ है उसका बहुत कुछ श्रेयस उनकी विशिष्ट प्रकारकी शब्दावली और प्रसंग चित्रण की विशिष्ट शैली को ही है,क्यों कि सर्वत्र वेदों की मर्यादा की दुहाई देते हुए उनके शाश्वत सारत

तत्वों को ग्रहण करते हुए भी तुलसी कई अंशों में वैदिक विश्वास प्रणाली से पर्याप्त मतभेद रखते जान पड़ते हैं । नानापुराण निगमागम सम्मत विषय-तत्व के भीतर सांकेतिक रूप में पाई जाने वाली महाविषमता महत्वपूर्ण है तुलसी की शब्दावली में सामाजिक और सांस्कृतिक संकेत एक ओर तो वे निम्नलिखित शब्दों में वेद की महिमा की अतुलता का प्रतिपादन करते हैं :

अतुलित महिमा वेद की तुलसी किये विचार ।

जोनिंदित निंदित भयो विदित बुद्ध अवतार ।।

दूसरी पंक्ति के अन्तर्गत बौद्ध संस्कृति क प्रति तुलसी की पौराणिक अनास्था का भाव भी ध्वनित हो रहा है ।

दूसरी ओर जब हम वेदों में प्रमुख देवता के रूप में ही नहीं वरन कही-कहीं स्वयं परमात्मा पर्याय में प्रयुक्त इन्द्र काव्यवहार रामचरित मानस के अन्तर्गत यत्र-तत्र वैदिक परम्परा से नितान्त भिन्न रूप में पाते हैं तो हमारे समक्ष उक्त विषमता का चित्र प्रस्तुत हो जाताहै। 'मानस'में इन्द्र की चर्चा जहाँ-जहाँ आयी है । वहीं प्रायः अधिकतर तुलसी ने उन्हें लोभी ईर्ष्यालु तथा संकुचित प्रवृत्ति वाले अत्यन्त पदाधिकार लोलुप अभिमानी देवराज के रूस्प में देखाहै । उदाहरणार्थ नारद मोह-प्रसंग के आरम्भ में नारद तपस्या के प्रभाव से भयभीत इन्द्र की मनोवृत्ति निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त की गयी है ।

सुनासीस मनमह अति त्रासा । चहत देवरिषि मम पुरबासा।।

जे कामी लोलुप जगमाही । कुटिलकाक इव सबहि डराहीं ।।

सूख हाडु लै भागसठ स्वान निरखि मृगराज ।

दीवि लेइ जनिजान जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज ।।

इसी प्रकार चित्रकूट के प्रसंग में -

कपट कुचवालि सींव सुरराजू । पर आकज प्रिय आपन काजू ।।

काक समान पाकरिपु रीती । छली मलीन कतहु न प्रतीती ।।

इस प्रकार इन्द्र के लिये कहीं प्रत्यक्ष और कहीं परोक्ष रूप में कामी ,लोलुप,कुटिलकाक, सठ स्वान, छली, मलीन इत्यादि विशेष तौर तथा उपमाओं का तुलसी को वैदिक विश्वास प्रणाली से कुछ भिन्न रखकर चवलने में उस पौराणिक प्रतिक्रिया का पोषक सिद्ध करती है । जिसका सूत्रपात तुलसी के बहुत पहले कृष्णकाव्सय में चित्रित गोवर्द्धन धारणलीला के अन्तर्गत कृष्ण और गोपों द्वारा इन्द्र के अभिमान मर्दन के साथ में हो चुका था ।

यही बात वैदिक परम्परा के अनुसार प्रकृति के नाना रूपों के प्रतिदेव भाव तथादेवताओं की उपासना आदि के सम्बन्ध में भी लागू होती है क्यों कि वेदों में जहाँ इनका वर्णन भी देवता के रूप में होने के साथ ही साथ कहीं-कहीं स्वयं ईश्वर तक के अर्थ में हुआ है वहाँ गोस्वामी जी की शब्दावली में केवल देवता के रूप में हुआ है और प्रसंगानुसार उनकी स्तुति पूजा और नमस्कार का बराबर व्यवहार पदर्शित होते हुए भी इन्द्र की तरह उनक लिये भी कही-कहीं स्वारथी मलीन मन मामाविवश आदि विशेषणों का व्यवहार आया ही है उदाहरण के लिये -

आए देव सदा स्वारथी । बचन कहहि जनुपरमारथी ।।

सूर स्वारथी मलीनमन कन्ह कुमंत्र कुठार।

देवदनुज मुनिबाग मनुज सब मामा बिबस बिचारे ।

इस बात के मूल में भी श्रीमद्भागवत आदि पुराणों द्वारा प्रतिपादित अवतार वाद के सिद्धानत के प्रति तुलसी की अद्वितीय आस्था तथा उस सिद्धान्त को सर्वमान्यस एवं

सर्वजन सुलभ बनाने में प्रयत्न में उनकी अद्वितीय लगन की तीव्रता विद्यमान है , जिसका पता हमें उनकी वाणी में पग -पग पर चलता है ।

लौकिक संस्कृति का रूपर तुलसी की शब्दावली के अन्तर्गत शास्त्रीय संसकृति की अपेक्षा वही अधिक विशद एवं व्यापक है । केवल विविध घरेलू व्यापारों एवं संस्कारों के अवसर पर ही नही वरन उन क्षेत्रों से सर्वथा असम्यक हो साधारण स्थलों पर भी प्रतीक और उपमान आरिके रूप में लोकसंसकृति से सम्बन्धित वस्तुओं पदार्थो एवं व्यापारें का उपयोग तुलसी ने प्रचुर मात्रा में किया है इसी प्रकार मुहावरों एवं लोकोक्तियों के चुनाव में भी इस प्रवृत्ति के प्रति तुलसी का विशेष आग्रह प्रत्यक्ष है ।

समाज सन्दर्भित :

मानसेतर रचनाओं में भारतीय समाज व्यवस्था से जुड़े शब्दों का प्रयोग भी बहुलता से हुआ है । लोकधर्मी गोस्वामी तुलसीदास ने भारतीयस समाज व्यवस्था समन्वयस पर बल दिया है । इसलियसे उनकी सभी रचनाओं में यह सामाजिक समन्वय मिलताहै । इस क्रम में सामाजिक शब्दावली का तत्सम और लोक प्रचलित रूपों में प्रवचनहुआ है । विवेच्य रचनाओं में सामाजिक शब्दावली का हर स्तर पर व्यवहार हुआ है एक कथा का मूमल सूत्र राज दरबार से प्रारम्भ होता है । विनयपत्रिका में इसी पद्धति से राजा के पास पत्र भेजने कानिवेदन किया गया है । समाज सन्दर्भ में प्रयुक्त शब्दावली का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है ।

(1) दरबारी शब्दावली:

राजा से निवेदन विनयपत्रिका दीन की बायु आयसु ही बाँचो (वि 266) राज द्वार (वि0 278), किंकर (वि0 279) साहब (वि0 279),सभा (वि

279),विरूदावली)वि।/।) विभिन्न वर्गो के शब्द विप्र ब्राम्हएसा पुनरपारि|भी-।/।|मागध सूत बन्दीजन)गी ।/।) गुरूजन)गी-।/।) गीतावली में नगर के सभी वर्गो के उत्साह का वर्णन सामाजिक सरसता का परिचय देता है -

ब्राह्मण नंद बन्दि बिरदावली जय धुनि मंगलागान।

निकसत पैठत लोग परसपर बोलत लगिलगि कान ।।

बारहि मुकुता रजन राजमहिषी पुर समुमुखि समान ।

बाकरे नगर न्दिावरि मनिगन जनु जुवारि जब धान ।।

इसी प्रकार विभिन्न वर्गो के कलाकारां का वर्णन इस पंक्ति में हुआ है -

मागध सुत भाटं नट जावचक जहँतह करहि कबार ।

प्रिबधू सनमानि सुआसिनि जन पुरजन पहिराई ।[2]

राम के वन चले जाने पर अयोध्यावासियों की दशा का जो वर्णन हुआ है उसमें भी राज समाज और प्रवासियों के विभिन्न वर्गों का उल्लेखा गोस्वामी जी ने किया है-

कुलगुरू सचिवव साधु सोचतु विधिको त बसाह उजारो ।

अवलोने न चणत भरिलोचवन नगर को लाहज मारो ।

सुने न बचवन वासनाकरके जब पुरपरिवार संभारो ।

मेया भरत भावते के संग बन सब लोग सिधारो ।[3]

1- गीतावली- 1/2

2- वही-1/2

3- गीता-2/66

साहित्य,संगीत कला मनोरंजन :

विवेच्य रचवनाओं में गोस्वामी जी ने साहित्य संगीत कला और मनोरंजन की शब्दावली का प्रयोग भी बहुलता से किया है । साहित्य की शब्दावली यद्यपि कम है किन्तु कही-कहीं उसका प्रयोग महत्वपूर्ण है यथा-

साहित्य- कवि (गो0।/2), उपमा(गी-12/) छन्द प्रबन्ध (गी-1/2)गीत -पद गी 1/2) छन्द (जी- 1/43 पत्रिका (जी-1/103) करूनारस (गी- 7/3) सिंगाररस(गी-6/2)

सगीत- रामताक बंधान (गी-1/2),कीर्तन (कीर्तन उनभाय काय क्रोध नंदिनी गी 2/43)/जलतरंग (झरना झरत झिंग झिग झिग झिग जल तरंगिनी (गी- 2/43 सामगान (गी-2/24)मंगल(गी-1/94) दुदुभी (गी-1/94)बेनु बीना(गी-6/2 गौडमलासा झलहि झुलावहि आसाहिन्ह गावै सु हो गौड मलार (गी-7/18 सांरग राम (गी-7/19/4) सोरठ सुहव सोलिो भृदंग झांझउफ पनव निसान सहनाई चवाचरि 1/22 झमक 1/22, सट्टा घण्टि साउज (1/2),मंजीर (गी-1/2)

चित्रकला - चौकपूजना [1] पताक वितान तोरन कलश[2] लेखन[3] धातुराग लेखन[4]

गृहसज्जा[1] गृह गृह रचवे हिडोलना महि गचव काँच सुढार ।

चित्र विचित्र चहू दिसि परदा फटिक पगार ।

सरल विसाल सिराजहि विद्रम खांभ सुजोर ।

चारू पाटि पटो पुरट की झरकत मरकत और ।।[5]

1- चारू चौके विधि बनी (गी-1/5)

2- चवामर पताक तितान तारेन कलस दीपावलि बनी (गी 1/5)

3- लिखि नाम जनार(गी- 1/6

4- सिय अंग लिखै धातुराम (गी- 2/44

5- गीतावली (7/19/3)

गृह आगन चाहट गली बाजार बनाए ।

कलश चँवर तोरन ध्रजा सुवितान तनाए ।

चित्र चारू चौके रत्री लिखि नाम जनाए

भरिभरि सरवर वापिका अरगजा सनाए ।।[6]

लोक विश्वासों के सूचक शब्द :

इसक्षेत्र के भीतर जनता में प्रचलित वे सारे परम्परागत विश्वास आजाते हैं जिनकी पुष्टि के लिये किसी विशेष तर्क अथवा बौद्धिक समाधान की आवश्यकता का अनुभवनहीं कियाजाता वरन उनहें रखोगतिणत की स्वयसं सिद्धियों की भाति मान लियसाजाताहै लोग अपने जीवनके निटये एवं नैमित्तिक उभयस प्रकार के लौकिक व्यापपरों के भीतर उन विश्वासों के प्रति सजग रहने काप्रयसत्न करते है ।

तुलसी ने जिन विश्वासों एवं अन्धा विश्वासों का निर्देश अपनी शब्दावली में किया है वह प्रमुखतः चार रूपो में मिलते हैं :-

1) शकुन

2) अपशकुन

3) अन्धविश्वास

4) उपचवार झाडु, फूक आदि।

शकुन के अन्तगत बाई दिशा में चाषु नील कंठ का वचारा लेनादाहिनी ओर कौस का खेत में रहना कुल दर्शन घट और बाल के साथ वरनारी का आना लोआ (लोमडढ़ी) का दश्रन सामने शिशु का दूध पिलाते सुरभी का दर्शन दाहिनी ओर मृगमाला का आना छेमकरी तथा स्यामा पक्षियों कादिखाई पड़ना , दधि और मीनका सामने आनापुस्तक लिये ब्राळमण का मिलना (उन सारे शकुनों काएक साथ वर्णन राम विवाह के अवसर पर अयोध्या मे बारात के प्रस्थनकरने के प्रसंकग में किया गयाहै, स्त्री का अंग फड़कना (विशेष

(लोमड़ी) का दर्शन सामने शिशु का दूध पिलाते सुरभी कादर्शन दाहिनी ओर मृगमाला का आना छेम करी तथा समा पक्षियों का दिखाईपड़ना, दधिकाटर मीन का सामने आनापुस्तक लिये ब्राह्मण का मिलना) उन सारे शकुनों का एक साथ वर्णन राम विवाह के अवसर पर अयोध्या से बारात से प्रस्थान करने के प्रसंग में किया गया है, स्त्री का अंग फड़कना (विशेष रूस्प से बाउए नेत्र और बाए हाथ का फड़कना) पुरुषों का दाहिना नयम और भुजा फड़कना विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।[2] शकुन के वाह्य लक्षणों के अतिरिक्त भारतीय लोक जीवन के क्षेत्रों में प्रचलित सगुन मनाने की स्वाभाविक प्रवृत्ति के दृश्य भी कही-कहीं बड़ी सजीव शब्दावली ने अंकित है जेसे अयोध्या में कौशिल्या द्वारा का दर्शन तथा छेमबुरी दशन देने का औरसोन`से उसकी चोंचव मढ़ाने का प्रलोभन देना आदि ।[1]

अपशकुनः

अपशकुन सूवचक शब्दों के अन्तर्गत विशेष रूस्प से ऊकपात दिकराह स्वान और सिमार का फड़करना केत काउदयस होनापृथ्वी का कॉपना स्त्री की दाहिनी आँख फड़कनारात में कुसपनें देखना खार का बोलकार बुरी तरह से चिल्लाना प्रतिमाओं का रोना पबिपात अतिवा तूफानी हवा बहना, पृथ्वी का डोलना कचव और रज आदि अशुभ पदार्थ बरसाना इत्यादिउल्लेखनीय है ।

1- घंटा घंटि पख्चा उज आउज झाझाबेनु अफ तार।
नुपुर धुवि मेजीर मनोहर कर कंकरझनकार ।

2- सबरी सोइउठी फरकबबाम विलोलन बाहु (गी-3,17

3- कब ऐहै मेरे बाल कुसलघर कहहु कामफरिबाता
दूध भातकी दोनी दैहो सोने चवोंवच कढ़ैद्ये (गी-6,19

अन्धविश्वास:
- - - - - - -

इनके अन्तर्गत कल्पित देवी देवताओं के प्रति अंधश्रद्धा की सूचक बाते तथा टोटे आदि से संबंधित बातें ल जासकती है इनकाविशेष प्रचवार निम्न व्यक्तियों में अधिक दिखाई पड़ताहै जैसे बहराइच के गाजीमियसा में विश्वास और तिजरा का संटका उनके अतिरिक्त कनसुई लेने की तथाअपने हाथ से दीवाल पर उऐनक लगाकर उसे पूजने की प्रथा के सूचक शब्द भी स्फुट अंधविश्वास की श्रेणी में रखे जा सकते हैं स्त्रियाँ गोबर की गौर को चवलनी में रखकर पृथ्वी पर फेकती है यदि वह गौर सीधे गिरती है जो शकुन और आड़ी या उल्टी गिरती है तो अपशकुनमानते हैं । यही कनसुसई की प्रथा है । ऐपन लगाकर पूजन की प्रथा कारूप कई घरेलू तन को एवं त्यसोहारों पर स्त्रियाँ उपस्थित करती है ।

उपचार :
- - - - - -

झाड़ फूक आदि की सूचक शब्दावली शिशु राम की वशिष्ठ द्वारा झाड़ फूक के वर्णन में जहाँ पर प्रातः काल उठकर शिशु राम अपने से होकरदूध पीने में आनाकारी करते है औरपालने में झुलाने पर भी बैठे ठाढ़े किसीप्रकार नहीं रहत था रोने लगते हैं । इसप्रसंग में कुलगुरू का हाथ से शिशु का मस्त कछूना कुश लेकर नृसिंह मन्त्र पढ़ना

- -

1- स्वास्थ्य के सामिनत तज्यो तिजरा को सो टोटकाओचक उलटि नहेरे ।
लेतफिरत कनसुई सुगुन सुभ बूझत गनक बोलाइके 1,68

झरना आदि उल्लेखनीय है ।[1]

सज्जा सूचक शब्दः

ऐसे शब्दों के सूल स्वरूप पदों विभाग किये जासकते हैं एक तो वे शब्द आयेगे जिनका सम्बन्ध गली चौहट बाजार, घाट, मंदिर, उपवन,बावली,कुआ आदि की व्यवस्थातथासाज बाज से सम्बन्धित है । आश्रम यथा तीर्थस्थल आदि से सम्बन्धित शब्द भी इसी विभाग में आ जाते है । दूसरे विभाग में इसप्रकार के शब्द आते हैं जिनमें व्यक्तियों के श्रृंगार से सबंधित क्रियाओं का संकेत मिलताहै । जैसे बालक की देह में उबटन चुपड़ना, नयन आजानागोरो कातिला करना भौंह पर मसि बिन्दु लागाना और पुरुषों अथवा स्त्रियों काविशिष्ट अवसरों पर महावर लगाना इत्यादि । उन्हीं के अनतर्गत ग्राम्य वातावरण से सम्बन्धित शब्दों ो भी ले सकत`हैं किन्तु तथ्य तो यह है कि अलग से ग्रामों की व्यवस्थाके वर्णनका अवसर तुलसी को न मिलने के कारणउसे सज्जा सूचक शब्द उनकी शब्दावली में प्रायः नहीं मिलते । केवल स्थलों परतुलसी के वृक्ष आदि लगाने की चर्चाआसयी है जो केवल ग्रामीणवातावरण तक सीमित नहीं की जा सकती ।

व्यवहारोपयसोगी वस्तुओं का नाम :

1- आजु अनर से है भोर के पयपियसत न नीके ।
रहत न बैठे ठाडे पालने झुलावत हू रोव राम मेरो सोचव सबही के ।।
देवपितर ग्रह पूजिए तुला तौलिए घी के ।
तदपि कबहु कबहुक सखी ऐसे तिअरत जब परत दृष्टि दुष्टनी के ।।
बेगि बोलि कुलगुरू हुयो माथे हाथ अमी के ।
सुनत भाइ ऋषि सहरे नरसिंह मंत्र पढ़े जो सुमिरत भ्यभी के ।।
जासुनाम सब्रस सदासिव पार्वती के ।
कहि झराविति कौसिलायसह रीति प्रीति की हियस डुलावति तुली के ।
माथे हाथ ऋषि जबदियो राम किलकन लागे । गी 1,12

व्यवहारोपयोमी वस्तुओ का नाम :

इनके अन्तर्गत दो प्रकार के शब्द किये जा सकते हैं एक तो वे जो दैनिक व्यवहारमें आने वाली साधारण वस्तुओं से संबंधित है और दूसरे वे जो विशिष्ट अवसरों पर प्रयुक्त होने वाले पदार्थो एवं वस्तुओं के द्योतक हैं । प्रथम प्रकार के शब्दों के अन्तर्गत लकड़ी द्रौवा करछुली, सिल लोढ़ा आदि तथा दूसरे प्रकार के शब्दों में विषंग, को दंड सारंग कृपान (तरवारि) शक्त तोमर चर्म, कमठ,सूल परिघ, परसु गोला, पक्वार(लड़ाई की झूल) गज, रथ, तुरग, सनाह, कवच, जुझाउ, ढोल, फरसा, बॉस, सेल, तुपक,दारू, बारूद, पलीता,गोला इत्यादि उल्लेखनीय हैं ।

मनोविनोद से सम्बन्धित शब्द :

इन शब्दों के अन्तर्गत खेलकूद आदि से संबंधित शब्दों की गणना की जासकती है । इस विषय में तुलसी ने प्रसंगानुसार जिन शब्दों का व्यवहार कियाहै उनमें प्रमुख स्रूप से कंदुक चौगाक पतंग, चंग, अथवा मुड़ी अखाड़ा कुश्ती अथवा मल्लयुद्ध और पक्षीपालन की चर्चा की जा सकती है ऐसे पक्षियों में मार हंस सारस, पारावत कबूतर सुक, सारिकर, चातक और कोकिल उल्लेखनीय हैं ।[2]

1- चवुपरिउबटि अन्हवाइ कैनयन आजे रचि रूचि तिलक गोरोचन को किया है ।
भूपर अनूप मसि बिन्दु बारे बारे बार बलसत सीस परहेरिहरै हियो है ।।

2- अनुज सखा सिसु संग लै लन जैटै चोगान ।गा 1,19
ारत गतिलखि मातु सबरहि ज्यो गुड़ी बिन बाय ।
बोलत जो चवातक मोर कोकिल की (पारावत घने (

व्यसन सूचक शब्द :

तुलसी की रनाओं में प्रयुक्त शब्दावल के अनतर्गत भारतीय लोक संसकृति के इस विरनीय किनतु महत्वपूर्ण अंग को बहुत कम स्थान मिला है तथापित इस क्षेत्र में भी यत्र-तत्र स्फुट विद्यमान है । इनमें जुआ, सुरापान, शतरंज मृगयसा अथवा अहेर और पैंत उल्लेखनीय हैं ।शतरंज और मृगया मनोविनोद के साधनों के अन्तर्गत भी रखे जा सकते हैं।[1]

प्रसिद्धियों के द्योतक शब्द :

तुलसी की शब्दावली में ऐसे शब्दों की दो स्थूल रूप से निर्धारित की जा सती है ।

1- शास्र प्रसिद्धियों के सूचवक शब्द ।

2- काव्य प्रसिद्धियों के सूचक शब्द ।

शास्र प्रसिद्धियों से संबंधित:

शबदावली के अन्तर्गत अगस्त्य का समुद्र पान कच्छप, दिग्गज और श्चोषनाग का पृथ्वी धारणकरना, क्षीर सागर की कल्पना हनुमान जी का सूर्य के रथ के सामने पीदे की ओर भागते हुए शिक्षा लेना इत्यादि लिये जा सकते हैं ।

1- कहाभयो कपट जुआ जो हौं हारी श्री कृष्ण -60
प्रभुदित प्रलकि पैंत पूरे जनुविधि बस सुढर ढरे हैं ।

काव्य प्रसिद्धियों से संबंधित :

शब्दावली में से स्वाति बूँद के प्रतिचालक का आदर्श एवं अनन्य प्रेम, चकोर कावचन्द्रमा के प्रति दृष्टि लगाए रहना, चन्द्रमा विषयक विभिन्न कल्पनाएँ, प्रातःकाल मुर्गे का बॉग देवा इन्द्र का अमरावती को वैभव का मापदण्ड मानना चक्रवाच कई का रात में विभुक्त होना आदि उल्लेखनीय है ।

इतिहासपरक शब्द :

गोस्वामी तुलसीदास की कृतियों में यद्यपि उनके युग का इतिहास नहीं मिलता। वे भक्त कवि थे और पोराणिक गाथा के माध्यम से लोक जीवन के लिये आदर्श चरित्र राम की महिमाऔर उनकी भक्ति का प्रतिपादन ही गोस्वामी जी का लक्ष्य रहा है । इसके बाबजूद उनकी रचनाओं में ऐसे अनेक सन्दीं मिल जाते हैं , जिनसे उनके जीवन और युगीन समाज के ऐतिहासिक सन्दर्भो का पता चल जाताहै । विनयपत्रिका में उनका आतंक था अधिक मिलता है । कहा जाताहै कि उनका नाम राम बोला था। इसका संकेत विनयस पत्रिका मे मिलता है -

राम को गुलाम , नाम राम बोला राख्यो राम

काम यहै नाम इहौ कबहूकहत हौं ।

रोटी लूगा नीके राखै आगे हूँ की वेद भाखें ,

भलो हैहो तेरो ताते आनन्दलहत हौ । [1]

1- वि0प0 76

इसमें गोस्वामी जी ने जीवनकाअंतः साक्ष्य प्रस्तुत कियाहे । कहते हैं कि जन्म लेते ही उनके मुख से राम नाम काउच्चारण हुआ था। इसलिये उनका नाम राम बोलारखागया । कालान्तरमें पण्डित समाज ने उनकानिरादरकियाथा इसका संकेत भी उनहोंने प्रस्तुत पदमे किया । प्रत्यक्षतः विनय पत्रिका में इतिहास कथननहीं हुआहै किन्तु विनयपत्रिका की शैली दरबारी है । तत्कालीनदरबारों की रीति नीति मुसाहिबों की खुशामद, राजकर्मचारियों की उपेक्षा आदि के अनेक चित्र विनयपत्रिका में मिलते हैं ।

भागोलिक शब्दावली :

भौगोलिक शब्दावली की दृष्टि से विवेच्य कृतियों में ऐसे नामों काउल्लेख मिलताहै जो रामकथासे सम्बद्ध है । विनयपत्रिका मेंऐसे स्थान कम आए हैं । चित्रकूट, प्रयाग, काशी, विन्ध्यख लंकाख, जनकपुर अयोध्याही प्रमुख रूप से प्रयुक्त शब्द है गीतावली में स्थान नामों का उल्लेख अधिक मिलताहै ।

स्थान नामः

अवध[2], कोसलपुर[3], जनकपुर[4], श्रृंगारपुर [5], लंका ब्रज,मथुरा, काशी, प्रयसाग नाम आए हैं ।

नदियों के नाम :

गंगा, यमुना, सरस्वती, मंदाकिनी, गोदावरी,सरयू ।

1- सोइ सुख अवध उमंग रहयो दिसि (गी-1/1)
3- आजु महामंगल कोसलपुर(गी- 1/3)
3- राजत रुचिर जनकपुर पैठत (गी-1/58)
4- तादिन संगवेर पुर आए (गी-2/68)

पर्वतः

हिमालय, त्रिकूट, सुवेरू, किष्किंधा, चित्रकूट, विन्ध्य ।

वन वर्णनः

चित्रकूट के प्रसंग मे गोस्वामी जी ने वन की शोभा का विस्तृत वर्णनकिया है।

विटप बेलि नव सलय कुसुमित अपन सुजाति ।

कंदमूल जलथ लास ह अगनित अनबन भाँति ।।

बंजुल मंजु बकुल कुल सुरतास ताला तमाल ।

कदलि कदम्ब सुचंपक पाटल पनस रसाल ।

चित्रकूट पर रउर जानि अधिक अनुराग ।

सखा सहित जनु रतिपति आयसउ खेलन आजु ।

हंस कपोत कबूतर बोलत चक्क चकोर ।[1]

धर्म, नीति, दर्शन :

गोस्वामी तुलसीदास मूलतः भक्त कवि है । राम की अनन्यस उपासनाही उनका लक्ष्य है भक्ति से इतन उनकी साधनालोकमंगल ही है । लोक मंगल धर्मएवं नीति के द्वारा ही हो सकताहै । इसलिये उनकी रचनाओं में धर्म,नीति, एवं दर्शनके क्षेत्रों में व्यवहृत शब्दावली का प्रयोग अधिक मिलताहै दार्शनिक दृष्टि से विनयपत्रिका सर्वश्रेष्ठ कृति

1- गी0 2/47

है । इसके अनेक पदों में गूढ दार्शनिक चिवन्तन मिलता है । इस दृष्टि से प्रस्तुत पद अवलोकनीय है-

केशव कहि न जाइ का कहिए ।

देखत तयस रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिये ।

सून्य भीति पर चित्र रंग नहि तनु बिनु लिखा चितेरे ।

धोये मिटै न मरई भीति दुख पाइय इहि तनु हेटे ।

रबिकर नीर बसै अति दारून मकर रूपतेहि माही ।

बदन हीन सो ग्रसै चराचर पान करने जे जाही ।

कोउ वह सत्य झूठ कह कोउ जुगज प्रबल कोउ मानै ।

तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आव पहिचवानै ।।[2]

इसी प्रकार द्वैत रूप [3], अभ्यंतर-ग्रन्थि [4], बिन विवेक संसार घोर निधि पार न पावै सोई ।[5] इस दृष्टि से प्रयुक्त हुए हैं विनयपत्रिका में अनेक पदो में दार्शनिक चिन्तन मिलताहै । कुछ उदाहरण द्रष्टव्यस है। -

हे हरि ! कसन हरहु भ्रम भारी ।

जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहीं कृपा तुम्हारी ।

अर्थ अविद्यमान जानिसय संस्तुति नहि जाइ गुसाई ।

बिनु बाधे निज हठ सठ परबस पुरयो कीर की नाई ।

सपने बयाधि विधि बधाजनु मृत्यु उपस्थित आई ।

1- वि0प0 ।1।
2- वि0 ।13
3- वि0 ।15
4- वि0 ।15

वैद अनेक उपाय करे जागे बिनु पीर न जाई ।

श्रुति गुरू साधु स्मृति सम्यत यह दृश्य आसद सुखकारी ।

तेहिबिनु तजे भजे बिनु रघुपति विपति सकै न हारी।

बहु उपाय संसार तरन कह विला गिरा सुति गावै ।

तुलसिदास मैं मोर गए बिनु पिउ सुख कब हु न पावै ।।[1]

उपर्युक्त पदों में पूरी पदापली औरशब्द यसोजना दार्शनिक है । इस दृष्टिसे विनयपत्रिका तुलसी की सर्वोत्कृष्ट कृति है । धार्मिक और नीतिपरक शब्दावली के लिये तुलसी के संस्कार सम्बन्धी शब्दों को देखा जा सकता है जिनका विवेचवन अगले अध्याय में किया गया है ।

तिथि, पर्व, मास :

विवेच्य रचवनाओं में तिथि पर्व और मास का उल्लेख हुआ है । तिथियों के लिये गोस्वामी जी ने लोक प्रचवलित शब्दों का व्यवहार किया है -

प्रतिपदा	परिवा	(वि 203
द्वितीया	दुइज	(वि0वही)
तृतीया	तीज	"
चतुर्थी	चौथि	"
पंचमी	पॉचई	"
षष्ठी	छठि	"
सप्तमी	सातैं	"

1- वि0प0 120

2- गी 1/1

अष्टमी	आठइ	"
नवमी	नवमी,नौमी	"
दशमी	दसई	"
एकादशी	एकादसी	"
द्वादशी	द्वादसि	"
त्रयसोदसी	तेरसि	"
चतुर्दशी	चौदसि	"

पूर्णिमा:	पूनो	वि0प0203

मासों का नाम:

फल्गुन	फागुन	(गी 7/4)
चैत्र	चैत	(गी 1/1)
		मधुमास(गी 1/1)
नक्षत्र	नखत	(गी 1/2)

पौराणिक उल्लेखः

देवजाति

बिबुध[1], सुर[2], देवता [3], देव [4], किंमर [5],(गी-1/1) गन्धरब (गी-1/2)

अष्टसिद्धि (गी-1/2) नवनिधि(गी-1/2)

1- गी- 1/1
2-गी -1/2
3- गी- 1/58
4- वि- 154
5- वि0-49

प्रमुख देवता:

दशावतार कथा , शिव[6],इन्द्र [7], गंगा [8], हनुमान[9], ब्रह्मा[10]

पोराणिक राजा-

अम्बरीष [11], नल[12] नृग [13], पाण्डव[14], परीक्षित[15],ध्रुव[16], शिशुपाल[17], विदुर [18],कुरूराज [19],उग्रसेन

राक्षस:

अन्धकासुर

कबन्ध

जलन्धर

नमुचि

बलि(वि0 98)

प्रहलाद (वि 93)

विभीषण (वि0 134)

1- वि-6
2- वि- 13
3- वि-15
4- वि-97
5- वि-98
6- वि-228
7- वि-213
8- वि- 106
9- वि-220
10- वि-134
11- वि-214
12- वि-240
13- वि-97

बाणासुर
भय ॥वि-13॥
मुर ॥वि-25॥

हिरण्य कशिपु ॥विहीह॥

रक्तबीज ॥वि-24॥

राहु ॥वि-87॥

लवणासुर

वृत्रासुर

ऋषिगण-

सनकादि ॥वि 86॥

विश्वामित्र ॥गी-1/63

वशिष्ठ ॥गी-1/35

मार्कण्डेय

अगस्त्य

भारद्धाज

अत्रि

शकुकेव-सुक ॥वि-86॥

नारद ॥वि0 25।

बाल्मीकि ॥वि 193॥

दलितोपुरः

अजामिल	꠰वि- 97꠰
कर्णघण्ट	
कंदर्प	꠰वि 239꠰
गुणानिधि	
गजराज	꠰वि 93꠰
जटायु	꠰वि 94꠰
जयन्त	꠰वि0 166꠰
यमलार्जुन	
व्याघ	꠰वि 94꠰
स्वपच	꠰वि094꠰
सुदामा	

स्त्रियाँ:

कौशलया, कैकयी,सुमित्रा, सीता, उर्मिला, मंदोदरी के नाम कथाक्रम में आए हैं इनके अतिरिक्त आए प्रमुख नाम इसप्रकार है ।

अनुसूया	सुरूचि ꠰ध्रुव की मंसा ꠰ वि-86
अहल्या	꠰गी-1/58꠰
कुबरी	꠰वि 106
द्रौपदी	꠰वि 106꠰
पिंगला	꠰वि0 94꠰
यशोदा	꠰वि0 97꠰
पूतना	꠰वि 214꠰

राधिका ⦗वि 18⦘

शबरी ⦗वि- 134⦘

इस प्रकार विवेच्य रचनाओं में विभिन्न वगो की नामावलियों और उनकी कथाओं के संकेत मिल जाते हैं ।2

समग्र रूस्प से कहा जा सकता है कि तुलसी की सांस्कृतिक चेतना विराट थी । उनकी शब्दावली में संस्कृति के प्राचवीन और युगीन सन्दर्भो का उल्लेख हुआ है । ललितकलाओं इतिहास, भूगोल समाज, दैनिक व्यवहार आदि के शब्द ही नहिी उनसे सन्दर्भित दृश्यों का चित्रवत वर्णन तुलसी ने कियाहै । भारतीय संसकृति के उद्गमता होने के कारण गोस्वामी जी ने सांस्कृतिक सन्दर्भो का विस्तुत वर्णन कियाहै । यही कारणहै कि उनकी शब्दावल में भारतीय संस्कृति के पौराणिक ऐतिहासिक और सामाजिक तत्वोंका व्यापक संयोजन हुआ है और समन्वयसवादिता के कारण उन्होंने लोक संस्कृति और परम्परागत सांस्कृतिक चेतना को मिलाकर भारतीय संसमृति का संदेश जन जन तक पहुँचाया है ।

: : : : : :

: : : : :

अष्टम - अध्याय

व्यक्तित्ववादी शब्द अध्ययन

गोस्वमी तुलसीदास की रचनाओं में ऐसे शब्दों की पूरी सूची विद्यमान है जिनसे व्यक्तित्व की विशेषताएं प्रकट होती है । तुलसीदास भारतीय संस्कृति की समस्त विशेषताओं को आत्मसात करते हुए परम्परागत सांस्कृतिक शब्दावली का प्रयोग तो कियाहै । उसके अतिरिक्त अपने युग में प्रचलित मान्यताओं के आधारपर शिष्टाचबार,आवचार विचार गुण दोष रीति-नीति नाना जातियों वर्गो एवं व्यक्तियों के व्यक्तित्व आदि से संबंधित शब्दों कामानस तथा मानसेतर रचनाओं में व्यापक प्रयोग कियाहै। उस क्रम में गोस्वामी जी की सम्पूर्ण शब्दावली उस युग औ प्राचवीन ाारतीय संसकृति का उमग्र विवरण प्रस्तुत करती है । गीतावली इसदृष्टि से गोस्वामी जी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति है जिसमें उनहोंने लोकाचार के मानदण्डों का निर्वाह करते हुए उन नामों या सम्बोधिनों का व्यवहार कियाहै जिनसे लोभादर्श की प्रतिभा होती है और लोक में जमन्वय की भावना को प्रश्रयस मिलता है । मानसकी शब्दावल का यसह अभिप्रात प्रयोग एक ओर उनहें संस्कृति काउद्घोषक सिद्ध करताहै तो दूसरी ओर उन्होंने लोक व्यवहार की ऐसी शब्दावली प्रयुक्त कियाहै जिससे निरछल छलका पड़ता है । इससे वे संसकृति के उरोधा और लोकमानस के उद्माता कवि के रूप में सामने आते हैं । व्यक्तित्व के नाना संदर्भो से जुड़े उनके शब्दों को अद्योलिखित वर्गो में विभाजित किया जा सकता है।

1) वस्त्र वेश भूषा सम्बन्धी शब्द

2) खान-पान सम्बन्धी शब्द

3) मान-मानक शब्द

4) आचार-व्यवहार सम्बन्धी शब्द

5) शिष्टाचार सूचक शब्द

6) गुणअवगुण सम्बन्धी शब्द

7) नायक-नायिका गुण धर्म

8) आदर्श मान-मानक शब्द

9) देव-दानव मानव शब्द

10) शिष्टाचार सम्बन्धी शब्द

(1) वस्त्र वेष भूषा सम्बन्धी शब्द:

मानसेता रचनाओं में गोस्वामी तुलसीदास ने स्त्रियों और पुरुषों के परिधान विसतृत वर्णन कियाहै । इतना ही नहीं राजकीय परिवारके लोगों के वस्त्रें सामान्य वर्ग के लोगों के वस्त्र,ऋषि मुनियों के वस्त्र, उच्च और निम्नवर्ग के वस्त्रों रानियों और सामान्य नारियों के वस्त्रों बालकों के वस्त्रों का विस्तृत वर्णन मिलता है -

1-बालकों के वस्त्र- कुलही [1], (बच्चों की टोपी)[2], झगूली, पगिया[3]

तनिया[1], पनही [2], कछौटी [3], टेपारो[4]

बालकों के आभूषण - किंकिनी , पैजगी, पहुँची,कटुला,बघनखा, नथुनी, नगफनिया[5]

1- लही चित्र विचित्र झूगूली,गीतावली 1/28
2- लसत झगोली झानी ,गीतावल 1/42
3- सुन्दर बदन सिर पगिया जर कसी ,गीतावली 1/42
4- कलित पीत पर तनिय (गो 1/21
5- ललित पनही पाय (गी1/43
6- छोटिए कछौटी कटि (गी-1/44.
7- विचिन टेघरो शशि 'कृगी -2
8- कटि किंकिनी पग थैजनी बाजे पंकज पानि पहुचिया राजे कठुला कंठ बाघकरवा नीके, (गी-1/28

स्त्रियों की वेशभूषा:

स्त्रियों की वेषभूषा के सम्बन्धमें तुलसी की भाषा में जिन प्रमुख शब्दों काव्यवहार हुआहै वे है (वस्त्रों के अनतर्गत) सारी चूनरी और पिछौरी तथा (आभूषणों के अनतर्गत चूड़ी ताटंकर तर्की बेसर हार कंगन किंकिकन पुपुर चूड़ामणि और मुदरी मुद्रिका आदि।[1]

पुरुषों की वेषभूषा:

पुरुषों की वेषभूषा के विस्तृत चित्रण का अवसर यदि तुलसी को कही मिला है तो वह सांकेतिक रूप में अपने आराध्य के सगुण विग्रह तथा अन्य देवताओं के सगुण रूप कावर्णन करते समय राम कृष्ण शिव आदि की वेषभूषा के प्रसंग इस विषय में ध्यान देने योग्य है इनमें भी दो प्रकार की शबदावली मिलेगी । एक तो वह जिसमें शास्त्रों में वर्णित परम्परागत देवरूप चित्रण के अन्तर्गत आयी हुई वस्तुओं क निर्देश है ओर दूसरी वह जिसके द्वारा तत्कालीन प्रचवलित वेषभूषा का भी कुछ परिचय प्राप्त किया जा सकता है प्रस्तुत अध्ययन में दमसरी कोटि की शब्दावली ही अधिक उपयोगी है।

किशोरे राम लक्षण की वेषभूषा का वर्णन करते समय पीतबसन (पीताम्बर) नागमनि,करनफूल चौतनी सिखाण्ड कुण्डल मुद्रिका ,अंगुलित्राण काकपच्छ तथा कृष्ण की वेषभूषा के वर्णन में मोर मुकुट पीताम्बर औरकुण्डल कानिर्देश हुआ है।[2] फुटकर शब्दों के अन्तर्गत प्रसंगानुसार प्रयुक्त कामरी, कुमान्व औरा कमब्ला उल्लेखानीय है । वनवासी वेषभूषा के अनतर्गत बल्कलचवरी, की चर्चा की जा सकती है[4]

1- मंगलमय दोउ अंग मनोहर ग्रभित चूनरी पीतपिछौरी । 1, 103

2- सिरनिसिखाण्ड सुमन दवमण्डल बालसुाािम बनाये गी-1,54
कलित कलकान्ति अति भाति कदुतिन्ह तनी गी-7,5
अंगुलि वान कमान वान छबि सुरनि सुखद असुरनि उरसाताति। गी- 7.17
सिरके किपच्चवछ विलोल कुण्डल अरून बनरूह लोचवन। श्रीकृष्ण-23

3- काम काजु आवै कामरी का लेकरै नुमाचव । दो 572
कंबल बसन विचित्र पटौरे । रा 1,326

4- विसमय हरष न हृदय कछु पहिरे बलकणचवरी । रा-2,165

खान पान से सम्बन्धित शब्द:

इस क्षेत्र में दो प्रकार की शब्दावली मिलती है एक तो खाद्य एवं पेय पदार्थो के नाम और दूसरे विभिन्न सामाजिक वर्गो की दैनिक जीवनन चर्या के अनतर्गत खान पानके कार्यक्रम की समान्य परम्परा केसूचक शब्द प्रस्तुत प्रसंग में पहला अंश अधिक उपयोगी है जायसी और सूर की भांति स्थान -स्थान पर तुलसी ने खाद्य एवं पेयपदार्थो के नामों की ऐसी सूची गिनाने की प्रवृत्ति काअनुसरण नहीं किया है कि उनहें सुनकर पाठकों के मुँह में पानी आ जाय । उनहोंने केवल विशिष्ट अक्सरों पर व्यहृत पदार्थो का बहुत ही संतुलित मात्रा में यत्र-तत्र निर्देश कर दिया है । प्रायः सांस्कृतिकद उतसवों के प्रसंग में शिष्टजनों क`खानपान मुद्रादि के प्रसंग में निशाचरों के खान पान स्फुट प्रसंग में काननवासी मुनिजनों ग्राम वासी अथवा वनवासी निम्नवर्गीय व्यक्तियों के खान-पान के विषय में थोड़ा बहुत संकेत वे करते गये हैं ।

शिष्टजनों के खानपान के प्रसंग में सूक शल ओदन सुरभि सरपि (गाय का घी), मेवा पछवान, मलाई, साड़ी रोटी और पान आदि शब्द [1] मुनिजनों के खानपान के प्रसंग में कन्दमूल फलफूल अंकुर आदि[2], निम्नवर्गीय व्यक्तियों एवं दरिद्र समुदाय के खानपान के प्रसंग में मीन, चना औ रोटी आदि तथा निशाचरों के खानपान के प्रसंग में महिष (भैंसा) मानुष धेनु खुर अज तथा मदिरा आदि उल्लेखनीय है । आदेवों के साथ साथ भात शब्द तो मिलताहै, परन्तु सूचक के साथ इसका पर्याय दाल शब्द जो आजकल इतना प्रचलित है तुलसी की शब्दावली में नहीं मिलता ।

1- दसमुख तज्योदूध माखी ज्यो आपु काढि साड़ी लई गी-5, 37

2- फल फूल अंकुर मूल धरे झुधारि भरि दोना नये गी -3,5

इसके अतिरिक्त स्फुट प्रसंगों में सांकेतिक रूप से खाद्य और पेयवस्तुओं के सूचक जिन शब्दों का व्यवहार तुलसी ने कियाहै उनमें सतुआ, गोरस, चिउरा दही माखन, मट्ठा,छीर और भोग विशेष रूप से उल्लेखनीयस हैं ।[1]

तपस्वी व्यक्तियों की चर्चा करते हुए मूल फल के अतिरिक्त वेलपाति (बेल की पत्ती) और बाग का भी उल्लेख हुआहै [2] तथा स्फुट रूप से निषिद्ध पदार्थो के अन्तर्गत लहसुन की भी चर्चा आयी है । खान पान के कार्यक्रम ने प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं के सूचक शब्दों में दोना पातरि तथापनवारा आदि उल्लेखनीय है ।[3]

दृष्टि का पता चवलताहै जो पारिवारिक जीवनकी छोटी सी छोटी साधारण बात को लेकर बड़ी-बड़ी महत्वपूर्ण समस्याओं तक पहुँची है यहाँ प्रत्येक कोटि और प्रत्येक वर्ग के परिवार का चित्र खकीचवने का प्रयतनउनकी शब्दावली में विद्यमान है । दशरथ और जनक जैसे महाराजाओं से लेकर निषाद और भील भलनियों जैसे निम्नवर्गीय व्यक्तियों के पारिवारिक वातावरण के विषय में न्यसूनाधिक संकेत तुलसी छोड़ गये है जिससे उनकी विस्तृत एवं सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति तीब्र मानसिक शक्ति तथा अपने निरीक्षण के सबल प्रकाशन में समर्थवाणी की गरिमा अभिव्यक्त होती है।

1- मेरे कहा धावु गोर से कोनव निधि मंदिर यसा महि । श्रीकृष्ण 5
मीमिाखन सियराम संवारे सकल भुवन छबि मनहु महीरी गी-1,104

2- सुषमासुरभि सिंगार छीट दुहि मयसन अमिय भयसकियो है हीरी । गी- 1,104

3- कलबल बचन तोतरे मंजुल कहिमा मोहि बुलैहो । गी 1,8

चवुटकी बजावती नचावती कोसल्या माता

बालकेलि भावति मल्हावति सुप्रेम भर ।।

कलक किल कि हासै द्वै द्वै दंतुरिपाल सै

तुलसी के मन बरै तो तरंबचवन बर ।गी 1,30

छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरि के तूदे री मैयातो कन्हैया सोकबअबहि तात,श्री-2

मन-मानक शब्दः

तुलसी की शब्दावली में यत्र-तत्र प्रसंगानुसार विभिन्न सम्बन्धियसों के लिये जिन विशिष्टशब्दोंका प्रयोग हुआहै उनमें माता तथाइसी अर्थ तें मातु जननी अब अबा माँ भाई माय मेंया और महतारी चिता तथाइसी अर्थ में पितु जनक और बाप पति तथाइसी अथ भरतार कन्त और खसम पति की तथाइसी अर्थ में कामिनी भामिनी बामा घरनी खनी त्रिय तिय बधू और प्रिया बहन तथाइसी अर्थ में भगिनी मौसी बन्धु तथाइसी अर्थ में भाई भाई भैयाऔर भ्रता पुत्र था इसी अर्थ मे सुत बालक तवय सुअर सुनु पूत बेटाऔरे डोटा पुत्री तथाइसी अर्थ में सुताकन्यसा तनया तनुजा और बेटी देवस सास सुसर समधी जामात भाभी नाती जेटि जेठानी सविति आदरार्थमें प्रयक्त जीजी औरमतेई विमाता के अर्थ में विशेष रूस्प सें उल्लेखनीय है।[1]

1- बेउछंग जननी रस भंग जिसय बिचवारी ।गी-122
कबहुक अब अवसरपाई । वि 4।
कलबल बचन तोतरे मुंल कहि मा मोहि बुलैहा गी-1,8
नहि कहु दोष स्सयाम को भाई । श्रीकृ0-5
जासय मायस जाय परिकथासोसुनाई है । गी- 26
बलदाई देखिमत दूरिते आवनि छाक पठाई मेरी मेया । श्री कृ0- 19
तज्योपिता प्रहलाद विभीषन बयंधु भरत महतारी । वि- 174
मेरे तो मायस बाप दोउ आखार हौं सिसु अरनिअरो । वि-226
देखो दखो बन बन्सयो आजु उमाकंत । वि-14
रावेरहेतु सतानन्द पूत भये मायके । गी-164
रह हु ावन हमरे कहे कामिनी
तलसिदास प्रभु विहर ववचन सुनिसहित सकी मुरछित भई अभिमानि । गी-2,5
परत पदपंकज ऋषि खनी । गी-156
ऋषि मखराख्यो रन दले है दुवर। गी-1,81
मातु मौसी बहन हूँ तो सासु ते अधिकाई

आचार-व्यवहार से संबंधित शब्द:

इसके अनतर्गत विशेष रूप से शिशुओं एवं बालकों का प्रसंग उल्लेखनीय है । शिशुपालनमें प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं तथा शिशुओं से सबंधित स्फुट व्सयापारों की सूवचक शब्उावली इस क्षेत्र में विशेष महत्व रखती है ऐसे शब्दों में पहने पर झूलना आँगनमें खोलना, ठुमुक ठुमुक चवलना,मिट्टी में खेलना, माताओं काचवुटकी बजाकर खेलाना, शिशओं का किनक किलकर हँसना, चिकनी वचुपरी रोटी के लिये शिशुओं कामचलना, दी भात मुँह में लपटा कर दौड़ना आदि व्यसापारों के सूचवक शब्द विशेष रूस्प से उल्लेखनीय हैं ।

करहि तापस तीय तनया सीमहित चितलाई ।गी-7,34

जाको वचोरेयो है चिवत चहु भाई । गी ।,2

पगनिकब चवतिहौ चारौ भैयसा गी-19

मेरे बालक कैसे धौ मग निबहहिगे ।गी-197

संकर सुअन भवानी नन्दन वि-।

गाल मेल मुद्रिाक मुदित मनपवन पूत सिर नायो ।गी-5.।

बूझत जनक नाथ ढोटा दोउ काके है गी-=162

।- कलबल बचन तोतरे मंजुल कहिमा मोहि बुलैहो ।गी-1,8

चुटेकी बजावती नचावती कौसलसयामात

बाल के लिगाव ति मल्हावति सप्रेम भरा।.

कलकि किलकि हसै द्वै द्वै हदतुरिसयाल सै

तुलसी के मन बसैतो तरे बचन बर ।गी- 1,30

छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरिकै तुदेरी मूं या ले कन्हैयसा सो कब अवहिता

श्रीकृष्0 -2

दिनचवयर्सा क अनतर्गत बालकों के जीवन से सम्बन्धित उपरोक्त बातों के अतिरिक्त जिनस्फुट बातों काउल्लेख किया जा सकताहै वे हैं अरूणशिखा(मुर्गा) की ध्वनि सुनकरप्रात:काल उठना शौच करना नहाना संध्यसा वेदन (प्रात: तथासायस दोनों समय' कथावार्ता में कुछ समय बितानाआदि ।

स्फुट कृत्यों के सूचक शब्द:

इनके अन्तर्गत विशेष रूप से लोरी महतवपूर्ण है ।ताएं किसी नकिसी रूपमें संसारकी सभी भाषाओं क साहित्य में मिलती ह` इसके अतिरिक्त बच्च्चों की पुचवकरारने औरमनबहलने के लिये उनकी चुजिया बढ़ने तथाविवाह इत्यादि की चवर्चा छेड़ने की प्रवृत्ति भी उल्लेखनीय है मे बातें आज भी भारतीयस परिवार में सुरक्षित हैं ।

संस्कार सूचक शब्द :

भारतीयस हिन्दू परिवारों के अन्तर्गत षोडश संस्कारों क ।परम्परा बहुत दिनों से चल आ रही हे । इनसंस्कारों के भीतरप्रयोग रखने व्यवहार में आने वाले शास्त्र गृहीत तथालोक गृहीत दोनों ह प्रकार के कुछ वशेष पारिभाषिक शब्दों के द्वारा कुछ विशेष कृत्यों और व्यसापारों की केवल क जाती है । तुलसीदास की रवचनाओं की भाषा उनमें से अधिकांश को अपनाये हूए है षोडश संस्कारों के अनतर्गत जिनसंस्कारों का चित्र तुलसी ने अपनी शब्दावली द्वाराउपस्थित करना चाहा है वे हैं जातकर्म नामकरन चूड़ाकरण कणविध यज्ञोपवती विवाह औरअन्त्यसेष्टि । स्फुट लोकसांस्कृतिक कृत्यों के अन्तर्गत इन्हीं के साथ साथ छठी बारहैं तथा नन्हू भी उल्लेखनीय है । वर्णन विस्तारऔरमहत्वोकन की दृष्टि से विवाह संस्कार की सूचक शब्दावली सबसे अधिक काम की है । इस बात का प्रमुख प्रमाण यही है कि मानस गीतावली और कतिवा का बालकाण्ड में वर्णित राम विवाह

प्रसंग को पसर्याप्त न समझ कर दो स्वतन्त्र ग्रन्थ पार्वती मंगल और जानकी मंगल विशेषरूस्प से कवि ने पार्वती औरजानकी जी के विवाह के उपललक्ष में ही रचव डाले हैं जिनमें तद्विषयसक विविध कृत्यों की सूचक शबवली का प्रचवुर मात्र में प्रयोम हुआहै अएक बात और ध्यान देने योग्य है कि प्रायः श्री रामचन्द्र जी के ही जीवनको लेकर उक्त संस्कारोंका चित्र प्रस्तुत कियसागयाहै । अन्त्येष्टि संस्कार इसका अपवाद है । इसका चित्रण दशरथ गीधराज जटायसु, तथाराव आदि के देहान्त के अवसरपर खींचा गया है स्फुट संस्काराकें के अनतर्गत ननहू को विशेष प्रधानता दी मयी हे । रामललानहहू जैसे एक स्वतन्त्र ग्रन्थकाप्रणयसन इसकी पुष्टिक करताहै । क्रमशः उक्त संस्कारों की सूचक शब्दावली का संक्षिप्त निद्रेश नीचवे किया जा रहा है ।

जाकर्म से संबंधित शब्द मानस और गीतावल में विशेषस्रूप से प्रयसुक्त हुए है इससे संबंधित स्फुट कृत्यों में सबसे अधिक व्सयापक सवे महत्वपूर्ण रूप में सोहिलो गाने के प्रथा जिसे अधिक आजकल अवधी घरेलू बोली में 'सोह' के नाम से पुकारते हैं औरजो आज भी इस संस्कारका एक प्रमुख अंग मानाजाताहै विशेष रूस्प से वर्णित है अन्य कृत्यसों में नान्दी मुख्ा श्राद्ध करना हाटक (स्वर्ण) धेनु वान और अणि आदि ब्रात्मणों को दान देनास्त्रियों कासमूहिक गानकरना और आर्शीवाद देना[2] गलियसों में कुकुम अरगजा अमर और अबीर आदि का उड़ाना[3] नृत्य[4] चवौके रचवना[5] दलफल फूमल दूब दधि और रोचन

1- सहेलीसुनु सोहिलोरे ।
सोलिलो सोहिलो सोहिलो सोहिलो सब जग माजा ।
भूपति सदन सोजितोमुनिबाजे गहगहे निसान । गी-12

2- सहज सिंगार किये बनिता चवली मंगल विपुल बनाई ।
गावहि देहि असीस मुदिन चिवरजिवौतनय सुखराई । गी-1,1

3- वीमिभन्ह कुकुम कीचव अरगजा अबीर उड़ाई । गी-1

4- नाचहि पुरवरनारिप्रेम भरिदेह दसाबिसराई । गी-1,1
नृत्य करहि नट नही नारिनर अपने अपने रंग । गी-1,2

5- सींविचसुगध्य रचे चौके गृह आगन गल बाजार । गी-2

छिड़कना [6] प्रजा का ढोब (उपहार)' लेकर चलना[2] उल्लेखनीय है बाजो में घण्टा घण्टी परखावज आउज झाँझ बेनु उफऔर तारक । प्रयसोग ऐसे अवसर पर पुचर ता से होता था [3] कालाहल और भीड़ भाड़ आदि का मनोरम उल्लासपूर्ण दृश्य[4] बाजकी भारतीय परिवार में जाककर्म संस्कार के अवसर पर अपनी पूर्ण छटा क साथ उपस्थित होताहै ।

छठी:

बालक के हन्जम दिन के छठे दिन का संस्कार ठी के नाम से प्रसिद्ध है इस अवसर पर प्रयः नारियां रात्रिभर जागरण करके अनेक कृत्य करते हए आनन्दोत्सावमानती है । तुलसी की शब्दावली में इ जागरण के अतिरिक्त अन्यकृत्यों के अन्तर्गत मूलिकामनि रखाने तथा देवी देवताओं के न्यसोतने का वर्णन मिलता है ।[5]

नामकरण:

बालक के नाम रखाने का संस्कार नामकरण कहलाता है जो परम्परागत रूस्प में ही तुलसी ने उपस्थिति किया है । इससे सम्बन्धित कृत्यों में कुल पुरोहित का सुदिन शोध कर नाम रखाना साथ साथ जल दल फल मूलिकामनि आदि का व्यवहार गनपति गौरि हर तथा गौकी पूजा चवौक पर शिशु को लेकर माता का बैठना और पुरोहित द्वारा वेद ऋचा का पाठ इत्यादि का उल्लेख महत्वपूणा है ।[6]

1- दल फल दूब दधि रोचक घर घर मंगल चवार । गी-2
2- लै लै ढोब प्रजाप्रभुदिन चवले भाति भाति भरि भार । गी- 2
3- घंटा घेटि पखावज आठलज झाझा वेनुदफतार । गी-12
4- नभ प्रसून भरिपूरी कोलाहल मभइमन भावति भीर । गी- 1,3
5- जागिम रामछठी सजनी रजनी रुचिवर निहारि
तिन्ह की छठी मजुल मठी जगसरस जिन्की सरसई ।
6- रामलषन रिपदवन ारत धरेनाम ललित गुल्स्त्रानी । गी-1,4
नामकरन रघुवरि के नूप सुदिन सोधीए ।

बारहौ :

बालक के जनम लेने के बारहवें दिन का संस्कार इसका भी नाम मात्र तुलसी की शब्दावली में निर्दिष्ट है ।[1]

चूड़ाकरन-:

इससंस्कार का नाम मात्र का उल्लेख तुलसी ने कियाहै ।[2]

कर्णवधन औरउपनययसन :

इसका भी उल्लेख तुलसी ने बहुत संक्षेप में कियाहै -

नहहू:

यसह वसतुतः या तो यज्ञोपवीत के समय का अथवा विवाह के प्रारम्भिक कृत्यों से सम्बन्धित प्रमुख कृत्य है इसकी प्रमुख क्रियाओं का निर्देश तुलसी ने अपने राम तलानहहू में विस्तार पूर्व कियाहै सर्वप्रधान क्रिया के नरखों में नहरनी हुआने की और इसीलिये सम्भवतः इस का नाम भी नहहू अथवा नखादू पड़ गया है आज कलग्रामीण ाषामें कही-कहीं इसे नाखुर भी कहते है इस प्रमुख कृत्य के साथ अन्यस स्फुटिक कृत्यों के अन्तर्गबाजाबजाना, बॉस के माडन छाना, मोतियों की झालर तथा झुलन लगाना गंगाजल का कलस गॅगाकर सम्बन्धित व्यसक्ति को नहलाना चवौक पुरवाना अर्घदेना करनक खाम्भ रना मानिककन्दीप तेयार करना मामन गारी आदि का निम्नवर्गीय परजों का अपनी अपनी प्रासंगिक वस्तुओं के साथ आना,जैसे बरायन लेकर तोहारिन का दहेडि के साथ अहीरिन का बीड़ा के

1- छठी बारहौ लोकवेद विधि करि सुविधान बिधानी ।गी- 1,4

2- चवूड़ाकरन कीन्ह गुरूस जाई विप्रन्ह युनि दछिनाबहुपाई । राण 203

3- करनबोध उपवीत विहाआ संग संग सब कए उछाहा । 203

तबोलिन का जोरा के साि दराजिन का पनही के साथ मोचिवन ययका और के साथ मालिकनका छाते के साथ बारिन और नहरनी के साथ नाडकनिकाआना और मागलिक गारी देना आदि के सूचवक शब्द उल्लेखनीय है ।

विवाह संस्कार :

इसप्रसंग में व्यवहृत शब्दावली स्थूमल रूप से तीन वर्गो में रखी जा सकती है -

1) वैवाहिक सजधत से सम्बन्धित शब्द ।

2) वैवाहिक सांस्कृतिक कृत्यों क सूचकशब्द ।

3) इस संस्कार के साथ लगी हुइ परम्परागत रुढ़ियसों के निर्देशक शब्द इन सभी का न्यूमनाधिकांश में प्रयसोग हुआहै और प्राय3 इन प्रसंगों में ऐसे ही पारिभाषकि शब्द रूपों का व्यवहार किया गया है जो आजकल भी प्रयस: अपने उन्हीं रूस्पों से सुरक्षित मिलतेह । इनमें शास्त्रीयस आधार की अपेक्षा लोकसांस्कृतिक आधार अधिक व्यापक रूस्प में ग्रहण कियसा गया है ।

वैवाहिक सजधज :

से सम्बन्धित कार्या के अनतर्गत जिनका संकेत तुलसी का शब्दावली में हुआ है वे है मण्डव कनक कदली के खम्भे बन्दरगवार चवौक मेंगल कलस ध्वजापताका चववर आदि सामान ढोने के पशु औत वस्तुओ से संबंधित तैयारी नट विदूषक मागध सूत भाट नाउ बारी कहार आदि विभिन्न व्यवसायें का एकत्रीकरण नाना प्रकार के वाद्य शहनाई मृदंगइत्यादि विविध भाति की खाद्य सामग्रियों और उपहारा दि का समुचित प्रबन्ध इत्यादि ।

सांसकृतिक कृत्यो: के सूचक शब्दावली के अनतेर्गत विशेष रूप से बरेखी आजकल इसकार्य को अवधी की घरेलू बोली में बर देखी के नाम से पुकारते हैं जिनका तात्पर्य कन्या के लियसे वर दूढना तथा बीचव में पड़कर विवाह का निश्चय करनाहोता है । वेदी तैयार कराना कलसभापना तेल चढ़ानालगन देना अगवानी जनवासा सामध पावडढ़े पड़ना परछन आखी शानितपाठ अरघ मधुपर्क नेगचार अग्नि अपवना कुसोदक लेना कन्या दान का संकल्प साखोच्चार पानिग्रहण सिंदूर वंदिन होम लावा सिलपोही जेवरा गारी और निछावर आदि उललेखनीयहै । मुँह दिखाई की प्रथा का निर्देश भी हुआ है।

परम्परागत रूढ़ियों के क्षेत्र में दूलहा और दुलहिन की विशिष्ट वेषभूषा तथा राइज की प्रथा और उसका वाह्य स्वरूप आदिबातों की चर्चा आ जाती है । रामचरित मानस पकार्वती मंगल और जानकी मंगल में इस विषय से सम्बन्धित शब्दावली पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त हुई है ।

दुल्हा दुलहिन की वेषभूमषा श्रृंगार के विषय में जावक महावध पीति धोबी किंकिन कटि सूत्र पीत जनेउ पिरार उपरनामुद्रिका कण्डल तिलक और गौर तथादुलहिन की वेषीभूमषाके अनतर्गत चुनरी और पीत पिछोरी जिसका कुछ निर्देश पीछे स्त्रियों के वेषभमूषा के प्रसंग में कियाजा चुका है उल्लेखनीय है ।

दहेत दी जाने वाली वस्तुओं का निर्देश करने वाले शब्द तुलसी की शब्दावली में पयसाप्त मात्रा में मिलते हैं जिनके देखने से स्पष्ट हो जाताहे कि इस प्रीाको विवाह का एक बड़ा व्यापक अंग मानकर तुलसी चवले हैं इन वस्तुओं में विशेष रूप से केवल गज, रथ दास दासी धेनु उपहार तुरग स्वर्ण वस्त्र मनि महिषी आदि उल्लेखनीय है । विवाहोपरोन्त सुदिन सोधकर केकन छोरने की प्रथातथा परदा अथवा घूघट की प्रीाका विवाह संस्कार सूचक शब्दावली के अनतर्गत ही वर्णन हुआ है जिनमें पहली तो विवाह

संस्कार के पश्चात होने वाली किनतु उसी भासक यह महत्वर्पू अंग मानी जाने वाली क्रिया है और दूसरी का सम्बन्ध गूहस्थ परिवारों के भीतर प्रचवलित स्त्रियों की समान्यस रहन सहन कीपद्धति से हैं कि केवल विवाह संस्कार से ।

विवाह संस्कार सूचक शब्दावल में जोशबद्ध दो प्रकार के हैं एक तो वे जो प्राचवनीग्रन्थों में वर्णित सांस्कृतिक कृत्य मिं अथवा सांस्कृतिक रूढ़ियें को परम्परागत रूप में चित्रण करते हैं उनमें काई विशेष मौणिकता नहीं पायसी जाती है और नह ही निश्चित रूप से यही कहा जा सकता है कि वे तुलसी के समय में प्रचलित भैसया नहीं ।दसूरे वे शब्द हैं जो सचमुच तुलसी की संस्कृति रूसऐयों के अन्तर्गत विवाह संस्कार के समय सीं काघनुष दूल्हे को देखकर उसकी शक्ति की विनोदमय परीक्षाकी जाती है । इसी प्रकार एक दूसरी रूढ़ि है कोहबर में दूल्हा और दुलहिन को जुआ खेलने की यह ापकता भी बराबर किसी न किसी रूस्प में दृष्टिगोचर होती है । इसप्रकार के शब्द बहुत कम तुलसी की समकालीन रूढ़ियों की ओर संकेत करते हैं किन्तु मण्डप निर्माण पाणिग्रहणआदि कृत्यों से सम्बन्धित शब्द प्राचीन परम्परा के सूचवक है ।

अन्त्येष्टि संस्कार :
- - - - - - - - - -

इससंस्कार का यूचक क्रिया शब्द जो वसतुत3 शाब्दिक अर्थ मेकं किसी भी कासर्य काबोघक होते हुए भी इस संस्कार के अर्ीं में रूढ़ हो चवला ह`और आज तक इसी रूपमें चल रहाहै तुलसी की शब्दावल में भी व्यवहृत हुआ है ।

अयोध्या में भरत द्वारा दशरी की दाहक्रियाके पंसग्र में अन्त्येष्टि की कुछ विधियों तथा उसके अनतर्गत प्रयुक्त होने वाल कूछ वस्तुओं का निर्देशन बहुत स्पष्ट शब्दों में कियागयाहै । इनमें वैरिक रीति से मृत व्यसक्ति केशव का कहलाना उसको उपयुक्त वाहन में रखाकार पवित्र नदी के समीप हो जाना चवंदन अगर आदि सुगन्धित काष्ठ सामग्री

द्वारा चिवता का निर्मा करके उसमें शव का दाह करना तिलांजलि देना शास्त्रीयसरीति से दशगान्त विधानक के अन्त्येष्टि क्रिया करने वाले का शुद्ध होना ब्राम्हणों को दाव देना दान के अनतर्गत दी जाने वाली वस्तुओं में धेनु हाथी नाना प्रकारके वाहन सिंहासन ाूषण वस्त्र अन्न पृथ्वी धन और गृहआदि की चचर्खा आई है। विशेष रूप से उल्खेनीयहै शव को देर तक अविकृत रखने के लिये उसे तेल की नाव में रखने का उपाय प्रचवलित था इस का संकेत भी मिलता है ।

त्यसौहार सूचक शब्द :

हिन्दू समाज में प्रचलित त्यौहारों के अनतर्गत झूला और फाग काही विशद चित्रण तुलसी की शब्दावली में मिलता है । वस्तुतः में दो त्योहार ऐसे है जो कुछ मन त्योहारों की भाँति केवल कतिपय उच्च अथवा मध्सयम वर्ग की पतियों के ही नहीं वरन सम्पूर्ण भारतीय जनता के सभी वर्णो एवा ज्ज्ञथ्त्रूज्ञे व ल्ज्ञैग्ज्ञे द्वारा समान रूप से और समान अधिकार से मनाए जाते हैं । यहाँ पर इसबात पर बल देने का प्रमुख काल यह है कि तुलसी का विषय तत्वइतना विस्तृत और इतना व्यापक था कि वे बिनाकिसीप्राकर की असुविधा के बिना प्रसंग के बाहर गमे हुए है अन्य त्योहारों पर भी जिनका नाम मात्र कहीं-कहीं उन्होंने प्रासंगगिक रूप से तो लियाहै थोड़ा विस्तारके साि लिख सकते थे । ऐसे स्फुट त्योहारों में दीवारी दीपावली तथा होली उल्लेखनीय है । दिवारी अथवा दीपावली के लिये प्रयुक्त शब्द दीपमालिका की चर्चा भी यहाँ पर की जा सकती है ।

झूला से सम्बन्धित वस्तुओं और कृत्यों के सूचवक शब्दों के अनतर्गत ही डोलनाझूलन सवान स्त्रियों का समूाीक ल्स्प से साज श्रृगार के साथ झूलने के लिये जाना ओसरी ओसरी बारी बारी एक दूसरे का झुलना और स्वयं झूलनागौड़ और मलारगाना खम्भपाटि

जिस पर बैठकर झूलते हैं उसकी को पटुली के नाम से भी प्रकारा गया है । स्त्रियों का कुम्भ भी चवीरपहनका गुण्ड और मलार के अतिरिक्त सोरन सांरग आदि रोगों के बाद गान्य उलोक मचना मचक शब्द बड़ा ही ठेठ और बोधक है और यह शब्द झूले के अत्यन्त तीव्र गति से चलने का बोध कराता है । इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।[1] फाग का उत्सव बसंत ऋतु में फागुन के मास में बड़ी धूमधाम के साथ मनाया जाता था इसके अनतर्गत उएक से एक मनोरंजक और विनोदमयस शिष्ट से अशिष्ट दृश्यों और कृत्यों का रूप उपस्थित होताथा। इन सबका संकेत तुलसी ने जिन शब्दों द्वारा किया है उनमें विशेष रूस्प से बसंत अबीरकी झोलिया पिचकारी मृदंग उफ ताल और बेनु आदि रूपों का बजाना सुगन्धित मलयरेणु का छिड़करनाक रंगविरंगे वस्त्राीूषण पहने हुए युवतियों के यमी का छरी तैब लेकर विभाग सोधनाऔर सरसराग से चाव्चरि और झूमक कहना ललनाग णकादौड़ना आजकल की मथुरा के वरसों ने जेसे स्थलों में जो फाग का विशेष सांस्कृतिक केन्द्र माना जाताहै स्त्रियों की छड़ी लेकर पुरुषों को मारने दोउ़ती है और पुरुष्ला अपना बचाव करते हुए भागते हैं यह कृत्य बड़े ही पारस्परिक आनन्द एवं विनोद क`साि सम्पन्नहोताहै यद्यपि इसमें पुरुषों को कभी-कभी ऐसी चोटे भी लग जाती है वे महीनों तक

।- आलीरी राघो के रूचिर डिलना झूलन जैए।
उनमें सघन घनघोर मृदु झरि सुखद सावन लागा ।
सो सभै देखि सुहावनो नव सत संवारि संवारि ।
गुनरूप जोबन सीव सुन्दरचवली झुडनि झारि ।
हिण्डोल साल विलोकि सब अंचल पसारि ।-2
लागी असीसन रामसीताहि सुखसमाजुनिहार ।
झूलहि झुलावहि ओसरिन्ह गावै सुगोड़ मला ।ग ी-7.18.
गूह गूह रचे हिडोलना महिगचव कॉच सुठार ।
सरल निसाल बिराजही विद्रम खम्ब सुजोर ।
चवारू पाटिपही पुरट की झरकत मरकत और ।
मरकत भवर डाडी कनक मनिपटित दुति जगमगि रही ।

लियसे पड़ जाते हैं । फगु समानकर लोचवव आलंजनाऔर हा हा कराकर नचा नचाकर छोड़ना विदूषकों कास्वांग साजकर खरों पर सवार हो निर्वज्ज होकर कुटोत्कतयों करना नरनारियों का परस्पर गारीदेनाऔर लोगों का उसमें भी विनोद का अनुाव करना किंसुग वर्गका वातारण अबीरके साथ साथ कुकुभ इत्यादि भरनाऔर विखेरना और अन्त में चाचकजनों का भूषन ओर चवीर आदि का दान देना इत्यादि उल्लेखनीय है।[1]

विदूषकों के स्वाँग और बद्दीगतियों के दृश्य आजक भी दिखाई पड़ते हैं । फाग के सम्बन्ध में पीछे जिनकृत्यों का निर्देश कियागाहै उनमें एक बात विशेष रूप से स्पष्ट है कि वह इस पर ब्रज प्रदेश में प्रचलित फाग का प्रीाव वै भी परम्परगात रूपमें रामरित वर्णन के अन्तर्गत फाग इत्यादि का विशेष विवरण मिलने से तुलसी ने कृष्ण लीला सम्बन्धी ग्रन्थों तथा कृष्णलीला के केन्द्रों से ही इस उत्सव की शब्दावली इत्यादि ग्रहण की होगी । यह भी सम्भव है कि तुलसी के समय मे सामान्य इत्याद रीति से जनता में फाग का उत्व इसी प्रकार मनाया जाता रहाहो ।

शिष्टाचार सूचक शब्द :

शिष्आचार का स्वरूप प्राय: उन स्थलों पर प्रयुक्त शब्दावली में दिखाई देताहै जहाँ तुलसी ने सभा सोसायटी अथवा उत्सव आदि का प्रसंग चित्रित कियाहै जसमें सामूहिक रूप से कई व्यक्ति किसीन किसी रूप में भाग लेते हैं। इसविषय में अयोघ्या जनकपुर चित्रकूट और लंका का तथा जनसमुदायस के वातावरण के वर्णन में आये हुए शब्द विशेष रूप से ध्यसान देने योग्य है । चित्रकूट की सभा में इसकी सबसे विकृष्ट शब्दावली

1- खेलत बसंत राजाधिराज । देखत नभ कौतुक सुर समाज ।
सोहैं सखाअनुजर धुनाी साथ । झोलिन्ह अबीर पिचवकारिहाय ।।
बाजहि मृदंग उफ ताल बेनु । छिकहीं संगंध ारे मलमरेनु ।।

मिलेगी । दूसरे प्रसंग को तुलसी की दृष्टि से शिष्आचार के अन्तर्गत ग्रहण करना उचित नहोग क्यों कि वे राक्षसों की सभा में इस प्रकार के शिष्टाचार को अस्वाभाविक समझते थे

ऐसे शिष्आचार सूचक शब्दों में प्रणाम अथवा अभिवादन कासूचक जयजीवन शब्द सांस्कृतिक दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण है इसका संव्यवहार दशरथ और उनके संवकों के वार्तालापमें तथा सुभंत दशरथ वार्तालापमें और राम सुमत संवदमें विशेष रूप से दृष्टि गोवचर होताहै। केवल राजकीय प्रसंगों में इस शब्द का प्रयोग इस तथ्य का द्योतक है कि सामान्य जनता के बीच नहीं ,वरन शिष्ट उच्चकोटि के राजदरवारों में विशेष आद सूचवक प्रचवलित रहाहै ।

शिष्टाचार सूचक अन्य शब्दों के वाक्यों केअ न्तर्गत प्रमुख रूप से उल्लेखानीय है साधु साधु शाबास के अर्थ में अथवा बहुत ठीक के अर्थ में बलि जाउ मेरे विसषिगति रावरी मुझे तो शिपरा ही सहाराहै जैसा आजकल भी शिष्टाचारमें लोग बोलते हैं बात चल बात को नमानिबो विलग बलि बात चवलने पर कोई लगने वाल बात कह दी जाय तो बुरा

उतजुवति जूथ जानकी संगा पहिरे पट ाूण्ण सरसरंग ।।
लिये छीर बेंत सोधे विभाग चवाूचवरि झमक कहै सरस राग ।।
नुपुर किं किविधुनि अति सुहाई । ललनागवजनब जेहि धरहि धाई ।
लोवचन आजहि फगुआ मनाइ । छाड़हि नचवाई हा हा कराई ।।
चढ़े खारनि विदूषक सवाँगसाजि करै कूट निपट गईजाल भाजि ।।
नरनारि परसपर गारिदेत, सुनि हसते राम माइन्ह समेत गी- 7,22.
खेलत फागु अवधपति अनुज सखा सब अंग ।
ताल मुदग झाझ उफ बाजहि यवन निसान ।
सुधर सरस सहनाइन्ह गावहि समयसमान।।
किसंकु बरन सुअसुक सुषमा सुखनि समेत
कुकुम सुरम अबीरनि ारहि चतुर बरनारि ।
खेलि बसंत कियो प्रीाु मज्जन सरज। नीर।
विविध भाति जाचक जनपाए भूषन चीर ग-7,2

न मानियेगा -यह ढंग भी आधुनिक वार्तालाप में बराबर मिलताहै । इनमें केवल साधु साधु शब्दऐसे है जो आधुनिक शिष्आचार में बिल्कुल प्रयुक्त नहीं हो। सम्भवतः तुलसी के समय में विशेष कर संतों की मण्डली में यह शब्द खूब प्रचलित रहा होगा।

व्वसाय सूचक शब्द :

प्रासय3 व्यवसायें के रूप में ही समाज क विभिन्न वगो तथा विभिन्न श्रेणियों के व्यक्तियों के रहन-सहन तथा उनके द्वारा प्रयुक्त वसतुओं के सम्बन्ध में ठीक-ठीक जानकारी हो पती है । तुलसी के शब्दावल के आधार पर विचवर करें तो उसमें द्रृष्टि से लगभग वह सम्पूर्ण सामग्री मिलतीहै जिसका सामान्य जनजीवन के किसी क्षेत्र के लिये कुछ भी उपयोग रहा है । इनमें प्रमुख रूस्प से किबी किसान,बनिक भिखारी भॉट चाकर नट चोर चार चेटकी व्यवहरिया धनित (महाजन पासाहूकार के अर्थ में बजाज सराफि उपरोहित नाउ बारी कहार जोलाहा बट पिर दूत वैद माली सूत मागध गायसक आमभी (ज्यातिषी) भड़आ दर्जी ये शब्द व्यससायस करने वालों के लिये [2] तोहानिरन अहिरिन तमोलिनि दरजिनि मोचवानि मत्राणि बारिनि उनि मादिशब्द व्यवसाय करने वालों की पत्नियों के लिये जिनका निर्देश पीछे संस्कार सूचवक शब्दों क अन्तर्गत प्रासंगिक रूस्प में हा चवुका है तथा मसूर खुरपा खरिया आलबाल खेत के धोपाही खेती पारई खारी खालेल अवा

1- कह साधु साधु गाधिसुवन सहाहे राउ महराज जानि जय ठीक भली दई है । गी-1,84

हौ बलि जाउ और को जावै कही कपि कृपा निधान सो । गबी-5,33

मेरे बिषेषि गतिरावरी तूलसी प्रसाद जाके सकेल अमल भागे । गी-25

2- ललित लगप लिखि पत्रिका उपरोहित के करजनक जनेस पठाई । गी-1,10

तासुदमत में जाकरि हरि आवेछप्रिय नारि । रा 5,2

सूतमागध प्रवीन बेनुबीनाधुनि द्वारे गायक सरसरागरे -27

करतल निरखि कहत सब गुनगन बहुतन्ह परिचौपायो । गी- 1,14

)जिसके भतर रखाकर कुम्हार वर्तन पकाता है) घट व्यौत)कपड़ा कतरने के लिये दरवियों का पारिभाषिक शब्दों और कोल्हू पेरनाआदि शब्द व्यवसाय सम्बन्धी वसतुओं एवं कृत्यों की दृष्टि से उल्लेखनीय है ।[1]

1- फटिक भीति सुचारा यहु दिसि भंजु मनिमम पौरि ।
गच कोच लखिमन नाचव सिखि जनुपाँचस सुफसौरि। मी- 7,78

उपसंहार

भाषा भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम है । तुलसी ने अपनी रचनाओं के मानस का कल्याण कियसा । उनके पूर्व रामकथा की भाषा संस्कृत थी । तुलसी भाषा मं रामकथा प्रस्तुत किया जिसके परिणमा स्वरूप उन्हें अनेक विरोधों का सामना करना पड़ा । इनविरोधों के अनन्तर भी लोकभाषा का पथ तुलसी ने नहीं छोड़ा उनके अनुसार कालभाषा की एकमात्र कसौटी यही है कि वह वर्ण्य विष्य के भावों को कितनाअधिक व्यंजित करने में सफल हो सकी है । भाषा के माध्यम से ावों की सफल अभिव्यक्ति तभी सम्भवहै जब भाषा भावों की अनुमागिनी हो काव्य भाषा के सम्बन्ध में तुलसी किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह को लेकर चलने के पक्ष में नही थे ।

काव्यभाषा के सम्बन्धमें तुलसी की उक्त मान्यतायुगीन परिस्थितियों से प्रभावित है क्रूर शाकसेंक`अ अत्याचार से पीड़ित हिन्दू समाज ने भी आस्था जागृत करने के लिये थे अपने काव्य के प्रचवार करना चाहते थे । इसलिये वे काव्य में ऐसी भाषा के पक्षणर थे जो साधारणतयसा के लिये बोधगम्यहो । उनकी काव्यभाषा भाव सौन्दर्य का अनुगमन करती है । उसमें अनुभूति की ईमानदारी ओर जीवन की सच्चाईहै । तुलसी को संस्कृत का पूर्णज्ञान था और उसके प्रति परम आस्थाभी थी जो विनयपत्रिका के स्त्रोतों तथा रामचवरित के प्रत्येक काण्ड की प्रारम्भिक बन्दनाओं में अभिव्यक्ति हुई है ।

तुलसी सरल काव्य भाषा के प्रयोक्ताथे । उनके युग में साहित्यिक सेव में अवधी और ब्रजभाषा का प्रचवलन था। उनके काव्यस में ब्रज तथा अवधी के वभिन्न स्तर दृष्टिगत होतेह ें । गीतावली कृष्णगीतावली था विनयपत्रिका के स्त्रोत संसकृत निष्ठ ब्रजभाषा में रचवे गये हैं । रामचवरितमानस जानकी मंगल ,पार्वतीमंगल तथा बरवै रामायण की भाषा साहित्यिक अवधी है । कवितावली में सामान्य ब्रजभाषा प्रयुक्त है तो`रामलला

ननहू की भाषा ग्रामीण अवधी है । उनकी अवधी कृतियों में ब्रजभाषा तथा ब्रजभाषा में रचवे गये है। रामचरितमानस, जानकीमंगल , पार्वतीमंगल तथा बरवै रामायणकी भाषा साहित्यिक अवधी है । कवितावली में सामान्य ब्रजभाषा प्रयुक्त है तो रामलला रचवनाओं में अवधी के प्रयोग प्राप्त हो जाते हैं । तुलसी की रचनाओं में ब्रज तथाअवधी के अतिरिक्त संस्कृत बुंन्देलखण्डी, भोजपुरी, अरवी ,फारसी के शब्दों का प्रसयोग भी कियागयाहै । भाषा के प्रति उनकी दृष्टि अत्यन्त उदार थी ।

तुलसी ने काव्यसृजन के पूर्व विभिन्न शास्त्रों तथा पुराण ग्रन्थों कागम्भीर अध्ययन किया । अतः काव्यभाषा के साथ-साथ संस्कृत का पाण्डित्य उन्हे प्राप्त था। रामचवरित मानस,विनयपत्रिका तथा गीतावली में संसकृत कापुचुर मात्रामें प्रयोग किया गया है । तुलसी का संस्कृत प्रयोग संस्कृत के व्याकरणिक नियमों में वेदा आबद्ध नहीं हैउन्होंने ब्रज अवधी तथा अरबी फारसी के शब्दों काभी यथावसर संसकृती करण किया है । उन्होंने अनेक शब्दों में संस्कृत के अनुस्रूप निर्मित किया है जेसे गुनानी, नामानी, नौमि सुमिरामि आदि । संस्कृत के अनेक लोकप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी तुलसी ने कियसा है किन्तु उनकी विशेष दृष्टि ब्रज औघ्र अवधी के प्रकृति के अनुकूल तद्‌भव शब्दों की ओर अधिक रही है । उनहोंने अटेर कनी बॉझ और सवति पाइक बरिआता गम भय पारवार लोमन आदि तद्‌भव शब्दों का प्रयोग कियाहै । तुलसी की भाषा में प्राकृत और अप्रभंश का प्रभाव भी परिलक्षित होता है ।

तुलसी का भाषा में देशज शब्दों का प्रयसोग भी खूब हुआहै गोड, टाट, मोट डाग डोगर लबाई अवटर ढढोरी उसाईघमोई ढडरबर हेरी गुडी कलुकाई आदि देशज प्रयोग है तुलसी ने अनेक स्थानों की सयात्रायसें की थी वे ऐसे सन्त थे जो काशी,अयोध्या, चित्रकूट में रहत हुए भी भ्रमणशील थे । चित्रकूट सभी प्रदेश में बुन्देलखण्डी बोली काप्रयोग होता

है इसका प्रीााव तुलसी की भाषा पर पड़ा है। सुपती कोपट, पनवार, चारितु , खोरा, गेड़आ,आडिगो, कीबो, डारिब , घाइबो, जानिकी इत्यादि बुन्देली के शब्द हैं । काशी की बोली भोजपुरी है । इसलिये भोजपुरी के रिहल घायसल, राउट रावरी, जहवा, तहवा, लोइ, सुताइ, सूतल आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं । बघेली के सुआर बागत, जून आदि शबदों काप्रयोग भी कवि ने कियसाहै । दारू, कलको, माठ, मनहारि मेली इत्यादि राजस्थानी दरिया, लाघे,भूकिये,भोगी इत्यादि गुजराती पावारो अवकलत फोकट आदि मराठी शब्दों का प्रयोग हुआहै।

तुलसी का आविर्भाव मुगलकाता के उत्कर्ष के समय हुआ था । फारसी मुगल शासन की राजभाषा थी । अतः जनमानस की भाषा अरबी, फारसी से प्रीाावित होगयसी तुलसी की भाषा पर अरबी फारसी काप्रीाव पड़ा । इन शब्दों में पोचव ,कागज, सोह लायक जमात निसान दाइज पहान दरबार लबार मजूरी सर्राफ हुनर दाम गुलाल सिरताज गरीब कसम गुमान असबाब रहम सुमार राजी रूखा अदेस रैयत फीहति बेगार खलल कबमूल इत्यादि शब्द जनभाषा में घुल मिल गये थे इसके अतिरिक्त गनी साहिमानी फराक सालिम सरखुतु दराज हबूब भवासो छिरसयानी इत्यानी शब्दों के प्रयोग लोकभाषा में प्रचलित नही थे अतः ऐसे शब्दों के प्रयोग खटकते हैं ।

तुलसी ने अपनी भाषा की सशक्त अभिव्यंजनाके लिये लोकोक्तियों औरमुहावरों का प्रचुर प्रयोग कियाहै । कहीं अर्थ को तीव्र बनाने के लिये और कहीं कथन को प्रभावोंतपादक बनाने के लिये मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है ।

तुलसी के शब्द की अर्थशक्ति का सम्य ज्ञान था । एक अर्थ को व्यक्त करने वाले अनेक शब्द होते हैं । कहा किस शब्द से अर्थ व्यंजना सफल होगी इसका

पूर्णज्ञान गोस्वामी जी को था। शब्दों के अर्थो के सूक्ष्म अन्तर से भलीभाँति परिचित थे । इसलिये उन्होंने शब्दों का बहुत ही उपयुक्त प्रयोग किया है ।

तुलसी की विवेच्य रचनाओं में शबद प्रयसोग की दृष्टि से ये विशेषतायें उनके शब्द अनुशीलन की प्रेरणा देती रही है । इसी उद्देश्य प्रस्तुत प्रबन्धमें तुलसी के शब्द वैभव का अनुशीलन किया गया है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध में शोध क्रम में वर्णनात्मक पद्धति से पहले शब्दों के अलग-अलग कार्ड बनाये गये । इसके पश्चात कार्ड पर शब्द संकेत सूचक संख्या प्रयोग संदर्भ और अर्थ लिख कर कार्ड पद्धति के आधार पर रचनाओं का सर्वेक्षण किया गया। इसके पश्चवात उन शब्दों को अनादि के क्रम से व्यवस्थित करइदो बार आने वाले शब्दों को अलग किया गया । इसके पश्चात शब्दों का विभिन्न शीर्षकों में अध्ययन किया गया। चूँकि शब्द को प्रक्रिया से हटकर भाषा वैज्ञानिक और व्याकरणिक विवेचन ही मेरा अभीष्ट रहाहै । इसलियसे केवल उनहीं शब्दों को उदाहरण के रूस्प में प्रयुक्त किया गया है जिनका तुलसी की प्रसतुत रचनाओं में विशेष महत्व है । इसके बाबजूद ऐसे बहुत से शब्द हैं जो तुलसी के अन्य में अपना महत्व रखते हैं किन्तु विस्तार मयस से उनका उल्लेख नहीं किया गया है ।

प्रबन्धके प्रथम अध्याय में तीनों रचनाओं का परिचय विषयगत वैशिष्ट्य और साहित्यिक महल बताया गयाहै । संक्षिप्त परिचय के अतिरिक्त प्रस्तुत प्रबन्ध की उपलब्धियसों एवं सीमाओं का संकेत भी प्रस्तुत अध्याय में किया गया है । इसके साथ ही इसदिशा में किये गये प्रयासों काउल्लेख भी इसी अध्याय में किया गया है ।

प्रबन्ध के क्षितीय अध्याय में विवेच्य ग्रन्थों में प्रयुक्त शब्दावली का विवेचन

कियागया है । इस क्रम में तीनों वृतियों में आई विशिष्ट शबदाली को वर्गीकृत कियसा गया हे तथा यह भी संकेत दिया गयाहै कि वे किस भाषा से लिए गये हैं । इसी क्रम में विशिष्ट शब्दों का अर्थ सन्दार्भ भी पस्तुत अध्याय में उदघटित हुआहै जो शब्द सहज होने पर भी तुलसी सहित्य में विशिष्ट अर्थ का द्योतन करते हैं ।

प्रबन्ध का तृतीय अध्यासय तुलसी की विवेच्य रचनाओं के शब्दों क`वर्गीकरण से सम्बद्ध है । इसमें शब्दोंके विस्तारका उल्लेख हुआ है । ब्द तो आते ही है उपसोर्ग प्रत्ययों और समासों के द्वारा मूल शब्द रूपों से नए शब्दों का निर्माण भी होता रहा है । गोस्वामी तुलसीदास ने ऐसे बहुत से शब्दों की संरना करके अपनी काव्य भाषा को समृद्ध किसयाहै। इसअध्याय में तुलसी की रचनाओं में इस प्रकार निर्मित शब्दों के स्वरूस्प एवं शब्द रचना की क्षमताका संकेत किया गयाहै ।

प्रस्तुत प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में विवेच्य कृतियों का व्याकरणिक विवेचन हुआहै । इसतरह संज्ञा, सर्वनाम ,क्रियापद, विशेषण विधान अव्यय कारक परसर्ग आदि का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है ।

पंचम अध्याय में तुलसी की भाषा का परिचय देते हुए भाषाऔरध्वनित विशेषताओं का उद्घाटन हुआहै । तुलसी मूलतः अवधी भाष्य के कविमाने जाते हैं पर विवेच्य तीनों कृतियों ब्रजभाषा की है । अतः प्रारम्भ में ब्रजभाषा का ऐतिहासिक और साहित्यिक स्वरूप वर्णित हुआ है। इसके अतिरिक्त तुलसी की विवेच्य कृतियों का ध्वनि वैज्ञानिक विश्लेषण इस अध्याय में हुआ है।

षष्ठ अध्याय में तुलसी के शब्द-सौष्ठव का विवेचन हुआहै। शब्द योजना का काव्य को जो प्रदेय है उसका संक्षिप्त विश्लेषण इस क्रम में किा गया है ।

सप्तम अध्याय में विवेच्य कृतियों में सांस्कृतिक दृष्टि से शब्दों का अध्ययन हुआ है । शब्द संसकृति के वाहन होते हैं । समाज में जब जब परिवर्तन होताहै । पुराने शब्दों का प्रचवलन कम हो जाताहै और उनकास्थान नए शब्द ले लेते हैं । सामाजिक सम्बन्धों,रहन-सहन, खान-पान, आचार-व्यवहार, सभ्यता के विकास आदि के साथ शब्दों के यह विस्तार मिलता रहता है । सातवें अध्याय में इस शब्दावली का अध्ययन द्रर्ष्युक्त परिप्रक्ष्य में अभीष्ट है ।

प्रबन्ध के अष्टम अध्याय में व्यक्तित्व वाचक शब्दों काअध्ययन किया गयाहै वस्त्र, वेश सम्बन्ध, गुण ,अवगुण, आचार-व्यवहार-संस्कार त्योहार, शिष्टाचार आदि से सम्बन्धित तथा तुलसी द्वारा प्रयुक्त शब्दावली काअध्ययन इसी अध्याय में हुआ है।

समग्रतः प्रस्तुत अध्ययन तुलसी की विराट शब्द सम्पदा का यत्किंचित विस्तारमात्र है । तुलसी शब्द सागर जेसे व्यसापक ग्रन्थ में भी तुलसी के द्वारा प्रयुक्त बहुत से शब्द छूटे हैं तथाउनके प्रयोग सन्दीर्भ भी सीमित है । इसका कारण यह है कि तुलसी साहित्य के अध्ययन क्रम में मानस तक ही सीमित अध्ययन होता आया है । ऐसी स्थिति में यह कार्य कदाचिवत मानसेतर कृतियों के विपुल शब्द भाषा की ओर आकर्षण कर सके औघ्र तुलसी साहित्य के समग्र शब्दों का व्यापक अर्थ वैशिष्ट्य प्रस्तुत करते समय सहायक हो सके ।

सन्दर्भ- ग्रन्थ -सूची

1)	कृष्ण गीतावली	तुलसीदास
2)	गीतावली	तुलसीदास
3)	गीतावली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	डॉ0 सरोज शर्मा
4)	गोस्वामी तुलसीदास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
5)	गोस्वामी तुलसीदास	सत्यदेव चतुर्वेदी
6)	गोस्वामी तुलसीदास-व्यक्तित्व, दर्शन, काव्य	डॉ0 रामदत्त भारद्वाज
7)	तुलसी आधुनिक वातायन से	डॉ0 रमेश कुनतल मेघ
8)	तुलसी और उनका साहित्य	डॉ0 विमल कुमार जैन
9)	तुलसी और उनकी कविता	पं0 रामनरेश त्रिपाठी
10)	तुलसी का काव्य सौन्दर्य	डॉ0 चन्द्र भूषण तिवारी
11)	तुलसी काव्य मीमांसा	डॉ0 उदयभानु सिंह
12)	तुलसी के काव्य में रामराज्य की परिकल्पना ।	डॉ0 शीलवती गुप्त
13)	तुलसी ग्रन्थावली (तीनों भाग)	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा लाला भगवानदीन
14)	तुलसी-चिन्तन और कला	डॉ0 इन्द्रनाथ मदान
15)	तुलसी के चार दल	पं0 सद्गुरूशरण अवस्थी
16)	तुलसी दर्शन	डॉ0 बलदेव प्रसाद मिश्र
17)	तुलसीदास	डॉ0 माताप्रसाद गुप्त

18)	तुलसीदास और उनका युग	डॉ० राजपति दीक्षित
19)	तुलसीदास का राजनीति चिन्तन	डॉ० शीलवती गुप्त
20)	तुलसीदास का सौन्दर्य बोध	डा० छोटे लाल दीक्षित
21)	तुलसीदास की कलागत चेतना	धीरेन्द्र बहादुर सिंह
22)	तुलसी विविध सन्दर्भो में	डॉ० वचनदेव कुमार
23)	तुलसी साहित्य और साधना	डॉ० इन्द्रपाल सिंह 'इन्दु'
24)	तुलसी साहित्य की भूमिका	डॉ० रामरतन भट्नागर
25)	दोहावली	तुलसीदास
26)	मानस पीयूष	अंजनीनन्दन शरण
27)	विनय-पत्रिका	तुलसीदास
28)	विनय-पत्रिका- एक तुलनात्मक अध्ययन।	डा० ओंकार प्रसादत्रिपाठी

****
******
****
***
*